कृषि-कोश

प्रथम खण्ड

('अ' से 'घ' तक)



सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा

कृषिकोश

[भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत जन-समाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान]

प्रथम खण्ड

['अ' से 'घ' तक]

सम्पादक

डॉक्टर विश्वनाथ प्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्रीश्रुतिदेवशास्त्री : श्रीराधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४

प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
सैदपुर, पटना - ८०० ००४

द्वितीय संस्करण : विक्रमाब्द २०५७, ई० सन् २००१

मूल्य : १२५.०० रुपये

मुद्रक : इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल
द्वारा तरुण प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

द्वितीय संस्करण की भूमिका

किसी भी भाषा की जीवंतता उसके संवर्द्धनशील शब्दकोश की संपन्नता से निर्धारित होती है। इसके अनेक स्रोतों में सबसे प्रमुख स्रोत है आंचलिक शब्द-स्रोत।

यह सोचते हुए तकलीफ होती है कि शहरीकरण और प्रौद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में अपनी-अपनी बोलियों से, अपने-अपने लोकगीतों और संस्कार-गीतों से हमारी नयी पीढ़ी का संपर्क टूट रहा है।

इसका जो दुखद परिणाम है वह है : हिंदीभाषा में आंचलिक शब्दों का अवरुद्ध प्रवाह, गत्यवरोध और इनके प्रति दयनीय उदासीनता।

ऐसी स्थिति में **कृषिकोश–** जैसे शब्दशोधक ग्रंथ का महत्त्व असंदिग्ध रूप से बढ़ जाता है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने सामूहिक प्रयास और कठिन परिश्रम से कृषिकोश तैयार करवाया था। बिहार की क्षेत्रीय बोलियों में कृषि-संस्कृति में प्रचलित (और अब लगभग विस्मृत) शब्दों का प्रस्तुत कोश परिषद् के शोधकार्यों में उल्लेखनीय माना जाता है।

कृषिकोश के दो खंड क्रमशः प्रकाशित किये गये थे। प्रस्तुत प्रथम खंड में 'अ' से 'घ' तक के शब्द गृहीत हुए हैं। वर्णमाला के शेष शब्द द्वितीय खंड में समाहित हैं।

आशा है, ग्रामीण अंचलों में प्रचलित शब्दों के अर्थ और तत्संबंधी विमर्श की जब भी अपेक्षा होगी, प्रस्तुत कोश निश्चय ही उसमें सहायक होगा।

रामधारी सिंह दिवाकर
(निदेशक)

दीपोत्सव
विक्रम सं० २०५०
२६ अक्तूबर, २०००

वक्तव्य

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'थ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु-विशेष का बोध करानेवाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड भविष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके निर्माण और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'द' से 'न' तक के शब्द होंगे, सम्पादित हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी, कई शब्द ऐसे सुघड़-सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में गढ़े जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि-विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द-सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के धन्धे की तरह दूसरे धन्धों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए तथाकथित आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की नैसर्गिक शोभा निखर उठेगी।

लोक-भाषाओं का जो साहित्य लोक-कण्ठों में बसा हुआ है, उसका उद्धार और प्रचार भी धीरे-धीरे हो रहा है। पारखियों का ध्यान उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि की ओर तेजी से जा रहा है। साहित्यानुरागी पाठक भी लोक-साहित्य के गुणग्राही होते जा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

विश्वविद्यालयों के साथ-साथ आकाशवाणी-केन्द्रों में भी लोक-भाषाओं को आदर मिल रहा है। साहित्य-संसार के विद्वान् अनुसन्धायक उनपर शोध, विचार-विमर्श, आलोचन-विवेचन तथा ग्रन्थ-लेखन-कार्य बड़ी लगन से करने लगे हैं। सभा-सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी महत्ता प्रकट हो रही है।

किन्तु, लोक-भाषाओं का महत्त्व वहीं तक मान्य होना चाहिए, जहाँतक वे जनसम्पर्क बढ़ाने, भारत की मौलिक लोक-संस्कृति की सुरक्षा, लोक-कलाओं के विकास और साहित्य को समृद्धिशाली बनाने में सहायक हों। पर यदि राजनीतिक स्वार्थ साधने के उद्देश्य से उनके प्रति अवांछनीय आग्रह दिखाया जायगा, तो देश के खण्ड-खण्ड हो जाने की आशंका है। भाषाधार-प्रान्त-निर्माण का दुष्परिणाम प्रकट हो चुका है। पुनः लोक-भाषाओं के आधार पर टुकड़ों में बँटनेवाले देश की कल्पना अतिशय भयावह है।

यह बात जानकार विद्वानों को मालूम है कि अखिलभारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के एक चिरस्मरणीय सभापति ने डॉक्टर ग्रियर्सन को पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि आपने भारत में तो २४४ भाषाएँ खोज निकालीं, पर यह बताइए कि आपके योरप और ब्रिटेन में कितनी भाषाएँ हैं। इस जिज्ञासा को डॉक्टर ग्रियर्सन ने केवल खेद-प्रकाश द्वारा ही शान्त किया था। तब निष्कर्ष यह निकाला गया कि उन्हें अपने देश में बन्दर-बाँट-नीति बरतना अभीष्ट नहीं था। किन्तु भारत में भाषाओं और धार्मिक सम्प्रदायों अथवा मतमतान्तरों का संख्या-बाहुल्य सारे संसार को दिखाने में चाहे उनका जो भी उद्देश्य निहित रहा हो, यह तो मानना ही पड़ता है कि अँगरेजी लिखे-पढ़े भारतवासियों में लोकभाषाओं के अध्ययन-अनुशीलन का अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय योरप के कतिपय विद्वानों को ही है, जिसके लिए उपकृत भारतवासी आज भी उनका सादर स्मरण करते हैं।

भारत-संघ के सभी राज्यों में लोक-भाषाएँ हैं। सबके बिखरे साहित्य का संग्रह और अध्ययन होना चाहिए। इससे प्रान्तीय राजभाषाएँ पुष्ट-तुष्ट होंगी और आदान-प्रदान के चक्र-प्रवर्त्तनानुसार उनसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भी रस-सञ्चय करके लाभान्वित होगी। यहाँ एक बात और भी विद्वानों के लिए विचारणीय है। प्रान्तीय स्वतंत्रता के संरक्षण की दृष्टि से संविधान-स्वीकृत राजभाषाओं को शिक्षा अथवा राजकाज का माध्यम बनाना समीचीन समझा जा सकता है, पर मातृभाषा की परिभाषा को अतीव संकीर्ण करके लोक-भाषाओं का प्रयोग राजभाषा के रूप में करना राष्ट्र की संघ-शक्ति को छिन्न-भिन्न कर डालने के समान है। राष्ट्रीय एकता को अखण्ड रखने के विचार से सावधान रहते हुए लोक-भाषाओं को उचित उत्तेजन अवश्य मिलना चाहिए।

अस्तु; इस कोश के प्रस्तुत प्रथम खण्ड के सुयोग्य सम्पादक डॉक्टर विश्वनाथप्रसाद सारन-जिले के छपरा-नगर-निवासी और हिन्दी-संसार के भाषाविज्ञान-शास्त्रियों में परम प्रसिद्ध हैं। आप संस्कृत के साहित्याचार्य और हिन्दी के साहित्यरत्न, संस्कृत और हिन्दी के एम्० ए० तथा बी० एल्० हैं। लन्दन-विश्वविद्यालय से आपने पी-एच्० डी० की उपाधि पाई है। सन् १९५५-५६ ई० में आप डेकन-कॉलेज (पूना) के पोस्ट ग्रैजुएट ऐण्ड रिसर्च इंस्टिच्यूट (राकफेलर फाउण्डेशन, यू० एस्० ए०) में लिंग्विस्टिक्स के प्रथम विजिटिङ्ग प्रोफेसर थे। आप पटना-विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभागाध्यक्ष हैं, पर इस समय अवकाश लेकर आगरा-विश्वविद्यालय में के० एम्० मुन्शी इंस्टिच्यूट ऑफ हिन्दी स्टडीज ऐण्ड लिंग्विस्टिक्स के डाइरेक्टर पद पर आसीन तथा उसके त्रैमासिक मुखपत्र 'भारतीय

साहित्य' के प्रधान सम्पादक भी हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'भोजपुरी कवि और काव्य' नामक पुस्तक गत वर्ष परिषद् से ही प्रकाशित हो चुकी है। जब आप परिषद् के लोक-भाषा अनुसन्धान-विभाग के अध्यक्ष थे, तब आपके ही तत्त्वावधान में मगही-संस्कार-गीतों का एक सटीक संग्रह-ग्रन्थ तैयार हुआ था। आपके द्वारा सम्पादित उस ग्रन्थ का प्रकाशन निकट भविष्य में ही होनेवाला है। आपको इस कोश के सम्पादन-कार्य में अपने जिन अनुसन्धान-सहायकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी योग्यता आदि के विषय में आप स्वयं लिख चुके हैं। उनमें श्रीश्रुतिदेव शास्त्री भागलपुर-जिले और श्रीरामावल्लभ शर्मा चम्पारन-जिले के निवासी हैं।

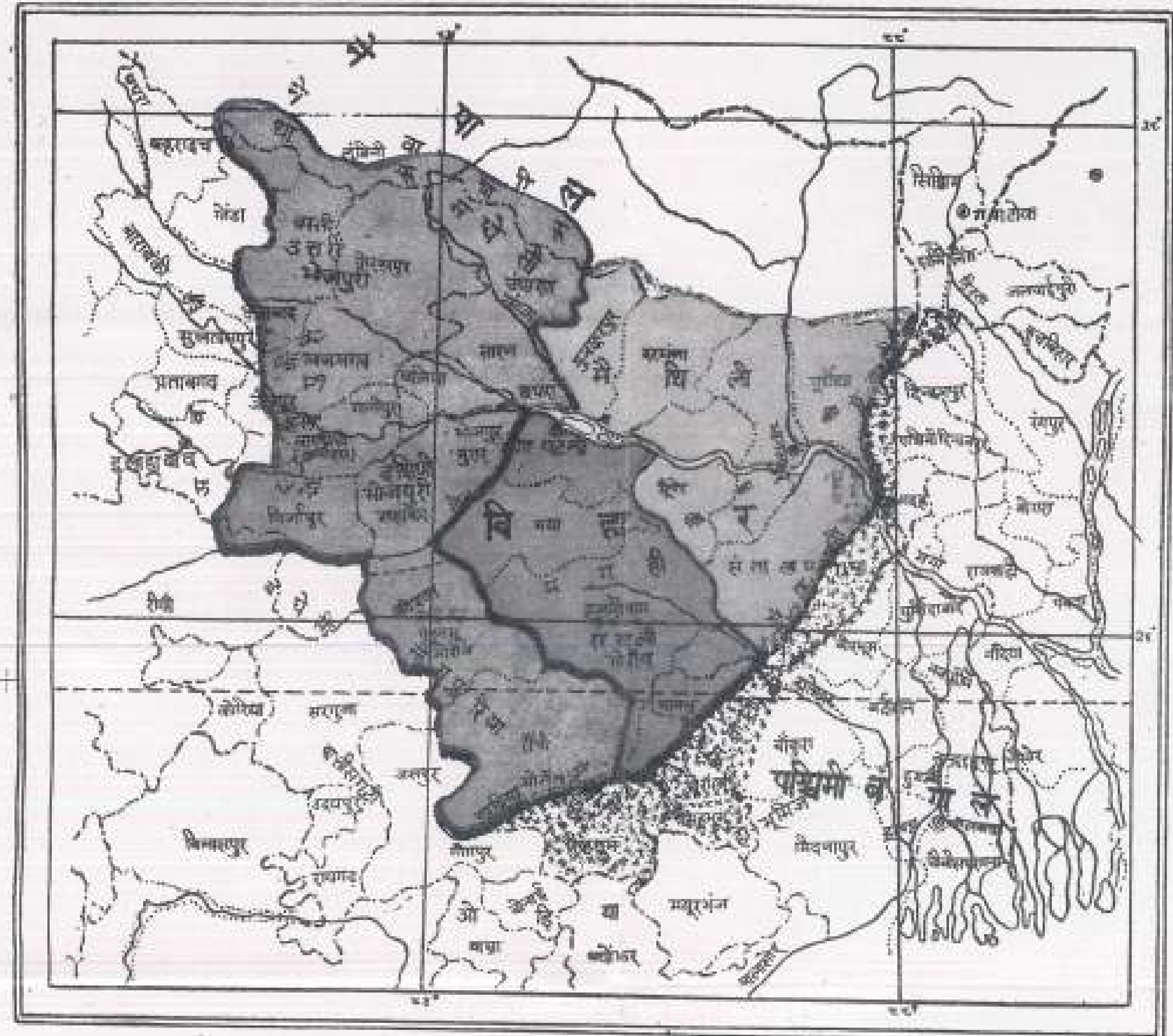
आशा है कि यह कोश लोकभाषाओं के सुधजनों को प्रचुर प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करेगा। साथ ही, हमें यह भी आशा है कि साहित्य के अभ्युदय की आकांक्षा रखनेवाले सुधी सज्जन इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों से हमें अवगत कराके अपनी स्वाभाविक सहृदयता का परिचय देने की कृपा करेंगे।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८८१ }
सन् १९५९ ई० }

शिवपूजनसहाय
(संचालक)

बिहार की अन्य बोलियों के साथ-साथ भोजपुरी के क्षेत्र, सीमा तथा उसके विविध भेदों का मानचित्र

माप - एक इंच = ७० मील



निवेदन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के जन्म के तीन-चार साल पहले ही मेरे मन में यह विचार उठा था कि इस प्रकार का एक प्रामाणिक पारिभाषिक कोश तैयार हो, जिसमें जन-समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के सजीव शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से संग्रह हो; क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली के अभाव को केवल अँगरेजी के उधार या अनुवाद से नहीं भरा जा सकता, वरन् यह दारिद्र्य तो दूर हो सकता है—हमारी अपनी ही चिरसंचित शब्द-संपत्ति से, जो हमारी जनपदीय बोलियों में खोई-खोई-सी पड़ी हुई है। उसका उद्धार करके उसमें नई प्राण-शक्ति भरी जा सकती है, जिससे वह एक विस्तीर्ण धरातल पर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। उस समय उस विचार को क्रियान्वित करने के लिए मैंने जो एक छोटी-सी योजना बनाई थी, उसमें मुझे विशेष प्रेरणा दो हितचिन्तकों से मिली थी—एक तो पूज्यचरण आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा से और दूसरे स्वर्गीय श्रीरामधारी प्रसाद से। इनके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे पुनः प्रवृत्त करने में बिहार के चिरस्मरणीय शिक्षा-सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस्० का, जो इस समय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल हैं, विशेष हाथ था। आप सबके प्रति परम श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जब से मैंने यह कार्य प्रारंभ किया, तब से मेरी प्रेरणा के स्रोतों में प्रमुख स्थान रहा है, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के सुयोग्य संचालक श्रीशिवपूजनसहायजी का। उनका विशेष सहयोग और साहाय्य न मिला होता, तो इसमें पग-पग करके आगे बढ़ना और आज इस स्थिति में पहुँचना कि इसका प्रकाशन हो सके, मेरे लिए कदापि संभव न होता। इसके संपादन में मुझे अपने आदरणीय श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' और श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' से भी पर्याप्त बल और सहायताएँ मिलती रही हैं। उनके सुझावों से हमने बहुत लाभ उठाया है। इनके अतिरिक्त परिषद् के वर्तमान अध्यक्ष श्रद्धेय कुमार गंगानंद सिंह, श्रीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, विद्वद्वर श्रीराहुल सांकृत्यायन, डॉ० कामिल बुल्के, पं० छविनाथ पाण्डेय प्रभृति महानुभावों से हमें जो बहुमूल्य प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त होता रहा है, उसके लिए आप सबके प्रति सादर आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

परिषद् के प्रकाशन-विभाग का भी जो सक्रिय सहयोग हमें मिलता रहा है, उसके लिए श्रीअनूपलाल मण्डल और श्रीहवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' को मेरे हार्दिक धन्यवाद हैं।

परन्तु उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, जो मेरे दायें-बायें हाथ की तरह प्रारंभ से अबतक अनवरत मेरे साथ इस काम में लगे रहे हैं। क्या उनके बिना यह कार्य इस रूप में संभव हो सकता था! मैं यहाँ अपने कार्य के अभिन्न अंग श्रीश्रुतिदेवशास्त्री (पालि-साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरण शास्त्री, प्रभाकर, पूना स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित तथा श्री राधावल्लभशर्मा साहित्यालंकार, पूना स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित का उल्लेख कर रहा हूँ। कितनी लगन से आप दोनों ने मेरे साथ इस कार्य को आरंभ किया था! मेरे स्नातकोत्तर कक्षा के अन्य छात्रों तथा अनुसंधित्सु विद्यार्थियों की ही तरह सदा मेरे साथ कोश-विज्ञान के इस नये विषय के अध्ययन तथा ज्ञानार्जन में तत्पर, सदा इस लोक-विद्या के अध्यवसाय में निरत, सदा मेरे निर्देशों के यथावत् पालन में तन्मय भाव से लीन आप दोनों की प्रशंसनीय प्रगति का पता मुझसे अधिक और किसको होगा! इस कार्य में श्रुतिदेवजी का विशेष क्षेत्र था—व्युत्पत्ति निर्वचन और राधावल्लभजी का क्षेत्रीय संग्रह का परीक्षण। हमें अभी कृषि-कोश के दूसरे और तीसरे खंडों को भी, जो प्रायः समाप्तप्राय हैं, अविलम्ब प्रकाशित करना है। आप दोनों की दक्षता और कार्य-तत्परता का हमें पूरा भरोसा है और आशा है कि आप सफलता के साथ इस कार्य के संपादन में दत्तचित्त रहेंगे।

इस कोश-कार्य में अपने सभी सहायकों का उल्लेख करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ :—

सहायक

अनुसन्धान और सम्पादन

१. श्रीश्रुतिदेव शास्त्री
२. श्रीराधावल्लभ शर्मा
३. श्रीविक्रमादित्य मिश्र

संग्रह

१. श्रीगणेश चौबे—आप चंपारन जिले के निवासी हैं। आप लोक-साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं और 'इंडियन फोकलोर' (कलकत्ता) के संपादक-मण्डल में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि भी हैं। आप बहुत दिनों से बिहारी लोक-साहित्य पर कार्य कर रहे हैं। इस कार्य में हमें आपसे सभी तरह की बहुमूल्य सहायता मिली है। लोक-साहित्य के संग्रह आदि में आप सदा सहर्ष सहायता देने को प्रस्तुत रहते हैं।

२. श्रीश्रीकांत शास्त्री—एकंगरसराय (पूर्वी पटना) के रहनेवाले विद्वान् हैं और सदा जागरूक रहकर मगही-साहित्य के उत्थान में तत्पर रहते हैं। आपने लोक-भाषा और लोक-साहित्य के विविध अंगों का संग्रह करके परिषद् को दिया है और हमारी सहायता की है। आप सदा हमारा हाथ बँटाते रहे हैं।

३. श्रीसुरेश्वर पाठक—आप दक्षिणी मुँगेर के निवासी हैं और आजकल यहीं पटना में वयस्क-शिक्षा-विभाग में अधिकारी हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने दक्षिणी मुँगेर के शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह करके परिषद् को दिया है। आप से हमें बराबर उचित सहायता मिलती रही है।

आप तीनों हमारे विशिष्ट सहायक हैं। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी व्यक्तियों ने हमें यथासमय पूर्ण सहयोग दिया है। हम आप सबके आभारी हैं। इनमें से श्रीविद्यानन्द सिंह, श्रीहरिप्रकाश, श्रीकृष्णदेव, श्रीविक्रमादित्य मिश्र एम० ए०, श्रीपंचानन चौधरी, श्रीशिवकुमार शर्मा, श्रीराजेश्वर प्रसाद ने अपने-अपने क्षेत्रों से शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह कर प्रदान किया है और इस प्रकार हमें बहुत सहायता दी है।

श्रीरामाधार शर्मा, श्रीरामस्वरूप चौधरी, श्रीवाल्मीकि प्रसाद सिंह एम० ए०, श्रीमुसाई झा आदि ने शब्दों की जाँच-पड़ताल में यथासमय यथा-स्थान उपस्थित होकर हमें यथोचित सहयोग दिया है और अपने-अपने क्षेत्र के तत्तत् पर्यायों को समझने-बूझने में तथा निरीक्षण-परीक्षण में हमारी सहायता की है।

संग्रह-कार्य के प्रथम वर्ष में परिषद् द्वारा नियुक्त जो चार क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता वैतनिक रूप में संग्रह-कार्य करते थे, उनका विवरण निम्नांकित है—

श्रीजयानन्द झा—ये दक्षिणी पूर्णियाँ के निवासी हैं। इन्होंने दरभंगा जिले के मधुबनी, सदर सबडिविजन और द० पूर्णिया से शब्द संगृहीत करके दिये थे। कोश में इनके कार्य-क्षेत्र का संकेत-चिह्न दर०—१, पूर्णि०—१ है।

श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण—ये छपरा नगर के निवासी हैं। इन्होंने सारन जिले भर में घूम-घूमकर शब्दों का संग्रह करके दिया था। कोश में इनका संकेत सा०—१ है।

श्रीहृदयनारायण मंडल—ये संतालपरगने के रहनेवाले हैं। इन्होंने संतालपरगने की संताली भाषा के शब्द-संग्रह करके दिये थे। किन्तु इनके शब्दों का उपयोग संताली-कोश के लिए होगा, इसलिए इस कोश में इनका उल्लेख नहीं है।

श्रीजावालिदेव—ये पटना सिटी के निवासी हैं। इन्होंने बहुत थोड़े दिनों तक कार्य किया। आप पारिभाषिक शब्दों के बजाय सामान्य शब्दों का ही थोड़ा संग्रह कर सके थे। इसलिए इनके शब्दों का भी उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है।

आप सभी सहयोगियों का हम आभार स्वीकार करते हैं।

बिहार के विभिन्न भागों के निवासी जिन भाइयों और बहनों के मुँह से इस कोश

के शब्द संगृहीत किये गये हैं, उनकी सूची देने में तो कई पृष्ठ लग जायँगे, परन्तु इस प्रसंग में उनको भी कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते।

कोश-कार्य व्यावहारिक भाषाविज्ञान का एक जटिल विषय है; बहुत ही श्रमसाध्य, समयसाध्य और व्ययसाध्य। अँगरेजी, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के कोश-ग्रंथों के संपादन और संग्रह का इतिहास बतलाता है कि कोश-जैसे महत्त्वपूर्ण आकर-ग्रंथों के सम्यक् सम्पादन के लिए पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता होती है। अँगरेजी की 'वेब्स्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के प्रथम संस्करण के प्रकाशन में पूरे १०२ वर्षों का समय लगा था। १८०७ ई० में नोआ वेब्स्टर ने इसका कार्यारंभ किया था और २१ वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने जॉनसन की डिक्शनरी से केवल १२,००० शब्द और बढ़ाकर उसके मूल रूप को १८२८ ई० में पूरा और प्रकाशित किया। इसके बाद क्रमशः परिवर्द्धन प्राप्त करता हुआ वह अपने बृहत् रूप में आया। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की योजना का श्रीगणेश 'फिलालॉजिकल सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' की ओर से १८५७ ई० में हुआ और उसका कार्य ७६ वर्षों के बाद सन् १९३३ ई० में समाप्त हुआ। इस बीच में उसके एक सम्पादक के जीवन-काल के बाद दूसरे ने और दूसरे के जीवन-काल के बाद तीसरे ने इस कार्य के दायित्व को सँभाला। इन्हीं तीसरे और उनके साथ एक चौथे सम्पादक के कार्य-काल में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। कई वर्षों तक उसके सम्पादन के लिए चार सम्पादक नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त उनके कई सहायक सम्पादक थे, जो पचास वर्षों से भी अधिक काल तक इस कार्य में लगे रहे। प्रारंभ में संग्रह के लिए १०० संग्रहकर्त्ता नियुक्त थे, जो अंगरेजी साहित्य के विविध क्षेत्रों से शब्दों, मुहावरों आदि का संग्रह करते थे और इनके अतिरिक्त ८०० ऐसे पाठक थे, जो स्वयं-सेवा-भाव से साहित्य के विभिन्न अंगों के ग्रंथों को पढ़कर उनमें से उपयुक्त सामग्री का संकलन करके सोसाइटी के पास भेजा करते थे। तब कहीं अँगरेजी का ऐसा प्रामाणिक कोश तैयार हो सका।

अपने देश में भी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से हिन्दी शब्द-सागर लगातार एक दशक तक कार्य होते रहने के पश्चात् ही खंडशः प्रकाशित होने लगा था और इसके बाद भी लगभग बीस वर्षों में (१९१० से १९२९ तक) उसका सम्पादन और प्रकाशन पूरा हुआ।

पूना में संस्कृत-कोश के संग्रह-सम्पादन का कार्य सन् १९४८ ई० में प्रारंभ हुआ। इस समय इस कार्य में लगभग पचास सुयोग्य कार्यकर्त्ता लगे हुए हैं। कोश-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री वहाँ सुलभ है, लगभग एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उसपर खर्च किया जा रहा है। पर यह सब होते हुए भी अभी तक उसका कोई खंड प्रकाशित नहीं हो सका है।

कोश के कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक योजनानुसार सभी उपलब्ध शब्दों का संग्रह न हो जाय और फिर सभी अपेक्षित दृष्टियों से उनके यथावत्

अध्ययन और विश्लेषण का कार्य पूरा न हो जाय, तबतक प्रकाशन प्रारंभ करने का खयाल नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि एक ओर संग्रह और अध्ययन-अनुशीलन का कार्य भी चलता रहे और दूसरी ओर वर्णानुक्रम या किसी और ही क्रम से एक-एक अंश का प्रकाशन भी होता रहे। अतएव, किसी संहत कोश के प्रकाशन में विलंब होना अपरिहार्य है।

ऊपर जिन दो-एक उदाहरणीय कोशों का उल्लेख किया गया है, उन सबका आधार लिखित और उपलब्ध साहित्य है, जब कि हमारा यह कृषि-कोश अलिखित और दुरुपलभ्य सामग्री पर आधारित है। कोशविज्ञान की नई पद्धति के अनुसार ठेठ ग्रामीण समाज के शब्दों को इकट्ठा करके उन्हें ध्वनि, अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से विविध प्रकार से जाँचकर हमें संकलन करना पड़ा है। शहर से दूर, गाँवों के भिन्न-भिन्न पेशों में लगे हुए कामकाजी स्त्री-पुरुषों के काम-धाम के स्थलों पर स्वयं जाकर या अपने प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं को भेजकर उनसे नियमानुसार पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल करके उनके कार्यकलाप-सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, अर्थ-निर्धारण तथा प्रयोगादि की जानकारी हासिल करनी पड़ी है।

इसका प्रत्येक शब्द विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले विभिन्न वृत्तियों के लोगों के मुँह से प्राप्त किया गया है। यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके भुक्तभोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति ही विरले मिलते हैं जो प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। पेशे के काम-धाम में लगे हुए श्रमजीवी व्यक्ति को इतनी फुरसत भी कहाँ कि वह सब-कुछ छोड़कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे। कोई उमंगी किसी प्रकार यदि पकड़ में आया भी, तो फिर उससे अंड-बंड उत्तर मिलते हैं। उपयुक्त सामग्री देनेवाले उपयुक्त व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिल पाते हैं। फिर सर्वदा यह भी संभव नहीं कि उनसे बातें करते समय ही उत्तर लिखते चलें। प्रायः ऐसा होता है कि उत्तरों को कठिनता-पूर्वक स्मृति में ही संचित करके कुछ समय के उपरांत लिखना पड़ता है। इस कारण इसमें विशेष सावधानी की अपेक्षा होती है। अपनी संगृहीत सामग्री को प्रकाशित करने के पहले हमने यह आवश्यक नियम कर रक्खा था कि उन बोलियों के बोलनेवाले तथा तत्तत् भाषा-केंद्रों के प्रतिनिधि स्वरूप तथा भरोसे के व्यक्तियों से विशेष रूप से पूछ-ताछ करके उसका पुनः परीक्षण कर लिया जाय। इस प्रकार इस कोश के प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता की यथासंभव जाँच कर ली गई है। इस कोश का प्रत्येक शब्द हमारी जागरूक ममता और देख-भाल का पात्र बनकर ही इस आगार में प्रवेश पा सका है।

बड़े हौसले के साथ हम इस कार्य में प्रवृत्त हुए। परन्तु हमें अत्यन्त सीमित साधनों, दो-चार संग्राहक कार्यकर्त्ताओं, लोक-भाषा और लोकसाहित्य के कुछ इने-गिने अनुरागी व्यक्तियों और बस दो अनुसंधान-सहायकों की सहायता से ही, अन्यान्य कार्यों के साथ-साथ, इतनी स्वल्प अवधि में, इस कोश का पहला खंड निकालना पड़ रहा है। इसे

भी हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि यह कठिन कार्य किसी तरह इस विषय में रुचि रखनेवाले महानुभावों के समक्ष प्रकाश में तो आ सका।

संभव है कि कार्य की शीघ्रता अथवा अल्पज्ञता के कारण इस संग्रह में कुछ ऐसे शब्द न आ सके हों, जिनकी जानकारी अन्य सज्जनों को हो। कोई भी कोशकार आखिर अतिमानव तो है नहीं कि सर्वज्ञता का दावा कर सके। कोश-कार्य में त्रुटियों की पर्याप्त संभावना रहती है, जिनका पता तो प्रकाशन के बाद ही चलता है और जिनके निर्देश कोशकार को कुछ तो उदारतापूर्वक मिलते हैं और कुछ तीखे आक्षेपों के साथ। दोनों से ही कृतज्ञ भाव से आगे के लिए शिक्षा-ग्रहण करने को मैं सविनय आतुर रहूँगा।

वस्तुतः एक ओर कोश-कार्य की कष्टसाध्यता, विशालता तथा अपने बड़े-बड़े हौसलों को और दूसरी ओर अपनी सीमित शक्तियों तथा साधनों को देखकर हमें कहना पड़ता है—

'तितीर्षुर्दुस्तरम्मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।'

विश्वनाथ प्रसाद
संपादक

मंगलवार, मार्गशीर्ष, शुक्ल-६ (स्कन्दषष्ठी) सं० २०१५ वि०,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ
आगरा-विश्वविद्यालय
आगरा

प्रस्तावना

बिहार-प्रदेश की विविध लोकभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए आरम्भ से ही उसके अन्तर्गत 'लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग' मेरे निर्देशन-निरीक्षण में कार्य करता आ रहा है। हमने बिहार की लोकभाषाओं और लोक-साहित्य के अध्ययन के लिए एक योजना बनाई, जिसके अनुसार लोकभाषा और साहित्य-संबंधी सामग्रियों का संग्रह किया जा सके। तदनुसार गाँवों में बिखरी अलिखित सामग्रियों, लोक-गीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, पहेलियों, मुहावरों और शब्दों का संकलन प्रशिक्षित वैतनिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा कराया जाने लगा। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता विभिन्न भाषा-क्षेत्रों के गाँवों में जाकर तत्तत्-विषयों के विशेषज्ञों और तत्तद् व्यवसायों के व्यावसायिकों से मिलकर गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि और किसान, बढ़ई, कुम्हार आदि व्यावसायिकों से उन-उन विषयों के शब्दों का संग्रह करते और कार्यालय को भेजते थे और यहाँ दो प्रशिक्षित अनुसंधायक उनका निरीक्षण-परीक्षण करके उनकी उपयोगिता और औचित्य को आँचकर उन्हें संगृहीत करते थे। किन्तु यह प्रणाली एक वर्ष तक ही चली; क्योंकि उन संग्राहक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया कार्य संतोषजनक नहीं प्रमाणित हुआ। अतः वैतनिक कार्य का सिलसिला उठा दिया गया और उसके स्थान में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य के उत्साही कार्यकर्त्ताओं के द्वारा पारिश्रमिक के आधार पर सामग्रियों का संकलन कराया जाने लगा। इसके लिए हमारे विशेष रूप से तैयार किए हुए निर्देशपत्र के अनुसार बिहार की मैथिली, मगही, भोजपुरी और संताली की सामग्रियाँ एकत्र की जाने लगीं। अबतक इन भाषा-क्षेत्रों की प्रचुर सामग्री संगृहीत हो चुकी है। सरकारी तौर पर इस प्रकार का यह पहला कार्य था, जिसे बिहार-राज्य सरकार ने प्रारम्भ किया और बाद में यह दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय हो गया। दो-तीन वर्षों में कुछ सामग्रियों के संग्रह हो जाने के बाद सबसे पहले दो कार्य शुरू किये गये—पहला 'मगही संस्कार-गीतों' का संपादन और दूसरा 'कृषिकोश' का। 'मगही संस्कारगीत संग्रह' में, विविध संस्कारों के समय गाये जानेवाले मगही-क्षेत्र के लोक-गीतों का संग्रह किया गया है। इस संग्रह में मगही लोक-गीतों का मूलरूप, उनका अर्थ, यथास्थान टिप्पणी, परिशिष्ट आदि देकर एक विस्तृत भूमिका के साथ संपादन किया गया है, जो निकट भविष्य में मुद्रित होनेवाला है।

दूसरा कार्य, जो इस विभाग ने किया है, वह इसी 'कृषिकोश' का संपादन है। यद्यपि बिहार-राज्य के मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के गाँवों में निवास करनेवाले किसान, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार आदि सभी प्रकार के व्यावसायिकों के व्यवसायों से सम्बद्ध ग्रामीण पारिभाषिक शब्दों का संग्रह इस विभाग में कराया जाता रहा है और यद्यपि पहले विचार था कि सभी ग्रामीण व्यवसायों के पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् संहत कोश एक ही साथ संपादित करके प्रकाशित किया जाय तथापि उसके लिए और अधिक सामग्री, साधन एवं समय की अपेक्षा का विचार करके उस स्तर पर उसका कार्य तत्काल स्थगित कर दिया गया और ग्राम-समाज की रीढ़ किसानों के द्वारा व्यवहृत खेती के शब्दों का ही कोश पहले निकालने का निश्चय हुआ। तदनुसार खेती के शब्दों का अलग संग्रह करके उनका संपादन किया गया। फलस्वरूप, 'कृषिकोश' का यह पहला खंड आज प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'अ' से लेकर 'ध' तक के शब्द हैं।

इस कोश में कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'कृषि' शब्द हल जोतने के अतिरिक्त खेती करनेवाले किसान तथा खेती के पशु, औजार, प्रणाली, विविध क्रिया-कलाप आदि सबका बोधक है। वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कृषि' के स्थान में अष्टाध्यायी में 'कृषीवल' शब्द आया है। वैदिक काल से ही कृषि हमारे देश का प्रधान व्यवसाय रहा है और इसका जैसा विकास हमारे यहाँ हुआ था, वैसा अन्यत्र नहीं। ग्रीस के लोग भी यहाँ की उपजाऊ धरती और कृषि-कौशल से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः शताब्दियों के परम्परागत विकास के प्रभाव से हमारी कृषि-संबंधी शब्दावली बहुत समृद्ध है।

इस कोश के संगृहीत शब्द बिहार-राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषक-जनसमुदाय में सैकड़ों वर्षों से व्यवहृत होते आ रहे हैं और आज भी जीवित तथा जीवन्त हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरों और अन्य श्रमजीवियों की बोलचाल की भाषा से भी समाजशास्त्र, शिल्पशास्त्र अथवा उद्योग-धंधे संबंधी बहुतेरे बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलते हैं, जो राष्ट्रभाषा की समृद्धि के समर्थ पूरक हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न व्यावसायिक मंडलियों तथा श्रमजीवियों के समाज में प्रचलित बहुत-से ऐसे नये पुराने शब्द भी मिलेंगे, जिनके पर्यायवाची शब्द साहित्यिक हिन्दी या अँगरेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी दुर्लभ होंगे। राष्ट्रभाषा का भंडार भरने के लिए तथा विविध कला-कौशलों और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें अपनी इन चिर उपेक्षित अमूल्य निधियों का संचय करना परम आवश्यक है।

बिहार के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न पेशेवालों की मंडली में प्रचलित ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रथम संग्रह प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० ग्रियर्सन ने किया था, जो 'बिहार पीजैंट लाइफ' के नाम से १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह

संग्रह संक्षिप्त था और कुछ और ही अभिप्राय से किया गया था। इससे हमारा उक्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के आधुनिक प्रभावों के कारण समाज के भिन्न स्तरों के लोक-व्यवहार, आचार-विचार, रहन-सहन, रस्म रिवाजों के परिवर्तनों के साथ ही साथ उनके शब्द-भांडार में भी निरन्तर परिवर्तन होते जा रहे हैं। पुराने शब्दों के स्थान में उन्हीं के आधार पर या उनसे भिन्न रोजमर्रे के नये शब्द बनते जा रहे हैं। इसलिए बिहार और बिहार के बाहर हिन्दी-भाषी तथा हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी नये सिरे से और वैज्ञानिक ढंग से ऐसे शब्दों का सर्वेक्षण और संग्रह कराना आवश्यक है। अन्यथा केवल अँगरेजी शब्दों की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हमें अपनी लोकभाषा के करोड़ों अर्थपूर्ण उपयोगी और ओजस्वी पारिभाषिक शब्दों से वंचित होना पड़ेगा और इससे राष्ट्रभाषा की बहुत बड़ी क्षति होगी। इस प्रकार तो 'गिलावा', 'सुरखी' और 'बँड़ेरी' जैसे रोजमर्रे के शब्द भी हमारे पारिभाषिक कोश में स्थान नहीं पा सकेंगे; क्योंकि अँगरेजी में कोई एक पारिभाषिक शब्द ऐसा नहीं है, जो ठीक-ठीक इनका पर्यायवाची हो और जिसके अनुवाद के लिए इनकी अपेक्षा हो। 'गिलावा' के लिए अँगरेजी में एक नहीं, अनेक शब्दों की आवश्यकता होगी। ग्रियर्सन ने 'गिलावा' के लिए Moistend clay used as mortar, 'सुरखी' के लिए Thepounded bricks used as a substitute for sand और "बँड़ेरी" के लिए Ridge pole का व्यवहार किया है। सर्वेक्षण के द्वारा लोक-भाषा के ऐसे शब्दों का संग्रह कर लेने के बाद उन्हें हम स्वतंत्र रूप से अपने पारिभाषिक शब्द-कोश का अंग बना सकते हैं।

इस दृष्टि से बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के जनसमुदाय में व्यवहृत होनेवाले विभिन्न प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग द्वारा कराया गया। अब तक बिहार की मैथिली, भागलपुरी, मगही, भोजपुरी और संताली भाषाओं के ५४२७७ पारिभाषिक शब्द संगृहीत हो चुके हैं। ये सभी शब्द गाँवों में बसनेवाले विविध व्यवसायियों, शिल्प-जीवियों और किसानों के मुख से संगृहीत हुए हैं। किंतु जैसा कि ऊपर निवेदित किया जा चुका है, प्रस्तुत कृषिकोश में केवल कृषि से संबद्ध शब्द ही लिये गये हैं।

जनपदीय शब्दावली का कार्य—हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हो सका है। अँगरेजों ने इस क्षेत्र में जो थोड़ा कार्य किया था; उसका मुख्य उद्देश्य था—मामले-मुकदमे तथा कचहरी की कार्रवाइयों को समझने में सुगमता के साधन जुटाना। ग्रियर्सन से भी पहले हिन्दी-प्रदेश में इस प्रकार का कार्य पैट्रिक कार्नेगी ने किया था। 'कचहरी टेक्निकैलिटिज'के नाम से उनका शब्द-संग्रह सन् १८७०-७५ ई० के लगभग प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८७७ ई० में निकला था। उसके प्रारंभिक अंशों का डॉ० अम्बाप्रसाद'सुमन' द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर इसमें 'भारतीय साहित्य'

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, २-३, जुलाई, १९५७, पृष्ठ ४३६-४५१) में प्रकाशित किया था। पैट्रिक कार्नेगी के संग्रह के दो वर्षों बाद सन् १८७६ ई० में विलियम क्रुक ने अपना संग्रह 'मैटिरियल्स फार ए रूरल एण्ड एग्रिकल्चरल ग्लासरी आव द नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध' (गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद)—इस नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद १८८५ में ग्रियर्सन के 'बिहार पीजेंट लाइफ' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने से पहले के दोनों ग्रंथों से निस्सन्देह अधिक सफल था; क्योंकि इसके सम्पादक ने लिखित सामग्री का आश्रय छोड़कर विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों से शब्दों का संग्रह किया और कराया। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ ई० में गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, बिहार एण्ड उड़ीसा, पटना से प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सन के वर्षों बाद बीसवीं सदी में इस दिशा में सबसे पहला प्रयास डॉ० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से उर्दू में 'इस्तलाहाते पेशावराँ' के नाम से आठ छोटी-छोटी जिल्दों में अंजुमने तरक्किए उर्दू, दिल्ली (१९३९-४४ ई०) से मौलवी जाफर उर रहमान साहब देहलवी के संपादन में प्रकाशित हुआ। इस कोश में लगभग दो सौ पेशों के बीस हजार शब्द संगृहीत हैं। परन्तु ये शब्द गाँवों के पेशेवरों से नहीं, केवल कुछ मशहूर शहरों और कुछ नई-पुरानी किताबों (जैसे 'गुलजारे काश्मीर', 'आईने अकबरी' आदि) से संगृहीत किये गये थे। शहरों में भी दिल्ली, आगरा और जयपुर आदि कुछ चुनी हुई जगहों से ही अधिकांश शब्द लिये गये थे और वे ही शब्द जो कि सम्पादक के नजर में 'मेयारी' यानी स्टैंडर्ड भाषा के अंग प्रतीत हुए। इस कोश में यह भी नहीं बताया गया है कि कौन-सा शब्द किस क्षेत्र या स्थान से प्राप्त हुआ। फिर भी इसमें बादशाही जमाने के पुराने खानदानों के कारीगरों से या शहरों के कई पेशेवरों से जो शब्द लिये गये हैं, वे मूल्यवान् हैं।

हर्ष है कि इधर हिन्दी में भी इस क्षेत्र में ग्रियर्सन के ही ढंग पर दो उल्लेखनीय कार्य विश्वविद्यालयों के अनुसंधित्सुओं द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक तो डॉ० हरिहर-प्रसादजी गुप्त द्वारा आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के परगना अहिरौला के आधार पर 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' (प्रयाग विश्वविद्यालय के डाक्टरेट का शोध-प्रबन्ध, १९५१ ई०) और दूसरा डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर 'कृषक-जीवन संबंधी शब्दावली' (शोध-प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, १९५६ ई०)। ये दोनों कार्य अपने-अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहे जाएँगे। डा० हरिहरप्रसाद का शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली आदि, १९५६)। तुलना के लिए हमने अपने इस कोश में उसका उपयोग भी किया है। तुलनात्मक अध्ययन करके हम इन कोशों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहाँ तक समानता है और कहाँ तक अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 'कृषि-शब्दावली' नाम से श्री प्यारेलाल

गर्ग द्वारा संपादित एक छोटी-सी ३३ पृष्ठों की पुस्तिका 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' से भी सं० २००० वि० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें केवल कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय-मात्र हैं।

उधर हाल में 'वृत्तिपदकोष' के नाम से तेलुगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली के संग्रह के लिए दक्षिण में इस ढंग का एक आयोजन आंध्र विश्वविद्यालय के डा० भ० कृष्णमूर्ति ने किया है। जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इस प्रकार का कार्य विभिन्न प्रदेशों में शीघ्र होना चाहिए, जिससे हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें कि इनमें से कितने शब्द ऐसे हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर आवश्यक रूपान्तरों के साथ हम ग्रहण कर सकते हैं।

मराठी क्षेत्र में पूना के निकट के गाँवों के कुछ 'सुहार' जाति के घरों में व्यावसायिक शब्दों की जाँच करते हुए मुझे कई ऐसे शब्द मिले जो बिहार में भी प्रायः उसी रूप में प्रचलित हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश में केवल संस्कृत की तत्सम तथा साहित्यिक शब्दावली का ही अखिल भारतीय प्रसार नहीं है, वरन् दिनानुदिन के विभिन्न व्यवसायों में लगी हुई ग्रामीण जन-मंडली की लोकवाणी में भी भाषा की यह मूलभूत समरूपता एक अन्तर्धारा के समान किसी-न-किसी रूप में व्याप्त है, परन्तु इसकी व्यापकता की जाँच तथा व्यावहारिक उपयोग तबतक असंभव है जब तक देश के विभिन्न भागों में जनपदीय शब्दावली के संग्रह और अध्ययन का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न न हो।

अपने देश में तो अभी नहीं, पर इंगलैंड के स्काटलैंड प्रदेश में जनपदीय शब्दावली के क्षेत्र में एक उदाहरणीय और अनुकरणीय कार्य हो रहा है। वहाँ १९२९ ई० में इस कार्य के लिए स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हुई और उसने आक्सफोर्ड इंगलिश लोकभाषा कोश के आदर्श पर कार्य प्रारंभ किया। इस 'स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी' को १० जिल्दों में और ३ स्तंभों के कुल ५२०० पृष्ठों में प्रकाशित करने की योजना बनी। लगभग २८ वर्षों तक कार्य करके १९५७ ई० तक यह सोसाइटी इस डिक्शनरी के केवल तीन खंडों का प्रकाशन अभीतक कर सकी है। इस कोश में स्कॉटलैंड के ग्रामीण अंचलों में बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों के प्रतिनिधि व्यक्तियों और पुरा काल के प्रकाशित साहित्य से शब्दों को संगृहीत करके उन्हें सम्पादित किया जा रहा है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के पर्याय, स्थान-निर्देश, उच्चारण और प्रयोग यथास्थान दे दिये गये हैं। किसी प्रदेश की लोकभाषा-संबंधी कोशों में इससे अच्छा कोश मैंने अबतक नहीं देखा। स्काटलैंड के एडबरा नगर में जाकर और इस कोश के विद्वान् सम्पादक मि० डेविड डी० म्यूरिसन के साथ रहकर मैंने अपनी आँखों उनके कार्यक्रम और प्रणाली को देखा। इस डिक्शनरी के संग्रह और संपादन में कई विद्वान् और संग्रह-कर्त्ता काम कर रहे हैं। वर्तमान संपादक उसके दूसरे संपादक हैं। २८ वर्षों में यह कोश अपने पहले संपादक के जीवन-काल का

अतिक्रमण करके अब अपने दूसरे सम्पादक के कार्य-काल में प्रकाशित हो रहा है। इस सोसाइटी के पास कोश-विज्ञान-संबंधी सभी आवश्यक साधन हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का संग्रह, उनके शुद्ध उच्चारण आदि की बातें प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। वहाँ के कार्य को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। स्कॉटिश नैशनल डिक्शनरी के समान ही हमने भी अपने इस कोश में विभिन्न अर्थ, पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया है। इनके अतिरिक्त इसमें भाषा-विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोकभाषा के शब्दों के वैयुत्पत्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासंभव के दिये गये हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य प्रादेशिक बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा प्रयास रहा है कि यह कोश, हमारी भाषा में अपने ढंग का पहला कोश कहा जा सकता है, यथासंभव प्रामाणिक और उपादेय हो सके।

हमारे लोकभाषा-अनुसंधान-विभाग का कार्य मार्च १९५१ ई० से प्रारंभ हुआ था। इन सात वर्षों की अवधि में कोश का कार्य तो आरंभ से ही होता आया है; किन्तु उसके साथ ही लोकसाहित्य संबंधी दूसरे कार्य भी होते रहे हैं, जिनमें लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि का संग्रह-कार्य और विशेषकर मगही के संस्कार गीतों के सम्पादन का कार्य भी सम्मिलित है। सन् १९५६ तक कार्यालय में अनुसन्धान कार्य करनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे। अब इधर तीन हुए हैं। हाँ, बीच-बीच में एक-आध बार महीने-दो महीने के लिए दो-तीन अतिरिक्त व्यक्तियों से भी कुछ काम लिया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वल्प साधनों के रहते हुए भी इस छोटी-सी अवधि में हम किसी प्रकार कृषि-कोश का पहला खंड पूरा करके निकाल रहे हैं। अपनी परिस्थिति की परिसीमाओं के कारण हम इसे जैसा रूप देना चाहते थे, वैसा नहीं कर सके हैं और इसमें अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हैं, जिन्हें हम आगे के खंडों और परिशिष्ट में यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करेंगे।

कार्य-प्रणाली

इस कोश के सम्यक् उपयोग के लिए हमें अपनी योजना की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, संकलन व्यवस्था, शब्दार्थ-निरूपण, व्युत्पत्ति-निर्वचन तथा क्रमादि संबन्धी कुछ आवश्यक परिचय दे देना उचित है।

पारिभाषिक शब्दों के हमारे इस संग्रह-कार्य के लिए पहले परिषद् की ओर से चार वैतनिक कार्यकर्त्ता नियुक्त किये गये थे। मैंने उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दे कर विभिन्न निर्धारित केन्द्रों में संग्रह के लिए भेजा। वे पृथक्-पृथक् क्षेत्रों के विविध जनवर्गों के प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों से पूछकर शब्दों अर्थों और यथास्थान उनके प्रयोगों को यथोच्चरित रूप में लिख लेते थे और उन्हें परिषद्-कार्यालय में भेज देते थे। यहाँ मेरे निर्देशानुसार उनकी परीक्षा दो विशेष रूप से प्रशिक्षित अनुसन्धायक किया करते थे। परन्तु जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, इस ढंग से संग्रह-कार्य में सन्तोषजनक

प्रगति न होने के कारण पहले की वैतनिक पद्धति हटा दी गई और उसके स्थान में उपस्थलों के लोक-साहित्य और लोकभाषा के संग्रह में अनुराग और योग्यता रखनेवाले लोगों को यथानियम पारिश्रमिक देकर संग्रह-कार्य कराया जाने लगा। इस पद्धति से संग्रह-कार्य में संतोषजनक प्रगति हुई।

कोश में शब्दों के साथ-साथ मुहावरों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। कृषि- सम्बन्धी लोक-कहावतों में प्रयुक्त शब्दों को भी समाविष्ट कर लिया गया है। ग्रियर्सन के 'बिहार पीजैंट लाइफ' के लगभग दस हजार शब्दों की भी हमने अपनी प्रणाली से जाँच की कि उनमें से अब कितने प्रचलित हैं और कितने अप्रचलित तथा प्रचलित रूपों में भी इस बीच में अर्थगत या ध्वनिगत कितने परिवर्त्तन हो गये हैं।

अपनी संगृहीत सामग्री के पुनः परीक्षण के लिए विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप उपयुक्त व्यक्तियों को बुलाकर कोश में आये हुए प्रत्येक शब्द के स्वरूप, अर्थ-प्रयोग और पर्याय के बारे में नियमित रूप से पूछ-ताछ करके आवश्यक संशोधन किया गया। ये व्यक्ति उनसे भिन्न थे जिनसे प्रथमतः शब्द संगृहीत किये गये थे। इस प्रकार पुनः जाँच करने से हमें कई नये शब्द और अर्थ भी प्राप्त हुए जिन्हें यथास्थान समाविष्ट कर लिया गया है।

अपने संग्रहकर्त्ताओं के लिए हमने निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये थे जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना आवश्यक था—

संग्रह-कर्त्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

१. जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।
२. जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उसके सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।
३. जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।
४. जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक् और स्वतंत्र विषय समझा जायगा।
५. कार्य-कर्त्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल घुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनकी स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।
६. शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिये और उनको ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

७. एक शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।
८. अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।
९. प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासंभव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप-विभाग भी कर लेना उचित है।
१०. जो पारिभाषिक शब्द न हों, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।
११. निर्देश-पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यान-पूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।
१२. शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को पृथक्-पृथक् पत्रों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द लिखे जायँ, वहाँ दूसरे विषय न लिखे जायँ।

इन निर्देशों के अनुसार शब्द-संग्रह करने के लिए कार्य-कर्ताओं को एक मुद्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी :—

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था:—

संग्रह की तालिका का विवरण

१. (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
   (ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
२. जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सबडिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।
३. भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।
४. आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके तो पूछताछ से पता लगाकर अन्दाज से देना होगा।
५. वहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, किस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, खरवारी, संथाली, उराँव, किसान, जमींदार, बढ़ई, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक है, कौन कम है, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।
६. सिलसिलेवार संख्या।
७. शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतंत्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिङ्ग का भी (स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, उभयलिङ्ग या अलिङ्ग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा।

ये शब्द वहाँ जन-समाज में वस्तुतः जिस लिङ्ग में व्यवहृत होते हों, उसीका उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।
८. अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में देना होगा। जटिलता दूर करने और अर्थ को तथा प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ आवश्यक हो, वहीं उदाहरण देने की जरूरत होगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण के वाक्य उसी भाषा के हों, जिसके क्षेत्र में काम किया जा रहा हो या अपने बनाये हुए हिन्दी के सरल वाक्य हों।
९. (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि यह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जन-समूह में भी। जैसे, खटिया आदि शब्द जो सामान्यतः प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर', 'पउआ', 'पवई' आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायँगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है :—

सूचियों की विषय-सूची

१. पेशे के औजार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत, बीज आदि।
२. पेशे के ढंग और उनके काम आनेवाले जानवर।
३. पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।
४. पेशे के ढंग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुआई, खुदाई, सिंचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)
५. पेशे की पैदावार के भेद।
६. पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाधाएं और ऐब।
७. पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचानेवाली चीजें।
८. खाने-पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बननेवाली चीजें।
९. मसाले।
१०. खाना बनाने की सामग्रियाँ।
११. घर के सामान, आसन, शय्या आदि।
१२. कपड़े-लत्ते और कपड़ों के नाम (छींट आदि)।
१३. गहने और शृंगार के सामान।
१४. पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।
१५. जमीन और मिट्टी के भेद।
१६. मौसम, हवा, पानी, बादलों के भेद।
१७. तौल और माप।

१८. दूरी, दिशा और समय-सूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि)।
१९. घरेलू और पालतू जानवर, उनके रंग-ढंग, रहन-सहन, भेद, रहने के स्थान बीमारी, चरागाह, भोजनादि की सामग्री।
२०. पशु-पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)।
२१. घर-बाहर तथा जल-थल के कीड़े-मकोड़े (चूँटे-चींटी, ततैया, साँप, गोजर आदि)।
२२. लेन-देन, माहवारी हिसाब।
२३. जमीन के लगान और उसके भेद।
२४. घर, झोपड़े और मन्दिर-मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, जैसे छत, छप्पर, खपरैल आदि।
२५. शादी-ब्याह के शब्द।
२६. शादी-ब्याह के रस्म-रिवाज, (क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) किस्तानों के, (घ) आदिवासियों के।
२७. (क) जात-कर्म (१) हिन्दुओं के (२) मुसलमानों के (३) किस्तानों के (४) आदिवासियों के।
(ख) अनेक।
२८. मृत्यु-संस्कार (क) हिन्दुओं के (ख) मुसलमानों के (ग) किस्तानों के (घ) आदिवासियों के।
२९. सोहनी-रोपनी की संस्कार-विधियाँ।
३०. पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे-संबंधी कचहरी के शब्द।
३१. अन्धविश्वास
३२. तिजारत और बाजार
३३. महाजन और कर्जदार के हिसाब-किताब।
३४. जमींदार और किसान के हिसाब-किताब।
३५. कर्ज, सूद, रेहन आदि।
३६. व्रत, त्योहार (तीज, छठ, होली, ईद, बकरीद, क्रिसमस) और उनकी सामग्रियाँ।
३७. रिक्शा, टमटम, फिटिन, येक्का, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से।
३८. मार-पीट और युद्ध के हथियार।
३९. खेल-कूद, आखेट, मनोविनोद आदि, उनके भेद तथा तत्संबंधी सामग्रियाँ।
(आँखमुँदौवल, कबड्डी, गोटी चौपड़, शतरंज, कुश्ती, कसरत, अखाड़े, मनोविनोद, गुल्लीडंडा, पतंग, कबूतरबाजी आदि)
४०. गाली-गलौज।
४१. आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार।
४२. नाच, गान, रासलीला के शब्द और गीत।

४३. मजहब, जात-पाँत के भेद।
४४. फूल, फल, पेड़-पौधे, घास-फूस और उनके भेद।
४५. बीमारियों के भेद।
४६. घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, संबंधसूचक (माँ, बाप, भाई, बहन, चाची, पड़ोसी, जवार)।
४७. गुण, भाव, सुख-दुख, राग-द्वेष आदि मन के विकार तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक या भावात्मक शब्द।
४८. उत्पातक—(क) प्राकृतिक—भूचाल, आँधी।
(ख) मानवीय—चोरी, डकैती, उसके भेद, व्यापार आदि (सेंध आदि)।
४९. प्राकृतिक संबंधी—नदी, नद, झरने, मैदान, पहाड़ तथा मनुष्यकृत ताल-तलाग, पुल, बाग, बगीचे, कुएँ आदि।
५०. शरीर के विभिन्न अंग—आदमी के (पुरुष के, स्त्री के), जानवरों के, पशु-पक्षियों के, कीड़े-मकोड़ों के।
५१. स्त्रियों में प्रचलित खास शब्द और मुहावरे तथा उनकी गृह-कलाओं से संबद्ध शब्द।
५२. संख्यावाचक शब्द और गिनती।
५३. सर्वनाम के शब्द।
५४. रंगों के भेद और उनके नाम।
५५. खान आदि के शब्द।
५६. भिन्न-भिन्न कामों के भेद तथा कामों की विविध अवस्थाओं के भेद।
५७. स्वतंत्र मुहावरे।
५८. कहावतें।
५९. विविध।

संग्रहकर्त्ताओं को विषय-सूची के इन सभी पक्षों की सार्थकता को भली-भाँति समझाकर संग्रह-कार्य में इनका सदा ध्यान रखने को बता दिया गया था।

जन-समाज के वर्ग

जन-समाज के जिन विभिन्न वर्गों के बीच भेजकर संग्रह-कर्त्ताओं से संग्रह कराया जाता था, उसके लिए भी एक सूची तैयार की गई थी, जो यहाँ दी जा रही है :—

१. किसान	७. मजदूर
२. जमींदार	८. बढ़ई
३. साहूकार, महाजन और बनियाँ	९. लुहार
४. पुरोहित	१०. चमार-चमाइन
५. नाई	११. जुलाहा
६. राज तथा मकान की छाजनी आदि करनेवाले	१२. धोबी

१३. धुनियाँ
१४. जुलाहा
१५. कुँजड़ा
१६. रँगसाज
१७. कुँहार
१८. कहार
१९. दरजी
२०. तेली
२१. बजाज
२२. हलवाई
२३. मछुआ
२४. चुड़िहारा-चुड़िहारिन
२५. अहीर-अहीरिन
२६. पटवारी
२७. कारपरदाज
२८. सुनार
२९. मुसहर
३०. पासी, चिड़ीमार
३१. मेहतर
३२. धाउरी (धनबाद की ओर)
३३. चेरो
३४. चेरो-खारो
३५. कुली
३६. खान, रेलवे, मिलों और फैक्टरियों में काम करनेवालों के शब्द
३७. बीड़ीवाला
३८. तमोली और पानवाला
३९. माली
४०. गंधी
४१. बारी, पमरिया
४२. कचहरी और कानूनी मुकदमे के शब्द
४३. कलाओं के शब्द (लोकगीत, लोक-वाद्य, लोकनृत्य)
४४. तम्बू-कनात-खीमे के काम करनेवाले
४५. आतिशबाजी
४६. तैराकी
४७. वैद्य और हकीम के सामान्य शब्द
४८. साधु-सन्त तथा ओझा-गुनी, जादू-टोना आदि।
४९. नट-नटवे, बहुरूपिया और बाजीगरी
५०. दाई, नौकर, चपरासी, प्यादे आदि
५१. सिपाही, चौकीदार आदि।
५२. कान्दू
५३. मछुआ-मल्लाह
५४. पटवा
५५. ठठेरा
५६. कोयरी
५७. डोम
५८. कसाई
५९. दफ्तरी और जिल्दसाज
६०. विविध—घूप, छिलवट, खराठी, कलई, मधु का काम, नालबंदी, ईंट-पत्थर, ढाला-चामे, गृहोद्योग—चरखा, बन बिनना, कपास ओटना, चक्की चलाना, दही बिलोना।

बिहारी भाषा या भाषाएँ

वास्तव में 'बिहारी' नाम की कोई भाषा न तो बिहार के किसी भाग में बोली जाती है, न बिहार के बाहर। बिहार में किसी से भी पूछा जाय तो कोई भी 'बिहारी' भाषा का नाम नहीं लेगा। न तो प्राचीन शिष्ट साहित्य में ही और न लोक-साहित्य में ही,

किसी भाषा के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा के अर्थ में तो यह एक नया अपनाया हुआ नाम है, जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में ग्रियर्सन द्वारा बिहार की प्रमुख भाषाओं—मगही, मैथिली, भोजपुरी—और उनके भेदों के लिए प्रयुक्त किया गया था। जैसे उन्होंने राजस्थान की बोलियों के लिए एक नया नाम गढ़ा था—'राजस्थानी', वैसे ही बिहार की इन बोलियों का 'बिहारी' नाम रख दिया था। अतएव महाराष्ट्र की भाषा को जिस अर्थ में 'मराठी', गुजरात की भाषा को जिस अर्थ में 'गुजराती', बंगाल की भाषा को जिस अर्थ में 'बँगला' और उड़ीसा की भाषा को जिस अर्थ में 'ओड़िया' कहते हैं, उस अर्थ में भाषार्थक 'बिहारी' शब्द को नहीं ग्रहण किया जा सकता। 'बिहारी' कोई एक भाषा या बोली नहीं, किन्तु उपर्युक्त तीनों भाषाओं का बोधक शब्द है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों भाषाओं की सीमा बिहार में ही सीमित नहीं है। इनमें से भोजपुरी-भाषी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में है। इसी प्रकार मगही-भाषी क्षेत्र का एक भाग (मानभूम का कुरमाली भाषी अंश) अभी हाल में बंगाल में मिला लिया गया है। मैथिली क्षेत्र के भी कुछ अंश बंगाल में सम्मिलित हैं। वस्तुतः ग्रियर्सन ने बिहार में इन बोलियों के विस्तार-साधान्य तथा इनमें की एक विशिष्ट और घनिष्ठ समरूपता है; इन्हीं आधारों पर उनका यह एक समान नामकरण कर दिया था। इन बोलियों या भाषाओं की यह व्यापक समानता उन्हें एक ओर बँगला से पृथक् करती है और दूसरी ओर अवधी तथा अन्य पश्चिमी बोलियों से भी भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। इन समानताओं को अभिव्यक्त करने के लिए, इनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए 'बिहारी' निस्संदेह एक सार्थक संज्ञा है। यहाँ जो संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम इसी अर्थ में इस शब्द का आवश्यकतानुसार प्रयोग करेंगे।

इस दृष्टि से 'बिहारी' उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में छोटानागपुर पठार तक और पूर्व में बंगाल की सीमा से लेकर पश्चिम में मध्य प्रदेश के सरगुजा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, फैजाबाद और बस्ती जिले के पूर्व तक बोली जाती है। इस प्रकार 'बिहारी' भाषा के पूर्व में बँगला, दक्षिण में ओड़िया, पश्चिम में छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी जो हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाएँ हैं, और उत्तर में नेपाली बोली जाती है।

इस सीमा के अंदर इस भाषा के साथ-साथ आदिवासियों में संताली, मुंडारी, हो, खड़िया, कोरकु और भूमिज आग्नेय या निषाद कुल की और ओरॉव या कुडुख तथा माल्तो द्रविड़ कुल की हैं।

'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी इन तीनों 'बिहारी' बोलियों के बोलनेवालों की संख्या क्रमशः एक करोड़, पैंसठ लाख तथा दो करोड़ से ऊपर है। ये 'बिहारी' बोलियाँ आर्यभाषा परिवार की हैं; परन्तु उनमें यहाँ की

कोल और द्रविड़ भाषाओं के भी प्रचुर प्रभाव हैं। ये हिंदी प्रदेश के पूर्वी अंचल की अंतिम उपभाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में भी 'बिहारी' भाषा-क्षेत्र हिंदी प्रदेश के ही अंतर्गत रक्खा गया है। पूर्व में इनके आगे बँगला का अंचल प्रारम्भ हो जाता है।

बिहार में बोली जानेवाली भाषाओं की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हमने एक विशेष मानचित्र तैयार किया है, जो इस कोश के आरंभ में दिया जा रहा है। उससे बिहारी भाषाओं के विस्तार, परिसीमा आदि का परिचय अनायास हो सकेगा।

'बिहारी' का हिन्दी और बँगला से संबंध

बंगला और 'बिहारी' के संबंध का विचार करते हुए ग्रियर्सन ने बँगला के 'अ' से 'बिहारी' (मैथिली) के 'अ' का साम्य दिखलाया है, किन्तु उन्हीं के लेखानुसार 'बिहारी' का 'अ' अक्षर आयत (Broad sound) है, जब कि बँगला का 'अ' अधिक आयत। और यह साम्य भी भोजपुरी-मगही में तो कदापि नहीं है। इस संबंध में 'आयत' से उनका आशय स्पष्टतः 'वर्तुल' से था।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि बँगला में दंत्य 'स' के स्थान में तालव्य 'श' का उच्चारण होता है, जिसे प्राकृत व्याकरण में मागधी का लक्षण बताया गया है। पर आज किसी भी बिहारी बोली में ऐसा नहीं होता। बिहारी में सर्वत्र तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के स्थान में दंत्य 'स' का ही उच्चारण होता है। उर्दू में तालव्य 'श' और संघर्षी 'ज' के लिए जो लिपि-चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनपर नुक्ते दिये जाते हैं। इस संबंध में मजाक करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि दुनिया भर के नुक्ते एक साथ मिलकर भी किसी बिहारी से 'श' को 'स' के बिना तथा 'ज़' को 'ज' के सिवा और कुछ कदापि उच्चरित नहीं करा सकते (बिहार पीजैंट लाइफ, भूमिका, पृ०-३)। हिंदी प्रदेश की दूसरी बोलियों में भी यही विधान है। शब्द-भंडार तथा परसर्गादि के रूप-संबन्धी अनेक व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी 'बिहारी' का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है।

'बिहारी' के भेद-उपभेद

उपर्युक्त तीन उपभेदों के अतिरिक्त इधर व्याकरण-संबंधी प्रयोगों के कुछ अन्य दृश्यमान अंतरों के आधार पर दो और नाम कल्पित करके 'बिहारी' के तीन के स्थान में अब कुछ लोगों के द्वारा पाँच उपभेद बताये जाने लगे हैं:—

मैथिली, अंगिका या भागलपुरी, वज्जिका, मगही और भोजपुरी। इनमें से अंगिका या भागलपुरी को ग्रियर्सन ने 'छिकाछिकी' नाम से मैथिली की ही एक उपभाषा बतलाया है, और वज्जिका को पश्चिमी मैथिली। स्वतः भोजपुरी के अंतर्गत पूर्वी, पच्छिमी और दक्खिनी (नागपुरिया)—ये भेद तो किये ही जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी भेदों और उपभेदों में आंतरिक साम्य होते हुए भी कुछ-न-

कुछ अपनी-अपनी पृथक् विशेषताएँ भी हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन सबको केवल दो भेदों में विभक्त करके मगही को सरलता से मैथिली के ही अंदर ले लिया जाय। मगही और मैथिली का गठन कई अंशों में परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण में भी पार्थक्य है। शब्दरूप और क्रियारूप भी भिन्न-भिन्न हैं।

वस्तुतः बिहार की ये सभी उपभाषाएँ पूर्वकाल में संभवतः किसी एक ही मूल से निकलकर नये स्रोतों की तरह अपने पृथक्-पृथक् मार्गों से भिन्न रूपों में प्रवाहित होती आ रही हैं। यह मूल भाषा 'मागधी' बताई जाती है, जो बँगला, असमी और ओड़िया का भी उद्गम मानी जाती है। इस दृष्टि से ये सभी बहनें हैं। एक रूप नहीं, समरूप हैं। मगही और मैथिली से भोजपुरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर है। संभव है, उस पर अर्ध-मागधी का भी कुछ प्रभाव है। सच पूछें तो भारतवर्ष की किसी भी आधुनिक भाषा को किसी विशेष प्राकृत या अपभ्रंश के साथ हम निश्चयात्मक रूप से संबद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जैसा टर्नर (R. L. Turner, Gujarati, Phonology, J. R.A.S., १९२५ ई., पृ०-३२९) और ब्लाक (J. Block, La Formation de La Langue Marathi) महोदयों ने इंगित किया है।

प्राचीन प्राकृत या अपभ्रंश काल में किसी विशेष जनवर्ग द्वारा वास्तविक रूप में बोली जानेवाली भाषा का कोई प्रामाणिक लिखित उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं है। और दूसरी ओर वर्तमान देशी भाषाओं में तीर्थ-यात्रा, सांस्कृतिक-एकता, शादी-ब्याह के संबंध, देश-प्रदेश के यातायात तथा भाषागत समान परिवर्तनों के कारण बहुत कुछ मिश्रण हो चुका है। ऐसी दशा में प्राकृतिक वैयाकरणों की शब्दावली का आश्रय ग्रहण करके हम अधिक-से-अधिक यही कह सकते हैं कि 'बिहारी' मध्यभाषा-वर्ग के अंतर्गत आती है, जिसके पश्चिमी रूप अर्धमागधी और पूर्वी रूप मागधी, इन दोनों के बीच के प्रदेश में संबद्ध होने के कारण उसमें कुछ-कुछ दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।

कुछ सामान्य नियम

बिहारी की विशेषता में उसकी ध्वनियों के रागात्मक तत्त्व भी उल्लेखनीय हैं। कई ध्वनिराग तो ऐसे हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। उनका विस्तृत विश्लेषण, जहाँ तक भोजपुरी के संबंध में लागू है, मैंने लंदन विश्वविद्यालय के अपने शोध-प्रबंध में किया है। उच्चारण तथा बिहारी शब्दों के यथावत् अध्ययन के लिये इनका थोड़ा परिचय अपेक्षित है। उदाहरण के लिये एक लिखित-रूप लीजिए—"देखल।'

बिहारी में यह विभिन्न रागों में उच्चरित होकर तीन विभिन्न अर्थों का द्योतक है—

देख् लऽ—देख लो।

देख लऽ—तुमने देखा।

देखल—देखा हुआ।

पदांत के 'अ' का उच्चारण बिहारी में कुछ स्थितियों में होता है। समझाने के लिए ग्रियर्सन (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द—१, भाग—१, १९२७ ई०, जिल्द—५,

भाग—२, १६०१ ई०) ने बहुत प्रयत्न किया। पर ध्वनि-विज्ञान की प्रणाली के बिना उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन था। इस ध्वनि-संकेत के लिए नागरीलिपि में 'ऽ' इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

बिहारी वाक्यों तथा शब्दों के संगठन में बलाघात, स्वराघात तथा मात्रा की बड़ी रोचक तथा विशिष्ट व्यवस्था है। मात्रा-व्यवस्था के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि कुछ चुने हुए दीर्घाक्षरों की धातुओं—जैसे, खा, जा आदि के रूपों को छोड़कर किसी शब्द या पद के अंतिम स्थान से दो स्थान पूर्व का कोई अक्षर दीर्घ रूप में नहीं टिक सकता। उसका ह्रस्वीकरण अवश्यंभावी है। जैसे—

बाहर—बहरी
बोली—बोलिया
देखल—देखली

इनमें दाहिनी ओर के रूपों में प्रथमाक्षर के स्वरों का उच्चारण ह्रस्व होता है। ग्रियर्सन ने इस रागात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख 'उपधापूर्व का नियम' इस नाम से किया है।

मात्रा की रागात्मक प्रक्रिया

अ—अकार की मात्रा का एक वह रूप है, जो सामान्यतया हिन्दी की सभी उपभाषाओं में है। यथा—अग्नि, अटल।

दूसरा रूप वह है, जो अतिह्रस्व या अर्ध-ह्रस्व है और जो शब्दों के बीच में आया करता है। यह शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता है अथवा अर्धश्रुत जैसा होता है। इसे ग्रियर्सन ने 'अश्रुत स्वर' कहा है। यथा—'केतरपारा', 'पतरवाड़ा', इन शब्दों के तीसरे 'र' में स्थित 'अ' मात्रा का श्रवण नहीं होता है। यह एक ऐसा 'अ' है जो द्रुतगति के भाषण में शून्यवत् मूल्य भी ग्रहण कर ले सकता है। ऐसे शब्दों को लिखा तो जाता है, केतरपारा, पतरवाड़ा के रूप में; किंतु उच्चारण के अनुसार ये 'केतर्पारा' 'पतर्वाड़ा' जैसे हो जाते हैं।

सामान्यतः शब्दों के अंतिम 'अ' का उच्चारण नहीं होता है। कुछ विशेष रूपों को छोड़कर अन्यत्र हल्दांत का 'अ' अनुच्चरित रहता है और अंतिम वर्ण हिंदी के समान ही हलंतवत् उच्चरित होता है; यथा—'कल'। किंतु लिखने में वह हलंत न लिखा जाकर पूरा लिखा जाता है।

जिन रूपों में अंतिम 'अ' उच्चरित होता है, उनमें उसका कुछ वर्तुल उच्चारण होता है।

यत्र-तत्र भागलपुरी रूपों में यह अंतिम 'अ' 'ओकार' रूप में इस कोश में अंकित किया गया है, क्योंकि शब्द-संग्रह करनेवालों ने उसे उसी प्रकार उल्लिखित किया है।

आ—दीर्घ 'आ' की मात्रा का उच्चारण एक तो वैसा ही होता है जैसा कि सामान्यतः हिंदी की दूसरी उपभाषाओं में। किंतु इसका बिहारी भाषाओं में ह्रस्व उच्चारण भी होता है। जैसे—आसमान, मालपूआ आदि में आदि का 'आ'।

इ-उ—शब्द के अंत में ह्रस्व इ, उ की ध्वनि अर्धश्रुत होती है, जैसे—मैथिली में 'कयलन्हि', 'करियहु', 'पानि' प्रयोगात्मक प्रणाली से जाँच करने पर भोजपुरी में व्यवहृत इस अंतिम ह्रस्व 'इ' और 'उ' की ध्वनि फुसफुसाहट की ध्वनि सिद्ध होती है, जैसे आगि, मधु।

ए—ओ

ये दोनों दीर्घस्वर बिहारी में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व भी होते हैं। इनके ह्रस्वीकरण के नियम वे ही हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उदा०—अंगेठिहा, अगोरिया। इन दोनों शब्दों में अंतिम दो अक्षरों के पूर्व के ए और ओ ह्रस्व हो गये हैं। यही नियम सर्वत्र लागू है। इसलिए कोश में इनके लिए कोई पृथक चिह्न देना आवश्यक नहीं समझा गया।

सन्ध्यक्षर स्वर

पश्चिमी हिंदी में नियमित रूप से सन्ध्यक्षर स्वर व्यवहृत होते हैं, परंतु बिहारी बोलियों में वे प्रायः संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। इसलिए हम इन्हें स्वरानुक्रम या यात् श्रुति रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यथा 'ऐ' के स्थान में 'अइ', 'अय्' और 'औ' के स्थान में अउ-अव्। उदाहरण—ऐंठा के स्थान में अईंठा, पैत के स्थान में पइत, पौर के स्थान में पउर।

साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें 'ऐ' का उच्चारण 'अय्' और 'औ' का उच्चारण 'अव्' होता है।

यथा—पौद के स्थान में पवद। पैर के स्थान में पयर। बैल के स्थान में बयल।
संभव है, ये 'अय्'। अव् राग वाले शब्द पश्चिम के आगत शब्द हों।

साधारण बोलचाल में द्रुतगति के उच्चारण में सन्ध्यक्षर स्वर के रूप में भी इनका उच्चारण सुना जाता है, जिसमें 'ऐ' के एक उच्चारण में सन्ध्यक्षर की गति 'अ' से 'इ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ए' की ओर एवं 'औ' के एक उच्चारण 'अ' से 'उ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ओ' की ओर रहती है।

कोश में इन भेदों के प्रदर्शन के लिए अलग लिपि-चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बिहारी बोलियों में जो रूप सामान्यतः प्रचलित हैं, वही दिये गये हैं। अइ और अउ के उच्चारण में तो स्वरानुक्रम वाला रूप दिया गया है और अय् तथा अव् वाले रागात्मक रूपों को सन्ध्यक्षर द्योतक लिपि-चिह्न ऐ तथा औ द्वारा ही संकेतित कर दिया गया है। बिहारी उच्चारण के अनुसार तो अय् और अव् वाले रूप ही देना चाहिए

था, किंतु हिंदी में और इन रूपों में संध्यक्षर स्वर तथा इन्हीं मात्राओं का प्रयोग होता है, इसलिए इस कोश में इसी हिंदी प्रचलित रूप का आश्रय लिया गया है।

यदि किसी क्षेत्र से 'अइ' और 'अउ' वाले रूपों का रूपांतर 'ऐ' और 'औ' वाला रूप प्राप्त हुआ है तो उन रूपों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है। यथा—कँइत, कैंत, कउर, कौर।

य, व की श्रुति

किसी शब्द में इकार या उकार के बाद यदि कोई दूसरा स्वर हो तो दोनों स्वरों के बीच क्रमशः 'य' और 'व' की श्रुति होती है। यह श्रुति बराबर लिखी नहीं जाती है। इसलिए हमने कहीं श्रुति सहित रूपों का व्यवहार किया है और कहीं श्रुति रहित। जहाँ श्रुतियों का व्यवहार नहीं किया गया है, वहाँ भी ये उपर्युक्त रूप में समझी जा सकती हैं। यथा—करिआ-करिया, अँसुआ-अँसुवा।

अनुस्वार और अर्धानुनासिक

इस कोश में शब्द के मध्य के निःस्वर पंचमवर्ण अनुस्वार के रूप में व्यवहृत हुए हैं और स्वरों के अनुक्रम में ये सबसे पहले रखे गये हैं।

बिहारी के किसी शब्द में अंत के दो या दो से अधिक अक्षरों के पूर्व का अनुस्वार अर्धानुनासिक रूप में परिणत हो जाता है। यथा—अँटल, अँगेठिया, अंकुर, अँकरियाहल।

संस्कृत के अनुस्वारयुक्त तत्सम शब्द यदि दो अक्षरोंवाले हों तो बिहारी के तद्भव रूप में उस शब्द के पंचमवर्ण के पूर्व का 'अ' स्वर दीर्घ और अर्धानुनासिक हो जाता है। यथा—पंक से पाँक, दंड से डाँट, दंत से दाँत।

कोश में सर्वत्र अनुस्वार की तरह अर्धानुनासिक भी वर्णानुक्रम में स्वरों के पूर्व ही रखे गये हैं। अनुस्वार और अर्धानुनासिक में कोई पौर्वापर्य नहीं बरता गया है।

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण का संयुक्त रूप

अनुस्वार अथवा पंचम वर्ण के बाद यदि तृतीय या चतुर्थ वर्ण का संयोग हो तो बिहारी में ऐसे शब्दों के चार रूप संभव हैं—पंचम के साथ पंचम, अर्धानुनासिक के साथ मात्रा समतोलन के नियमानुसार दीर्घीकरण अथवा दीर्घीकरण के साथ पंचम वर्ण का व्यवहार। चतुर्थ वर्ण अनुनासिक के साथ तो अपने असली रूप में रहता है, अन्यथा 'ह' के साथ संयुक्त होकर महाप्राण नासिक ध्वनि के रूप में परिणत हो जाता है। जैसे—

अनुस्वार अथवा पंचम और तृतीया या चतुर्थ के संयुक्त रूप	द्वित्व या नासिक महाप्राण	अर्धानुनासिक	नासिक
लंबा/लम्बा	लम्मा	लाँबा	लामा
खंभा/खम्भा	खम्हा	खाँभा	खाम्हा
कंधा/कन्धा	कन्हा	काँधा	कान्हा

इनमें से प्रथम दो रूप, जो अधिक प्रचलित हैं, वे ही यहाँ इस कोश में दिये गये हैं।

ड़ और र

बिहारी भाषाओं में 'ड़' और 'र' का भेद तो है, किन्तु इन दोनों के उच्चारण में नियमितता नहीं है—विशेषतः मैथिली में। अतः एक ही शब्द में ये दोनों उच्चारण संभव हैं, कभी 'ड़' कभी 'र'। यथा—अँगेढ़िया, अँगेरिया; अँगेढ़ी, अँगेरी। इस कोश में यथासंभव ये दोनों ही रूप दिये गये हैं। किंतु जहाँ ऐसे दोनों रूप नहीं भी हों, वहाँ भी दो रूप संभावित समझने चाहिए। 'ड़' और 'र' के इस विकल्प से मूल शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। ऐसे स्थलों में उन्हें समान ही मानना संगत होगा।

मगही में कभी-कभी महाप्राण ध्वनि में विपर्यय भी हो जाता है, यथा—'चढ़ के' के स्थान में 'चहड़ के'।

हमने कोश में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया है—

कोश में व्यवहृत क्रम

१। कोश के आरम्भ में अक्षर-शीर्षक 'अ', 'आ' आदि १६ प्वाइंट काले में दिया गया है।

२। इसके बाद वर्णानुक्रम से कृषिवाची मूल शब्द दिये गये हैं। ये १२ प्वाइंट सं० १ में हैं।

३। शब्दों के पश्चात् निर्देश चिह्न (—) देकर गोल कोष्ठ में व्याकरण संकेत (सं०, क्रि०; आदि) दिये गये हैं।

४। तत्पश्चात् मूल शब्द का प्रधान पारिभाषिक अर्थ दिया गया है। यदि एक शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हैं, तो किसी भी अर्थ के पहले कोष्ठक में संख्या-क्रम देकर विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रयास यही रहा है कि अर्थ की प्रधानता के अनुसार ही उनका क्रम भी हो। यदि उस शब्द का कोई सामान्य अर्थ भी है, तो वह उसी क्रम में अंत में, दिया गया है।

५। अर्थ के पश्चात् जिस क्षेत्र में वह अर्थ प्रचलित है, उस क्षेत्र का संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिया गया है। यदि एक से अधिक क्षेत्रों में वह अर्थ प्रचलित है, तो उन सभी क्षेत्रों का संक्षिप्त रूप दिया गया है। इस संक्षिप्त रूप का अर्थ है कि या तो वह शब्द उस अर्थ में निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रचलित है, अथवा उक्त अर्थ में उस क्षेत्र से संगृहीत हुआ है। उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि केवल उक्त क्षेत्र में ही वह शब्द अथवा अर्थ प्रचलित है। संभव है, वह दूसरे क्षेत्रों में भी हो। यहाँ मुख्यतः इसलिए उस क्षेत्र का उल्लेख किया गया कि उक्त शब्द अथवा अर्थ निर्दिष्ट क्षेत्र से ही संगृहीत हुआ है।

अर्थ संकेद पाइका सं० ३ मोनो टाइप में दिया गया है।

६। कोष्ठक में क्षेत्र-निर्देश के पश्चात् यदि उक्त शब्द का कोई दूसरा भी पर्यायवाची शब्द है, तो उसका भी 'दे० (देखिए)' के बाद उल्लेख कर दिया

गया है। यह दे० "........" कभी-कभी मूल शब्द के बाद में ही प्रयुक्त हुआ है और वहाँ अर्थ न देकर केवल पर्याय का निर्देश कर दिया गया है, जिससे कि उस पर्याय के आगे वह देख लिया जाय।

७। इसके उपरान्त 'पर्या०' (पर्याय) देकर पारिभाषिक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं और प्रत्येक पर्याय के आगे गोल कोष्ठक में क्षेत्र का संक्षिप्त रूप है। एक से अधिक पर्याय के रहने पर सभी का पूर्वोक्त क्रम से उल्लेख किया गया है। ये सभी पर्याय बिहारी भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द हैं। यत्र-तत्र आजमगढ़ और बनारस के आस-पास के भी शब्द दे दिये गये हैं; क्योंकि ये दोनों स्थान भोजपुरी से सम्बद्ध हैं। ऐसे शब्दों के आगे भी स्थान निर्देश कर दिया गया है।

८। पर्यायों के बाद बड़े कोष्ठकों में कोश के मूल शब्द के वैयुत्पत्तिक या पुनर्निर्मित समरूप दिये गये हैं। इनमें यथासंभव शब्द के ऐतिहासिक विकास को ध्यान में रखा गया है। साथ ही कहीं व्युत्पत्ति के साथ और कहीं बिना व्युत्पत्ति के भी मूल शब्द के तत्सम संस्कृत शब्द और आगे तद्भव, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के पर्याय रूप दे दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के आगे कोष्ठक में तत्तद् भाषा का संक्षिप्त रूप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त इसी कोष्ठक में शब्दों की व्युत्पत्ति या पुनर्निर्मिति-विषयक विभिन्न मत भी यथास्थान निर्देश के साथ दिये गये हैं। यहाँ जिस पुस्तक अथवा लेखक का नाम लिखा गया है, उसके संक्षिप्त रूप के पहले एक निर्देश-चिह्न लगा दिया गया है।

हमारी लोकभाषाओं में कई ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो संस्कृत के विभिन्न कोशों में तो उसी रूप में सम्मिलित हैं, पर संस्कृत पालि और प्राकृत के साहित्य में उनका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसे स्थलों में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के कोशों से उन शब्दों के उद्धरण दे दिये गये हैं और अन्त में उन कोशों के संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिये गये हैं। जैसे—'काश' के लिए 'कटाह' और 'ढेंका' के लिए 'ढेंढक'।

यत्र-तत्र आवश्यकतावश कोष्ठक के अन्दर और कहीं-कहीं बाहर भी, शब्द की विशेष व्याख्या के लिए 'टि०' (टिप्पणी) देकर विस्तृत विवरण या अर्थ दिया गया है।

कोष्ठक के अन्दर व्युत्पत्ति आदि के रूप तिर्यगक्षर (१२ प्वाइंट इटालिक्स) में दिये गये हैं।

शब्दार्थ-निरूपण

इस कोश में बिहार प्रदेश के विभिन्न जिलों अथवा क्षेत्रों में बसनेवाले कृषक-वर्ग में प्रचलित और प्रयुक्त होनेवाले कृषि-संबंधी पारिभाषिक शब्द ही रखे गये हैं। इसमें यथाश्रुत मूल शब्द रखे गये हैं, उनमें कोई साहित्यिक संशोधन नहीं किया गया है। इन शब्दों के मूल रूप में होते हुए भी इनमें उच्चारण-ध्वनि का निर्देश नहीं किया गया है। ध्वनि के लिए आगे कुछ प्रक्रियात्मक नियम दिये जा रहे हैं, जिनसे उनकी मूलगत ध्वनि का ज्ञान हो जाने से ऐसे ध्वनि-चिह्नों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

ये सभी मूल शब्द प्रातिपदिक रूप में रखे गये हैं। इनके विभक्त्यन्त रूप का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। बिहार की तीनों भाषाओं में शब्दों के जहाँ समान रूप हैं, वहाँ वे उन्हीं रूपों में दिये गये हैं। पर किसी शब्द के रूप में भेद होने पर उस भिन्न रूप शब्द को मूल शब्द मानकर पृथक् अपने अनुक्रम में रखा गया है।

अर्थ समान होने पर तीनों भाषाओं में पाये जानेवाले भिन्न रूप शब्द पर्याय के रूप में मूल शब्द के आगे या अर्थ के बाद दे दिये गये हैं।

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर उन अर्थों को अनुक्रम-संख्या देकर अलग-अलग दिखाया गया है।

जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ वस्तुओं के अर्थ और रूप को स्पष्ट करने के लिए चित्र भी दे दिये गये हैं।

इन शब्दों को मैथिली, मगही, भोजपुरी या भागलपुरी आदि बोलियों की सीमा में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि तत्तद् भाषा-क्षेत्र के अंतःपाती क्षेत्र-विशेष के नाम का संकेत कर देना ही हमारा आशय है। अतः सामान्यतः हमने जिलों अथवा उनके अन्दर के क्षेत्रों के नाम दे दिये हैं। मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि का उल्लेख असार्वत्रिक है। किन्तु ये सभी उल्लिखित क्षेत्र मै०, मग०, भोज० और भाग० के अन्दर ही आते हैं। इन भाषाओं के क्षेत्र की सीमा के बाहर का कोई क्षेत्र इसमें सम्मिलित नहीं है।

अबतक भाषा-वैज्ञानिकों ने बिहार की पटना कमिश्नरी, तिरहुत कमिश्नरी, और भागलपुर कमिश्नरी के संतालपरगने के कुछ भागों और संतालों को छोड़कर सभी जिलों में बोली जानेवाली बोलियों का मैथिली, मगही और भोजपुरी के ही नाम से वर्गीकरण किया है। कोश में दिये हुए अपने मानचित्र में भी हमने इसी मान्यता का अनुसरण किया है। परन्तु इसके प्रतिकूल आज भागलपुरी क्षेत्र के कुछ कंठों से सहज मातृभाषा-प्रेम से प्रेरित एक अस्फुट आन्दोलित स्वर सुनाई पड़ रहा है कि सहरसा जिले के उत्तरी भाग को छोड़कर संपूर्ण भागलपुर कमिश्नरी की बोली 'भागलपुरी' है, जो मैथिली से सर्वथा भिन्न है। ग्रियर्सन ने इसे 'छिका-छिकी' कहा है। किन्तु हमें यहाँ न तो इसका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत करना है और न इसके पक्ष-विपक्ष में हमारा कोई आग्रह ही है। कोश प्रस्तुत करते समय मुख्यतया हमारा यही ध्यान रहा है कि भाषाओं का क्षेत्रीय महत्त्व होने के कारण उनका निर्देश भी क्षेत्र-विशेष के नाम से ही हो। अतः हमने सर्वत्र क्षेत्र-विशेष का उल्लेख किया है, न कि किसी भाषा-विशेष का। तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए क्षेत्रीय विभिन्नताओं का निर्देश अधिक उपयुक्त है। क्षेत्रीय विभिन्नताओं के निर्देश में यहाँ केवल जिलों का ही निर्देश नहीं किया गया है, प्रत्युत जिलों के अवान्तर क्षेत्रों का भी निर्देश किया गया है। यथा—द० मुं०, द० भा०, द० प० शाहा० आदि।

क्रिया का मूल रूप

(१) इस कोश में क्रिया का मूल रूप 'ल' प्रत्ययान्त लिया गया है। यथा—अँटल=अँटना, करल=करना आदि।

सामान्यतया बिहार की तीनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय ही लगता है। इसलिए यहाँ यही सामान्य रूप लिया गया है। इसके अतिरिक्त 'ब' प्रत्ययान्त एक और रूप भी है, जो मैथिली क्षेत्र में प्रचलित है। यथा—जाएब, जायब आदि। परन्तु यह रूप विशेष स्थलों में ही व्यवहृत होता है। इसलिए क्रियार्थक संज्ञा का यहाँ सामान्य रूप 'ल' प्रत्ययांत ही रखा गया है।

मगही, मैथिली, भोजपुरी और भागलपुरी सभी भाषाओं में समान रूप से 'ब' भविष्यार्थक प्रत्यय है, किन्तु मगही में विशेष क्षेत्र में 'ब' के बदले 'म' का भी प्रयोग होता है, यथा=जाएब=जाएँगे, जायम—जाएँगे।

बिहारी भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में सामान्यतया 'ल' प्रत्यय लगता है। यह 'ल' कृत् प्रत्यय है। अतः यह सामान्यभूत और दूसरे भूतकालिक भेदों का भी प्रत्यायक है। साथ ही यह 'ल' क्रियाजन्य विशेषण प्रत्यय भी है।

उदाहरण—अँटल=अँटा हुआ, समाया हुआ।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया का मूल रूप 'आवल' प्रत्यय लगाकर रखा गया है। यथा—अँटल का अँटावल, अँटकल का अँटकावल।

'आवल' का कहीं-कहीं 'आयल' रूप होता है। यथा—अँटकल से अँटकायल। अँटकावल और अँटकायल—इन दोनों रूपों में क्रमशः 'व' और 'य' की श्रुति है। तदनुसार इनके रूप आउल, आओल और आइल, आयल भी लिखे जा सकते हैं। इन रूपों का समावेश सर्वत्र नहीं किया गया है; क्योंकि उन्हें स्वयं समझा जा सकता है। 'य' या 'व' श्रुतिविषयक नियम आगे दिये जा रहे हैं।

(३) 'आवल' और 'आयल' प्रत्यय प्रातिपदिक रूपों से धातु (नाम-धातु) बनाने में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—अँगुरी >अँगुरियावल, अँखुआ >अँखुआयल।

क्रिया का उपर्युक्त रूप ही इस कोश में व्यवहृत हुआ है। काल, वचन आदि के अनुसारी रूप इसमें छोड़ दिये गये हैं। हिन्दी का 'ना' प्रत्ययांत रूप बिहारी भाषाओं में नहीं होता।

जहाँ-जहाँ क्रिया के मूल रूप के लिए 'ल' प्रत्ययान्त क्रियार्थक संज्ञा का रूप यहाँ दिया गया है, वहाँ-वहाँ क्रिया के साथ प्रायः (वि०—विशेषण) का निर्देश करके विशेषण-विशिष्ट अर्थ भी दिये गये हैं। यदि कहीं ऐसा न भी हो, तो ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'ल' प्रत्ययांत क्रिया रूप को विशेषण भी समझ लेना चाहिए और वहाँ वैसे अर्थों का अवबोध कर लेना उचित है।

क्रियाओं के आन्तरिक भेद—सकर्मक, अकर्मक का व्याकरण-संबंधी निर्देशों में उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है; क्योंकि यह तो अर्थ और प्रयोग से ही जाना जा सकता है।

व्याकरण, व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विषयक संक्षिप्त रूप

अ० क्रि०	अकर्मक क्रिया
अनु०	अनुकरणात्मक
अनुवा०	अनुवादात्मक
अल्पा०	अल्पार्थक
अल्पा० प्र०	अल्पार्थक प्रत्यय
अव्य०	अव्यय
अस्	अस्त्यर्थक
उदा०	उदाहरण
कहा०	कहावत
क्रि०	क्रिया०
क्रि० प्र०	क्रिया-प्रत्यय
क्रि० वि०	क्रिया-विशेषण
टि०	टिप्पणी
दे०	देखिए
देशी	देशी
देशी प्र०	देशी प्रत्यय
धा०	धातु
ना० धा०	नाम धातु
ना० धा० प्र०	नाम धातु प्रत्यय
निषे०	निषेधात्मक
पुं०	पुंलिंग
प्रे०	प्रेरणार्थक
मिला०	मिलाइए
मु० प्र०	मुस्लिम प्रयोग
मु० री०	मुस्लिम रीति
मुहा०	मुहावरा
यौ०	यौगिक
ला०	लाक्षणिक
लोको०	लोकोक्ति
वि०	विशेषण
वि० प्र०	विशेषण-प्रत्यय
विशे०	विशेष प्रयोग
वै०	वैकल्पिक प्रयोग

सं०	संज्ञा
संभ०	संभवतः
स० क्रि०	सकर्मक क्रिया
सादृ०	सादृश्यार्थक
सामा०	सामान्य
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्वा० प्र०	स्वार्थिक प्रत्यय

< से व्युत्पन्न।

> रूप-परिवर्तन।

√ संस्कृत के मूल धातु।

= सम, समार्थ, अर्थ।

? संभावित, संशयापन्न।

[ ] व्युत्पत्ति, दूसरी भाषाओं के पर्याय।

( ) (१) शब्द के आगे व्याकरणविषयक निर्देश, शब्द और विवरण के आगे स्थान-निर्देश, भाषा-निर्देश, कहीं-कहीं स्पष्टीकरण।

(२) मूल धातु के आगे उस धातु का अर्थ, कहीं मूल रूप में, कहीं हिंदी में।

(३) बड़े कोष्ठ के अन्तर्गत पुस्तक-निर्देश, भाषा-निर्देश, प्रत्यय-निर्देश।

× गुणात्मक, यौगिक या समस्त पद का विग्रहीत रूप।

— पुस्तक-निर्देश, अर्थ का स्पष्टीकरण।

० संक्षिप्त रूप के आगे।

❀ पुनर्निर्मित शब्द का संभावित रूप।

भाषाविषयक संक्षिप्त रूप

अँ	अँगरेजी
अ०	अवधी
अव०	अवधी
असा०	असमिया
उ० प० मै०	उत्तर-पश्चिम मैथिली
उ० पू० मै०	उत्तर-पूर्व मैथिली
उ० मै०	उत्तरी मैथिली
उर्दू	उर्दू
ओ०	ओड़िया
क०	कन्नड़
कश्म०	कश्मीरी
काफि०	काफिरिस्तानी

कुमा०	कुमाऊँनी
गु०	गुजराती
ग्री०	ग्रीक भाषा
जर०	जर्मन भाषा
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
द० प० मै०	दक्षिण-पश्चिम मैथिली
द० पू० मै०	दक्षिण-पूर्व मैथिली
द० मै०	दक्षिण मैथिली
दर०	दरभंगा
दर०-१	दरभंगा सदर और मधुबनी सबडिविजन की मैथिली
दरदी०	दरदी (कश्मीरी) भाषा
ने०	नेपाली
पं०	पंजाबी
प० मै०	पश्चिमी मैथिली
पश्त०	पश्तो
लद्दा०	लद्दाखी
पा०	पालि
पुर्त०	पुर्तगाली
प्रा०	प्राकृत
प्रा० फा०	प्राचीन फारसी
फा०	फारसी
बिहा०	बिहारी
भोज०	भोजपुरी
मग०	मगही
मग०-५	मगही ५—दक्षिण-पूर्वी अर्थात् शेखपुरा, बरबीघा (मुँगेर) में प्रयुक्त मगही
म० भा०	मध्य भारतीय (मिडिल इंडोआर्यन)
मरा०	मराठी
मल०	मलयालम
मार०	मारवाड़ी
मै०	मैथिली
रोमा०	रोमानी—योरप के जिप्सियों की भाषा
ल०	लहँदी

लै०	लैटिन
लो० जर०	लोअर जर्मनी
संता०	संताली
संस्कृ०	संस्कृत
सिं०	सिंधी
सिंह०	सिंहली
हिं०	हिंदी

भौगोलिक आधारविषयक संक्षिप्त रूप

अमे०	अमेरिका
आज०	आजमगढ़
उ०	उत्तर
उ० प०	उत्तर-पश्चिम (बिहार प्रदेश का उत्तरी पश्चिमी भाग)
उ० प० बि०	उत्तर-पश्चिम बिहार
उ० पू०	उत्तर-पूर्व बिहार
उ० भा०	उत्तर भागलपुर
उ० मुं०	उत्तर मुँगेर
गं० उ०	गंगा के उत्तर (बिहार)
गं० द०	गंगा के दक्षिण (बिहार)
गया	गया (जिला)
चंपा०	चंपारन
चंपा०-१	चंपारन-१, बैंगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा०-२	चंपारन-२, अजगरवा, नककागाँव, चंपारन (पूर्वी चंपारन)
द०	दक्षिण (बिहार)
द० प०	दक्षिण-पश्चिम (बिहार)
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
द० पू०	दक्षिण-पूर्व (बिहार)
द० बि०	दक्षिण बिहार
द० भा०	दक्षिण भागलपुर
द० मुं०	दक्षिण मुँगेर
दर०	दरभंगा
दर०—१	दरभंगा-१, मधुबनी और सदर सबडिविजन
द० शाहा०	दक्षिण शाहाबाद
द० प० शाहा०	दक्षिण-पश्चिम शाहाबाद
प०	पश्चिम

पट०	पटना
पट०-१	पटना-१—नारायणपुर, बख्तियारपुर, (पूर्वी) पटना
पट०-२	पटना-२—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-३	पटना-३—सोहसराय, बिहारशरीफ, (पूर्वी पटना)
पट०-४	पटना-४—पटना नगर से दक्षिण का भाग
प० बि०	पश्चिम बिहार
प० शाहा०	पश्चिम शाहाबाद
पू०	पूर्व
पूर्णि०	पूर्णियाँ
पूर्णि०-१	पूर्णियाँ-१—दक्षिण पूर्णियाँ
पू० बि०	पूर्वी बिहार
बिह०	बिहटा— साउथ बिहार शुगर मिल्स, बिहटा, पटना (पटना नगर से १७ मील पश्चिम)
बिहा०	बिहार (प्रांत)
ब्राजि०	ब्राजिल (अमेरिका)
भाग०	भागलपुर
भाग०-१	भागलपुर-१—बिसनपुर, शंभुगंज (बाँकासबडिविजन), भागलपुर (द० भाग०)
भाग०-२	भागलपुर-२—मोहद्दीनगर, अमरपुर (पो०), भागलपुर (द० भा०)
मग०-५	मगही-५—बरबीघा, मुँगेर
म० प्र०	मध्य प्रदेश
म० शाहा०	मध्य शाहाबाद
मुं०	मुँगेर
मुं०-१	मुँगेर-१—तारापुर, मुँगेर (द० मुं०)
मुज०	मुजफ्फरपुर
मै०-२	मैथिली-२—मुजफ्फरपुर का उत्तरी-पश्चिमी भाग
रीं०	रीगा—रीगा शुगर मिल्स, रीगा (पो०) (सीतामढ़ी सबडिवीजन) मुजफ्फरपुर (उत्तरी-पश्चिमी भाग)
शाहा०	शाहाबाद
शाहा०-१	शाहाबाद-श्रीशिवकुमार वर्मा, मनवारी (डुमरॉंव), शाहाबाद (द० शाहा०)
सा०	सारन
सा०-१	संपूर्ण सारन से तत्काल संग्रहीत शब्द
हजा०	हजारीबाग
हरि०	हरिनगर-हरिनगर शुगर मिल्स,हरिनगर, चंपारन (पश्चिम चंपारन)

शब्द-संग्रह के विविध क्षेत्रों की सूची तथा उनका निर्देश

क्षेत्र-संकेत	संग्रहकर्त्ता का नाम	पता-ठिकाना
चंपा०-१	श्रीगणेश चौबे,	बँगरी, पो०-बँगरी, चंपारन (दक्षिण)
चंपा-२	श्रीविद्यानन्द सिंह,	अजगरवा, डाक०—बकवागाँव, चंपारन (पूर्व)
दर०-१	श्रीजयानन्द झा,	सलेमपुर, डाक०—खैरा, कोढ़ा (थाना), पूर्णियाँ (द०)
पट०-१	श्रीकांत शास्त्री,	नारायणपुर, डाक०—फतेगरसराय, पटना (पूर्व)
पट०-२	श्रीहरिप्रकाश,	सोहसराय, बिहारशरीफ, पटना (पूर्व)
पट० ३	श्रीकृष्णदेव,	,, ,,
पट० ४	श्रीरामाधार शर्मा,	महेन्द्रू, पटना-६ (पटना-नगर से दक्षिण के निवासी)
बिह०, टी०, हरि०	श्रीविक्रमादित्य मिश्र,	मावल, रामनगर, चंपारन (द० प०)
भाग०-१	श्रीरामस्वरूप चौधरी,	बिशनपुर, शम्भुगंज, भागलपुर (दक्षिण)
भाग०-२	श्रीपंचानन चौधरी,	मोहदीनगर, अमरपुर, भागलपुर (दक्षिण)
मग०-५	श्रीवाल्मीकिप्रसाद सिंह,	बरबीघा, मुँगेर
मुं०-१	श्रीसुरेश्वर पाठक,	तारापुर, मुँगेर (दक्षिण)
मै०-२	श्रीसुखाई झा,	अफरी, कटरा, मुजफ्फरपुर (उ० प०)
शाहा०-१	श्रीशिवकुमार लाल,	मझवारी, डुमरॉव, शाहाबाद (उत्तर)
शाहा०-२	श्रीराजेश्वर प्रसाद,	सुरार, भोजपुर (परगना), शाहाबाद (द० प०)
सा०-१	श्रीब्रजेन्द्रदेव नारायण,	दहियाँवा, छपरा

निर्देश-ग्रन्थ और उनके संक्षिप्त रूप

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
अग्रवाल०—	हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति	डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल	ना० प्र० पत्रिका काशी	५४, २००६ वि०, पृ०-८६
अथर्व०—	अथर्ववेद			
अने०—	अनेकार्थसंग्रहकोश	श्रीहेमचंद्र	विद्याविलास प्रेस काशी	१९८५ वि०
अमर०—	अमरकोश (त्रिकांडशेषसहित)	श्रीविष्णुदत्त शर्मा, खेमराज	श्रीकृष्णदास, बंबई	१९२६ ई०
,,	,,	रामाश्रमी टीका	,, ,,	१९४४ ई०
अवधी०—	अवधी कोश	श्रीरामाज्ञा द्विवेदी	हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद	१९५५ ई०
आक्स०—	आक्सफोर्ड इंगलिश-डिक्शनरी		आक्सफोर्ड, लंदन	१९५२ ई०

संक्षिप्त रूप	पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
आप्टे०—	आप्टेज संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण)	श्रीवामनशिवराम आप्टे	प्रसाद-प्रकाशन, पूना	१९५७ ई०
इंग० संस्कृ०—	इंगलिश-संस्कृत-डिक्शनरी	श्रीमोनियर विलियम	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	१९५७ ई०
इटि० या०—	इटिमोलोजीज ऑफ् यास्क	डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा	होशियारपुर	१९५३ ई०
गुज० इंग०—	गुजराती-इंगलिश-डिक्शनरी	श्रीबेलसारे	बंबई-२	
गुप्त०—	ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली	डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त	दिल्ली	१९५६ ई०
ग्रामै०—	ग्रामेटिकल संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी	डा० सूर्यकांत शास्त्री		
ग्रिय०—	बिहार पीजेंट लाइफ	जार्ज ग्रियर्सन	गवर्नमेंट प्रेस, पटना	१९२६ ई०
घाघ०—	घाघ और भड्डरी	श्रीरामनरेश त्रिपाठी	प्रयाग (द्वितीय संस्करण)	१९४१ ई०
चेम्बर्स०—	चेम्बर्स इंगलिश-डिक्शनरी	रेवरेंड टी० डाविडसन	लंदन	१९४९ ई०
त्रिकां०—	त्रिकांडशेषकोश	श्रीविष्णुदत्त शर्मा	बंबई	१९२६ ई०
देशी०—	देशी नाममाला	श्रीहेमचंद्र	कलकत्ता-विश्वविद्यालय, कलकत्ता	१९३१ ई०
देशी ना०-	,,	,, पिशल	पूना	
दो० को०—	दोहाकोश	प्रो० बागची द्वारा संपादित		
निघ०—	निघण्टु निरुक्तसहित	दुर्गस्वामीकृत टीकासहित	बंबई,	
निरु०—	निरुक्त	,, ,,	,,	
नेपा०—	नैपाली-इंगलिश-डिक्शनरी	डा० आर० एल्० टर्नर	लंदन	१९३१ ई०
पा० स० म०—	पाइअ-सद्द-महण्णवो	पं० हरगोविंददास टी० सेठ	कलकत्ता	१९२८-२८ ई०
पाणिनि०—	सिद्धांतकौमुदीस्थसूत्र-धातुपाठ		वाराणसी	१९४६ ई०
पाणिनि ग्रा०—	पाणिनि'ज ग्रामेटिक		जर्मनी	
पालि०—	पालि-इंगलिश-डिक्शनरी	टी० डब्ल्यू रेज डेविड्स	लंदन	१९५२ ई०

संक्षिप्त रूप पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
पालि० इं०—पालि-इंगलिश-डिक्शनरी	आर० सी० चाइल्डर्स द्वारा संपादित	लंदन	
फैलन०—ए न्यू हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन	वाराणसी	१८७९ ई०
बँगला०—बँगला-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	सर ग्रेव्स सी० हॉटन	लंदन	१८३३ ई०
बिहारी०—बिहारी सतसई			
बृहत०—बृहत् हिंदी-कोश		ज्ञानमंडल, वाराणसी	२००९ वि०
ब्लाक०—ज्यूल ब्लाक का 'मराठी भाषेचा विकास' (ला फार्मेशन लैंगुए मराठे)	अनु० श्रीवासुदेव गोपाल परांजपे, पूना		१९४१ ई०
भा० नि०—भावप्रकाश निघंटु	श्रीब्रह्मशंकर मिश्र,	विद्याविलास प्रेस, काशी	२००६ वि०
भारतीय०—भारतीय साहित्य (शोध-पत्रिका)	डॉ० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी-विद्यापीठ, आगरा-विश्वविद्यालय, आगरा		
मरा० हिं०—मराठी-हिंदी-शब्द-संग्रह	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४६ ई०
माडर्न गुज०—माडर्न गुजराती-इंगलिश-डिक्शनरी	मेहताइन द्वारा संपादित	बड़ौदा	१९२५ ई०
मुंडारी०—मुंडारी-इंगलिश-डिक्शनरी	भादुरी	कलकत्ता-विश्वविद्यालय	१९३१ ई०
मेदि०—मेदिनीकोश		विद्याविलास प्रेस काशी	१९९७ वि०
मैथिली०—मैथिली-भाषा-कोश	पं० दीनबंधु झा	दरभंगा	१८७२ शकाब्द
मो० वि० डि०—संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी	एम्० एम्० विलियम्स	लंदन	१९५१ ई०
लिंग्वि०—लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ् इंडिया (जिल्द-१, भाग-१; जिल्द ५, भाग २)	ग्रियर्सन	कलकत्ता	१९२७-१९३० ई०
रा० त०—राजतरंगिणी		बंबई	

संक्षिप्त रूप पुस्तक का नाम	लेखक, संपादक	स्थान	वर्ष
व्यु० को०—मराठी-व्युत्पत्ति-कोश	श्रीकृष्णाजी पांडुरंगजी कुलकर्णी केशवजी भिकाजी धवळे	बंबई-२	१९४६ ई०
शब्दा०—शब्दार्थ-चिंतामणि	सुखानंद-कृत	आगरा	१९२१ वि०
शाश्व०—शाश्वत कोश		ओरियंटल बुक-एजेंसी, पूना	१९२९ ई०
शिव०—शिवकोश	श्रीशिवदत्त मिश्र	पूना	१९५२ ई०
संथा० डि०—संथाली-इंगलिश-डिक्शनरी	ए० कैम्पबेल	पोखुरिया, मानभूम	१८९९ ई०
संस्कृ० शब्द०—संस्कृत-शब्द-सागर	श्रीजीवानंद विद्यासागर	कलकत्ता	१९०० ई०
सुश्रुत०—सुश्रुतसंहिता			
स्कॉटिश०—स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड)	डा० विलियम ग्रांट और डेविड डी० म्यूरिसन, एडिनबर्ग		१९४१-५२ ई०
हला०—हलायुध-कोश		सरस्वती-भवन, वाराणसी	२०१४ वि०
हला०— ”	थामस आफरेट	एडिनबरा	१८६१ ई०
हाब्स०—हाब्सन जाब्सन	कर्नल हेनरी युले	लंदन	१९०३ ई०
हिंदी उ०—हिंदी-उर्दू-कोश	श्रीरामचंद्र वर्मा	हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई	१९०३ ई०
हिंदु०—हिंदुस्तानी कोश	श्रीहरिशंकर शर्मा	आगरा	२००९ वि०
हिंदु० इंग०—हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी	एस० डब्ल्यू० फैलन (डॉ० सूर्यकांत द्वारा संपादित)		
हिं० मरा०—हिंदी-मराठी-व्यवहार-कोश	ग० र० वैशम्पायन	पूना	१९४९ ई०
हिं० श० सा०—हिंदी-शब्द-सागर	श्यामसुंदरदास आदि	ना० प्र० स० काशी	१९१६ ई०

कृषिकोश

अ

अँइठा—(सं०) शंख के समान एक कीड़ा। घोंघा(चंपा०-१)। [आबेष्ट, (संस्कृ०), ऐंठा—(हि० श० सा०)]


अँइठा

अँइठी-(सं०) (१) वह मजदूर, जो मिट्टी ढोते समय कुदाल चलानेवाले के पास रहता है (चंपा०-१)। (२) खेत के बीच का वह भाग, जहाँतक खोद कर मजदूर दूसरा 'बाहँ' आरंभ करता है (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—आवेष्ट]

अँकटा—(सं०) गेहूँ, चना, मसूर, खेसारी आदि के दानों में मिलनेवाला घास की जाति का एक अनाज, जिसमें छोटे-छोटे गोल दाने होते हैं; इसकी दाल भी बनाई जाती है। (द० मुं०, हज०-१, पट०-४)। पर्या०—अँकरा, अँकरी (प० मुं०, शाहा०)। अदका (भाग-१)। [अँकटा < अकटा < अकतअ < अङ्कतक, मिला०—अक्कट (प्रा०; दे० को० ७६)]

अँकड़उर—(सं०) कँकरीली मिट्टी (शाहा०)। दे०—अँकड़ौर। [अँकड़+उर<अंकरपुर]

अँकड़ही—(वि०) दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०)।

अँकड़ा—(सं०) (१) बड़ा कंकड़ (शाहा०)। (२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का कंकड़। दे० अँकरा। पर्या०—गेंगटा—(द०-पु०), आँकड़ (भोज०, पट०)। [अंकुर]

अँकड़ाह—(वि०) वह मिट्टी, जिसमें कंकड़ हो (चंपा०)। पर्या०—अँकड़ही—(बिहा० आज०) [अँकड़+आह (प्र०)<अंकुर]

अँकड़ी-(सं०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प०)। दे०—अँकरा। पर्या०—अँकरी (पट०-४)। (२) छोटा और महीन कंकड़ (बिहा०, आज०)। पर्या०—गेंगटी—(द० पु०) अँकड़ी (आज०)। इँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। [देशी (?) मिला०—अंकुर]

अँकड़ैल—(वि०) कँकड़ीली मिट्टी—(सा०)। दे०—कँकराही। [अँकड़+एल<(इल)—(संस्कृ०)]

अँकड़ौर- (वि०) कँकड़ीली मिट्टी-(प०)। दे०—कँकराही। [अँकड़+और (प्र०)]

अँकता—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प० पट०, गया, द० पु०)। पर्या०—अटका, अकटा (द० भाग०), अँकरी, अँकड़ी (प०), खेसारी (गया, उ० प०), मिलौर (उ०-प०)। [अँकता<अकतअ< अङ्कतक, मिला० अक्कट (प्रा० सप०)—दे० को०—७६]

अँकरहिया मटर—(सं०) एक प्रकार की छोटी मटर (भोज० आज०)। [अँकर+हिया (प्र०) +मटर]

अँकरा—(सं०) गेहूँ में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात, (प०मुं०, शाहा०)। दे०—अँकटा। [दे०—अँकटा]

अँकरी—(सं०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य है (प०)। दे०—अँकता। (२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात (प० मुं०, शाहा०)। दे०—अँकटा। [अकर+ई०<अँकरा, [दे०—अँकटा]

अँकवार, अकवार—(सं०) (१) दोनों भुजाओं के अंदर भर जानेवाली फसल का परिमाण। पर्या०—अकवारा, पँजा (पट०,


अँकवार

द०-पू० मुं०, चंपा०), अँकवार (आज०)। (२) दोनों भुजाओं से आलिंगन या अंक में लगाने की रीति, इस अर्थ में प्रायः भेंट शब्द के साथ समस्त रूप में प्रयोग होता है, यथा—अँकवार भेंटब, मिला०—अँकोर। [अंकपालि, अंकमाल]

अँकुड़ा—(सं०) मिट्टी में कोयला डालने या उलकाने के लिए व्यवहृत होनेवाली लोहे की छड़, जिसका अगला छोर टेढ़ा और दूसरी ओर मूठ-जैसा बना होता है, जो हाथ से पकड़ने लायक होता है (कृषि०, रो०)। पर्या०—कोलटारा (बिह०) [मिला० अंकुर, अंकुश]

अँकुदा—(सं०) गेहूँ का नया अंकुर (उ०-प०)। पर्या०—अँकुर (भाग०-१) किल्ली, ढाभी (भाग०-१), सुइया (भाग०-१)। [अंकुर]

अँकुरा—(सं०) प्रथम-प्रथम जमीन से उगा हुआ पौधा। [अंकुर]

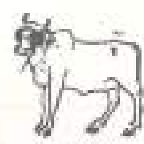
अँकुरायल—(वि०) वह अन्न, जिसमें नया अंकुर निकला हो (गया), अंकुरित। दे०—पुआरी। पर्या०—पनपा (पट०-४)। [अँकुरा+एल]

अँकुरी—(सं०) (१) पकने के पहले भोजन के लिए कटा हुआ कच्चा अनाज (द० भाग०, चंपा०) दे०—गदरा। (२) पानी में फुलाया हुआ चना, जिसमें अंकुर निकल आया हो।

अँकुसी—(सं०) (१) पेड़ से फल तोड़नेवाली लग्गी के अंतिम छोर पर बाँधी हुई एक छोटी लकड़ी। पर्या०—कानी (मुं०-उ०-भाग०, पट०-४, चंपा०)। (२) हाथी के नियंत्रण के लिए महावत द्वारा प्रयुक्त लोहे का एक प्रसिद्ध हथियार, जिसको 'अंकुश' भी कहते हैं। [अंकुश]

अँकुसी

अँखमुँदनी—(सं०) मवेशियों की आँख ढँकने के लिए बाँस की कमाची का बना हुआ ढक्कन, जिसके ऊपर कपड़ा मढ़ा रहता है। पर्या०—पट्टर (औरं०), टप्पर (चंपा०), झोपनी (शाहा०), टोकनी—(पट०, गया), ओलवा (मुं०)। [आँख+मुँदनी < अक्षि+मुद्रणी]



अँखमुँदनी

अँखरा—(वि०) ऐसा टोकरा, जिसके छेदों को बन्द करने के लिए मिट्टी और गोबर नहीं लगाया गया हो। (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१, गया) [अक्षार=अ+क्षार (=क्षाल)=शुद्धि]

अँखवा—(सं०) अन्न के दाने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (द० प० शाहा०, भाग० १) दे०—आँख। [अक्ष]

अँखिया—(सं०) (१) अन्न का अंकुर (उ० मुं०), (पट०-४)। दे०—आँख। (२) अन्न के दाने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (उ० मुं०)। दे०—आँख। पर्या०—अँखुआ (भाग०-१) (३) गेहूँ और चावल के आटे को मिलाकर तथा उसे गूँथकर और आँख की आकृति का पिंड बनाकर पानी में उबाला हुआ पीठा (पट०-४)। [अक्ष, अक्षि, अक्षिका]

अँखियाव—(सं०) अन्न के दाने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (द० भाग०) दे०—आँख। [अक्ष, अक्षिका, अक्षीव]

अँखुअइल—(वि०) दे०—अँखुआइल।

अँखुआ—(सं०) (१) अन्न के दाने का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (पट०, पू० मुं०, भाग०-१)। दे०—आँख। (२) अन्न का अंकुर (पट०, भाग०-१, आज०)। दे० आँख। (३) चावल से निकला हुआ वह कण, जिसमें अन्न का कुछ अंश रहता है (चंपा०-१)। [आँख+उआ < अक्ष, अक्षि] (४) बाजरे का पहला अंकुर। पर्या०—सूआ, टिभिया (द० मुं०), सुइया (द० भाग०), अँखुआ, अँखुवा (आज०) अँखुआयल (वि०)=अंकुर फूटना। सुआयल (वि०)=अंकुर फूटना। [अक्ष, अक्षि, अक्षिवत्] [सुआ, सुअवा < सूँघना। (सुआयल=सुआ+एल-वि० प्र०)]

अँखुआइल—(वि०) (१) अंकुरित पौधा (शाहा०-१, चंपा०)। (वि०) (२) अंकुरता

(शाहा०-१)। [अँखुआ+इल (प्र०)< अँखुआ < अक्ष, अक्षि, अंकुर]

अँखुआयल—(वि०) वह अन्न, जिसमें नया अंकुर निकला हो (पट०)। दे०—पुआरी। पर्या०—अँखुअइल (भाग०—१) [अँखुआ+एल (=इल – वि० प्र०) < अक्षिवत्]

अँखौता—(सं०) आगे की दोनों कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (द० मुं०, पट०-४)। दे०—अखौता। पर्या०—अखौता (भाग०-१) [अक्षवत्, अक्षपट]



अँखौता

अँग डँग—(सं०) दे०—अँग हुँग।

अँगउँ—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से ब्राह्मण के लिए निकाला हुआ अंश (प०)। दे०—अँगहुँड तथा बिसुनपिरित। [अग्राग्र]

अँगहुँड़ा—(सं०) गृहस्थ के द्वारा ब्राह्मण के लिए अन्न में से निकाला हुआ अंश (शाहा०)।

अँगरवार—(सं०) तुरत कटे हुए अन्न के रखने का स्थान (शाहा०)। दे०—टोनियारी। [अँगार∠ अपकाराग्र, अँगार+वार< अपकाराग्र-वाट]

अँगरा—(सं०) (१) तेज पछवा हवा के कारण होनेवाला अनाज का एक रोग (पाला) (उ० मुं०, चंपा०, शाहा०)। पर्या०—भरका (भाग०, मुं०, पट०-४), झुरका=जमीन में लगा एक रोग (चंपा०)। (२) धान की फसल का एक रोग, इसमें धान का पौधा पीला हो जाता है और जलने लगता है (चंपा०)। [अंगार] टि०—इस रोग से बचने के लिए ढैंचे का पेड़ खेत में गाड़ दिया जाता है (चंपा०-१)।

अँगरवाह—(सं०) कोल्हू के लिए ऊख के लंबे-लंबे टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (प०)। दे०—कातू। [अँगार+वाह< अपकाराग्र+वाह] टि०—'वाह' या 'वाहा' 'हलवाहा' का संक्षिप्त है, जो दूसरे शब्दों के अंत में जुड़कर 'करनेवाला' आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है—जैसे, चरवाहा=चरानेवाला, भैंसवाहा=भैंस चरानेवाला आदि।

अँगवरिया—(सं०) मजदूरी में नगद या अनाज न लेकर तीन दिन खेत के मालिक का हल चला लेने के बाद एक दिन के लिए उसी हल से अपना खेत जोतनेवाला हलवाहा। पर्या०—अगव-रिया, अँगवार (प०), बेगटा (भा०, चंपा०, मुं०, उ० पू० मुं०, आज०), तिसरी, तिसरिया। [अँग+वरिया (=वार) < अँगवार, अंकपाल]

अँगवार—(सं०) (१) दे०—अँगवरिया। (२) दवाई (दौनी) किए हुए अन्न की राशि में हल-वाहे का भाग (आज०)।

अँगवारा—(सं०) (१) सम्मिलित खेती में अपने-अपने हल-बैलों से बारी-बारी करके अपने खेत जोतनेवाले किसान (प०)। (२) दे०—अँगवरिया।

अँगा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान, जो विशेषतया ऊँची जमीन में पैदा होता है और इसका भूक काला होता है (चंपा०-१, मुं०)। (२) फुरता, चपलता। [अंगम मो० वि० हि०]

अँगारी—(सं०) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ी (द० प० शाहा०)। दे०-गँड़ी। [अपकांड, अंगारिका]

अँगुरियावल—(वि०) किसी फल की बतिये को उँगली दिखाना। किंवदंती ऐसी है कि इस तरह उँगली दिखाने से वह बतिया सूख जाती है (चंपा०-१)। [अँगुर+इयावल (भा० वा० प्र०) = 'अंगुलीपति' के अर्थ में]

अँगेड़ीहा—(वि०) ऊख की खड़ी फसल को काटनेवाला। पर्या०—गेंड़ुवहिया (उ० प०), चजवाहा (मुं०), पगारवाह (मुं०), पँगरवाह (मुं०), गेंड़हीसा (शाहा०), छोलवा (द०-प० शाहा०), केतरपार (पट०, गया), कतरपारा या पतरपारा (द० मुं०), पुरकट्टा या कटनिया (द० भाग०)। [अपकांड-वाह, (अँगेड़ी+हा)]

अँगेर—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग से ज्यादा-जल्दी उगता है (प०)। पर्या०—अँगेरा (गया), अगारी (पट०), अगारा (द० मुं०), आगा (द० भाग०) बधिया (मं० प्र०), फुनगी (उ० प० मुं०), अँगोर, अँगोरी (आज०)। [अपकांड—कांड का अग्रभाग, अग्र, अंगारिका] (२) चारे के

लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (शा०, पट०-४) दे०—अँगेर। [अग्रकांड]

अँगेरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का (सिरा) टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी जमता है (गया)। दे०—अँगेर। [अग्रकांड]

अँगेरी—(सं०) (१) ऊख के ऊपरी भाग की पत्तियाँ। (२) ऊख के ऊपर का भाग। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (गया, पट०, बिहु०)। —काढ़ना—(मुहा०) ऊख के सूखे और हरे पत्तों को अलग करके उसे साफ करना (बिहु०)। दे०—अँगेर। [अग्रकांड, अंगारिका]

अँगेंडी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए एक प्रकार का लंबा नोकदार फावड़ा (पट०-४)। दे०-खाबी, फौरा। [देशी]

अँगोरा—(सं०) गोयठे, लकड़ी आदि की आग का लहलहाता हुआ पिंड (चंपा०-मुं० ०-१, भाग०-१)। मुहा०—अँगोरा डरल—खिरमत में आग लगना (मुं०-१) [अंगार]

अँचताहर—(सं०) गुड़ बनाने के समय चूल्हे में आग झोंकनेवाला व्यक्ति। (द० मुं०, पट०-४, गया)। दे०-कानू। [अँचता+हर<अँच (ता-आगम)+हर<अर्चिहर]

अँचवाहा—(सं०) चूल्हे में आग झोंकनेवाला व्यक्ति (पट०,भाग०-१)। दे०—कानू। [अच+वाहा<अर्चिवाह]

अँछिया—(सं०) चूल्हे के ऊपर का छिद्र (मुँह), जिस पर ताव रखा जाता है (पट०-४, भाग०-१)। दे०—आँछी। [अर्चि, अक्षि]

अँजुर—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से मजदूर को मिलनेवाला एक निश्चित (अंजलिमात्र) अन्नपरिमाण (शाहा०) पर्या०—अंजुरी (गया)। [अँजलि]

अँजुटा—(सं०) अन्न बोने के समय मजदूरी को दिया जानेवाला अंजलिमात्र अन्न का उपहार (भाग०-१)। [अंजलि]

अँजुरी—(सं०) (१) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रति हल एक या दो बेर दिया जानेवाला अंश (शा०, पट०)। पर्या०—अँजुर (शाहा०) (२) दोनों हथेलियों को मिलाकर कटोरी जैसी बनाई गई आकृति, अंजलिपुट। (३) अन्न की राशि में से तौलते समय दोनों हथेलियों से दान देने के लिए निकाला हुआ अनाज। [अंजलि]

अँजोर—(सं०) उजाला [अवउज्ज्योतिर्, उज्ज्वल—(हि० श० सा०)]

अँजोरिया—(सं०) शुक्लपक्ष की रात, जबतक आकाश में चंद्रमा उदित रहता है (चंपा०-१)। पर्या०—अँजोरापाख-(भाग०) =शुक्लपक्ष; दे०—अँजोरिया [अँजोरिया' ईजोरिया <इन्दुज्योतिर् या ज्योतिष्, अँजोर< उज्ज्वल—(हि० श० सा०)]

अँटकल—(क्रि०) किसी सँकरे छेद में किसी चीज का बीच में ही रुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)।
[अँटक+ल=अ+टिक (ल)—(हि० श० सा०)]

अँटकाइल-(क्रि०)अँटकाना, फँसाना। अँटक+आइल (प्र०)<अटक]

अँटकारल-(क्रि०) पानी की गहराई का किसी चीज से अंदाज करना (चंपा०-१)।

अँटकाव—(सं०) रोक, प्रतिबन्ध (शा०-१)। उदा०—हमरा खेत में पानी के अँटकाव नइ छे।

अँटकावल—(क्रि०) अँटक किया का प्रेरणार्थक रूप, अँटकाना। (वि०) अँटकाई हुई।

अँटल—(क्रि०)—समाना, घुसना, ठीक-ठीक बैठ जाना। पहुँच जाना (मुं०-१, पट०-४)।

अँटला—(वि०)—समाया हुआ। ठीक आया हुआ। (चंपा०-१, भाग०-१)।

अँटावल—(प्रे० क्रि०) आगे चलनेवाले को छू लेना। घुसाना। आँट देना (मुं०-१)।

अँटिया—(सं०) (१) अँजोरा या बोझा से भी बड़ी फसल की राशि (आँटी)। पर्या०—पसही (चंपा०, उ० मु०—मैं०), दोमड़ा (द० प० शाहा०)। टि०—आँटी या अँटिये का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है—यथा अरबी लोकोक्ति से स्पष्ट है—'कोढ़ि कटनिहार के मुँगर सन आँटी।' [हि०-आँटी—(हि० श० सा०)। आर्विका>आविड़का>आइड़िया>अँड़िया>अँटिया/अँटिया = चार जौ का एक परिमाण (को० वि० कि०)। पसही<प्रसृतिः। दोमड़ा<द्विमोट (मोट = बोझा-को० वि० कि०)]

(२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा मजदूर को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (आँटी-भर) धान (चंपा०)। पर्या०—मौगिन (पट०-४) दे०—बोझा।

(३) रोपने के लिए तैयार उखाड़े हुए बीजों के पौधों का पूला (बंडल) (सं० उ०, द०-पू०, भाग०)। दे०—आँटी [आर्विका] (४) अनाज निकालने के बाद पुआल की आँटी (बंडल)—(सं० द०, शा०,भाग०) दे०—पूला (५) घास, लकड़ी या किसी फसल आदि का बाँधा हुआ पूला या गट्ठा, जो दोनों हाथों से पकड़ा जा सके। (चंपा०-१, भाग०-१)। (६) आँटी, पूला, छोटा बोझा (मुं०-१)। [आर्विका]

अँटिया

अँटियावल—(क्रि०) (१) अँटिया का पूला बाँधना (मुं०-१, पट०-४)। (२) गायब या हजम करना। दे०—अँटिया। [अँटिया+वा<अँटिया<आर्विका]

अँटियावल—(क्रि०) घास, लकड़ी या धान आदि का बाँधा गया मुट्ठा (चंपा०-१, पट०-४)। [अँटिया+आवल<अँटिया<आर्विका]

अँठिया—(सं०) एक प्रकार का केला (दर०-१)। [आँठी+इया<अष्ठील]

अँठियायल—(क्रि०, भा० वा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, आम आदि फलों में आँठी होना (मुं०-१, पट०-४)[अष्ठील]

अँठिली—(सं०) (१) आम की गुठली। (२) दे० अँठुली। [अष्ठीलिका]

अँठुली—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गया)। पर्या०—अँठिली, आँठी (द० प० शाहा०, गया)। [आष्ठिल—(मिला०—अष्ठया आम्लतोयाम्-(मेदि०)]

अँडड़—(सं०) रेंडी का पौधा (उ० प० मैं०, द० भाग०)। दे०—रेंड। पर्या०—अंडी (भाग०-१)। [एरंड]

अँड़ड़ी—(सं०) रेंड का बीज (उ० प० मैं०, द० भाग०) पर्या०—अंडी (भाग०-१)।

अँडरी—(सं०) रेंड का बीज, जिससे तेल निकलता है। (उ० प० मैं०, द० भाग०)। दे०—रेंडी। [अँड़र+ई<एरंड]

अँडा—(सं०) रेंड़ी का पौधा। (मैं०, द० भाग०)। दे०—रेंड। [एरंड (संस्कृ०), अँडेरि (बं०)]

अँड़ास—(सं०) दे०—अड़ौस।

अँड़िआवल—(क्रि०) बैल के थक जाने पर उसके अंडकोष में खोंचकर उसे आगे बढ़ाना (शा०-१, पट०-४, भाग०-१) [अँड़ियाव+ल, आँड़+इयाव (ना० प्र० प्र०), आँड़<अण्ड]

अँड़ुआ—(वि०) बधिया न किये हुए बैल आदि पशु (मुं०-१)। पर्या०—आँड़ू (पट०-४, भाग०-१), अबीधा—(भाग०-१)। [आँडिक, अँडवान्]

अँडी—(सं०) (१) रेंड का पेड़, रेंड का बीज। (२) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा, मैं०, द० भाग०, भोज०, मग०)। दे०—रेंडी [एरंड(संस्कृ०) अँडेरि (बं०)]

अँडी

अँतरा, आँतर—(सं०) धान की नालियों या पंक्तियों के बीच का स्थान। पर्या०—दीज (द० पु०), दौगर (पट०, गया०), पाहे (द० पु० मैं०) [अन्तरा>अँतरा>आँतर। पार्श्व>पाह>पाहे]

अँदार—(सं०)—अनार (चम्पा०-१) [अनार (फा०)]

अँधड़—(सं०) आँधी (दर०-१, पट०-४, भाग०-१ चंपा०, भोज०) पर्या०—अँधर (भाग०-१)। [अंध-(हि० श० सा०), अंधकार। अंधः> अंधा, अँधरी रात्रि (मैथ०)]

अँधरी पटावन—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (द० भाग०)। दे०—बकाढार पर्या०—भिखमंगी—(भाग०-१)। [अँधरी+पटावन]

अँधियारी—(सं०) मवेशियों की आँख का ढक्कन (पट०)। दे०—अनपट पर्या०—टोकनी (पट०-४), खोलमा (भाग०-१) [अन्ध, अन्धकारी]

अँधेरी—(सं०)—प्राय: माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (सा०, द० मुं०) पर्या०—अन्हरी, मुडनी (भाग० १)। दे०—अँधेरी कोरन।

टि०—संभवत: कृष्णपक्ष (अन्हरिया) में पहली कोड़नी के कारण इसे अँधेरी (अंध) कहते हैं। यह कोड़नी प्राय: ऊख उगने के पहले की जाती है, इसलिए भी संभव है।

अँधेरी कोरन—(सं०) प्राय: माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कमौनी (कोड़ाई)। पर्या०—चाळान (पट०), चळकन (गया, प०), अँधेरी, माड़नी (सा०, द० मुं०), अन्हरी कोरनी (भाग-१), मुडनी (द० भाग०)। सं० उ० में इसका कोई विशेष नाम नहीं है।

अँवरा—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़ का फल, जो दवा, मुरब्बा, अँचार आदि के काम में आता है (शाहा०-१)। दे०—औरा। [आमलक]

अँवासा—(सं०) मूठा या पूजा के बाद फसल की राशि (उ०-प०)। पर्या०—ओलहा (उ०-मुं०), आहुल, अहुरा (पु०-मं०) [देशी]

अँसुआढार—(सं०) बैलों का एक दोष। इसमें बैलों की आँखें लाल और मलिन रहती हैं तथा आँखों से आँसू गिरते रहते हैं। यह बैल अशुभ माना जाता है (पट०-१) [अँसुआ + ढार < आँसु < अश्रु; ढार ढाल < धाल < √धल ?]

अउठिआवल—(क्रि०) ढेंकी में किसी चीज को कूटते समय ओखल के बाहर गये हुए अन्न को भीतर करना (चंपा०-१)। [(अउठिआव + ल – अउठि + आवल < अवक्षमण), अउंठी < कोष्ठी, कोष्ठिका]

अउस—(सं०) काफी गर्मी पड़ना और हवा का बंद हो जाना (चंपा० १)। [आकुल]

अउसा—(सं०) हवा का बंद हो जाना और काफी गर्मी पड़ना (चंपा०२), पर्या०—गुमसा (भाग०-१)। [ऊष्मा, ओष < √ उष दाहे]।

अउसल—(क्रि०) गर्मी के कारण किसी कच्ची चीज (खानेवाली चीज) का मुलायम होकर सड़ने लगना (चंपा०-१, पट०-४) पर्या०—अउसाइल, गुमसाइल (भाग-१)। [अउस + ल < अउस < ऊष्मा, ओष < √उष्]।

अकटा—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का चारा है (द०भाग०)। दे०—अँकटा। पर्या०—अँकटा—(दर०-१); अटका (भाग०-१)। [अ + कटा < अकटा < अकता < अकतम्ब > अहलक, मिला० अकट (डी० की०—७६)।

अकड़ी—(वि०) बिना छाँटा हुआ चावल आदि (द० मुं०-१, चंपा)। पर्या०—एकड़ी (पट०-४), अकड़ी चाउर—(भाग०-१)। [अकड़ + ई > अकड़ < अकट < अकत < अक्षत, मिला० अँकुर]।

अकराह—(सं०) बारीक कंकड़ी मिली हुई कड़ी मिट्टी (सं० प्र०, प०, द० मुं०)। कराही (द० पु० मं०)। [अकरा + ह < अकरा < अँकुर]

अकरी—(सं०) बिना साफ किया चावल। पर्या०—एकरी, एंकरी। [अकर + ई < अकर < अकट < अकत < अक्षत]

अकवार, अँकवार—(सं०) दोनों भुजाओं के अंदर भर कर आने वाला फसल का परिमाण (द० पु० मं० चंपा०)। अकवारा पाँजा—(भाग-१) दे० पाँजा [अँकमाल, अंकपालि]

अकवारा—(सं०) दे० अकवार (भाग-१) [अँक-माल, अँकपालि]

अकालगीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (सा०)। दे० अकालवीर [अ + काल + वीर, अकालवीर < अ+काल + वीर < अकालवीहि]

अकालवीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फागुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (पु० मं०)। पर्या०—अकाल-गीर (सा०), कालानीर (उ० पु० मं०) (यह केवल गंगा के उत्तर विशेषकर पूर्वी भाग में प्राप्त होता है।)
[अ + काल + वीर < अकालवीहि]

अकासी—(सं०) खेत से चिड़िया आदि को भगाने

के लिए किसी पेड़ में डोरी बाँधकर लटकाया हुआ ताड़ का पत्ता या टिनका टुकड़ा, जो डोरी खींचने से आवाज करता है। (द०-पु० मं०) दे०—डबडबवा। [आकाशीय, अंकुश < अकसी < अकासी।]

अकाउत—(सं०) पानी पटानेवाले लाठे की वह छोटी लकड़ी, जिसमें धुरी लगी रहती है तथा जिस पर लाठा बैठाया हुआ रहता है (शाहा० १) [अक + उत < अकुवत्।]

अखना—(सं०) मछली पकड़ने के लिए पानी से कटा हुआ खोदा गया गड्ढा, जिसमें मछलियाँ कूद कर चढ़ तो जाती हैं, पर निकल नहीं सकतीं (चंपा०-१)। [अ + खना, अख + ना < अक्ष (?)]

अखरा—(वि०) १ बिना धोया कूटा हुआ (अन्न)। २ बिना घी लगाई हुई (रोटी) (शाहा०-१) [अ + खरा < अ + क्षाल]। ३ बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (पट०-४) दे० सूरी। पर्या०—अखरी (द० मुं०), अखरो (द० भाग०); आँखट (उ०-प० वि०, द० पु० मं०, भाग०-१)। [(अ + क्षाल), अ (सं०) + खरा (हि०)-(हि० श० सा०)]।

अखरी—(सं०) बिना साफ किए (छाँटा) पीसा हुआ जौ (द० मुं०) (दे०—अखरा) पर्या०—अखरो बिना किसोया हुआ (भाग०)। [अ + क्षाल।]

अखरो—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (द० भाग०)। दे०—अखरा पर्या०—अखरS—भाग-१ [अ + क्षाल > अखार > > अखरी (की वर्तनिक स्थानीय उच्चारणार्थ)]

अखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी पशु द्वारा सींग से खाद या जमीन को कोड़ना (चंपा-१, पट०-४) (२) खेत की गहरी कोड़ाई करना (चंपा-१) पर्या०—अखलनवाही; इरS-(भाग-१; बिहार-भाग-१)। [उखाड़ + ल < उत्खातन, < उत्खनन उत्खनन < उत् + खन्]।

अखाड़ी कोड़न—(सं०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो असाढ़ या आर्द्रा नक्षत्र में होती है। पर्या०—अदरा के कोड़नी, असाढ़ी कोड़न (प०), माथा (गया)। [आषाढ़ीय + कुद्दन (?) = कोड़न]

असाढ़—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म ऋतु का अंतिम मास, जून के अंतिम और जुलाई के आदि के १५ दिन। (इस मास की पूर्णिमा के दिन प्राय: उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है, अत: आषाढ़ नाम पड़ा है।) पर्या०—आसाढ़। असाढ़ (भाग-१) [आषाढ़] टि०—असाढ़ मास में ही धान की बोआई होती है, अत: इसका बहुत महत्व है। इस महीने में धान की बोआई होती है और धान रोपने के लिए खेतों को कोड़-कोड़ कर तैयार किया जाता है। सावन में धान की रोपनी प्राय: हो जाया करती है, कभी-कभी वर्षा की देरी से पुनर्वसु और पुष्य तक भी होती है। किंतु, धान का रोपा धान अधिक फलवान नहीं होता। असाढ़ मास की महत्ता तो सर्वलोकमान्य है जैसा कि आगली कहावत से प्रतीत होता है—
"जेकर बनल असढ़वा रे तेकर बारहो मास।"
—जिस किसान के खेत आषाढ़ महीने में तैयार हो जाते हैं उसके बारहो मास अच्छे ही रहते हैं।

असाढ़ी—(सं०) (१) आषाढ़ में बोयी जानेवाली मौसम की दूसरी खेती (सं० उ०)। दे० फागुनी। २—आषाढ़ में उत्पन्न होनेवाली फसल या घास आदि—(भाग-१)। [असाढ़ + ई < आषाढ़ीय]

अखैता—(सं०) आँखे की दोनों कामियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (गया, पट०)। दे०—अखौता [अक्षवत्, अक्षकूट]

अखेद—(सं०)—(गया०, पट०) दे० अखोता। दे०—अखौता [अक्षवत्, अक्षकूट]

अखोन—(सं०) (भाग-१)। दे० अखोना।

अखोना—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल या डंठल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लम्बी, जिसके अंतिमछोर में लोहे का काँटा आदि लगाकर उसे नुकीला बनाया जाता है। (पट०, गया, द० मुं०, भाग-१)।



अखोना

दे० अखोना पर्या०—अखानS (भाग-१)।

[आलनन (हि० शा० का०), अक्षारिण = अक्ष + आरिण]

अखैन—(सं०)—दे०—अखैना। पर्या०—खैना, अखेना (पट०, गया, मुं०), अखैन, अखैना (द०-प० शाहा०), टखैनी (द० भाग०), अखैनट—भाग-१, ऊखनी आ०)। [आलनन (हि० शा० का०', अक्ष+आरिण=अक्षारिण] ।

अखैना—(सं०) खलिहान में दौनी के समय भुआल, डठल आदि को हटाने या झाड़ने के काम में आनेवाली एक लकड़ी, जिसके अंतिम छोर में लोहे का टेढ़ा काँटा लगाकर या उसी लकड़ी की पतली (करची) शाखा को छोड़कर नोक बनायी जाती है।

अखैला—(सं०) वह धुरी जिस पर ढेकी काम करती है (पट०) दे०—अखौना। [अक्ष + कील]

अखोतो—(सं०) पानी पटाने के लिए गाड़े गये खंभे की दोनों कानियों (खाखावों) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (द० भाग०)। दे०—अखौता। पर्या०—अखौतट—(भाग-१) [अक्षतन्त्, अक्षकूट] ।

अखौत—(सं०) (१) ढेकी की धुरी। पर्या०—अखौता, मोंभि (चंपा०, उ० पू० मैं०) खोलनी (उ० पू० मैं०), डंडा (उ० पू० मैं०), रनकी (पट०), असखलाइ (द० भाग०), सारा (द० प० शाहा०) (२) (सं०) दे०—अखौता। (३) पानी पटाने के काम के लिए कुएँ में लगी चिरनी की धुरी, जिस पर चिरनी नाचती है। पर्या०—अखौता डंडा (चंपा०, द० पू० मैं०), सरना (द० प० शाहा०), टोना (पट०)। [अक्षतन्त्, अक्षकूट, ? अक्ष + ओत] ।

अखौता—(सं०) (१) वह धुरी जिस पर ढेकी काम करती है (पट०, सा०)। पर्या०—अखौता (गया), अखैला (पट०), मोंभि (चंपा०, उ० पू० मैं०), किल्ला (द० प० मैं०), डंडा (पू० मैं०)। (२) पानी पटाने के लिए गाड़े गये खंभे की दोनों कानियों (खाखावों) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है।

अखौता

(दे० अखौत) पर्या०—अखौत, अखोतो (द० भाग०), अखौता (द० मुं०), अखेता, अखेद् (पट० गया), मोंभि (चंपा०, गया), टोना (पट०)। [अक्षतन्त्, अक्षकूट] ।

अगउड़—(सं०) मजदूरों को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (चंपा० १)। दे० फाजिल। अगावट (भाग-१) [अग्रहर, अग्रपालि, अग्रिम]

अगड़न—(सं०) दे०—अगार।

अगड़ा—(सं०) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (द० मुं०, भाग-१) दे०—अगेड़। [अग + ड़ा ∠ अग्रकाण्ड, अग्रशिखा]

अगड़ा—(सं०)— (द० भाग०)। दे०—बलकट। [अग + ड़ा ∠ अग्रकाण्ड] ।

अगड़ौर—(सं०) (द० भाग०) दे०—कातिक पर्या०—अगौर—(भाग-१)। [अग+ डौर ∠ अग्र+डौर, डौर ∠ डोल ∠ दोल्]

अगड़ाई—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (पट०, द० मुं०, भाग-१) दे०—पाट। पर्या०—एकपुइँया (पट०-४)। [अग + ड़ाई ∠ अग्रदामिन्] ।

अगदाइन—(सं०)—(गया)। दे०—पाट। [अग+दाइन∠ अग्रदामिन्] ।

अगदाएँ—(सं०)— द० पू० मैं०)। दे०—पाट। [अग+दाएँ∠ अग्रदामिन्, अग्रदाम]

अगदैयाँ—(सं०) (गया)। दे०—पाट। [अग + दैयाँ ∠ अग्र + दाम, (+ दमिन)]

अगनर—(सं०) गृहदेवता (कुलदेवता) के लिए नए तैयार अन्न में से निकाला गया अंश (शाहा०)। दे०—अगौं। पर्या०—अग्रहर—(द० शाहा०)। [अग+नर ∠ अग्रपालि]

अगरपाट—सं०) नहर या नैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जलप्रवाह के द्वारा गुरुत्वाकर्षण से खेत की धारावाहिक सिंचाई (द० प० मैं०, चंपा०)। दे०—बहटा। [अगर + पाट—देशी (?)]

अगरबन्नू—(सं०) काटने के लिए तैयार ऊख का पौधा (पट०)। पर्या०—मरेरबन्नू (गया), ठाँइ (द० पू०) (अन्यत्र कोई विशेष नाम नहीं है)। [अगर+बन्नू ∠ अग्र + वन्य (?)] ।

अगरा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के

ऊपर (सिर) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (पट०-४)। दे०—डीरी। पर्या०—छिप (भाग-१)। [अग्र, अग्रकाण्ड] ।

अगरी—(सं०) बोझों की कतार (चंपा०—१)।

अगला—(सं०) धान के डंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चंपा०, गया)। दे०—बलकट। [अग्र्‌] ।

अगलो—(सं०) बाँध की पुलकी की ओर का हिस्सा (चंपा०-१)। पर्या०—अगला (भाग०-१)। [अग्र] ।

अगवड़—(सं०) १—हलवाहे को अगाऊ (अग्रिम) दी जानेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०—अगवार अधार (भाग०-१); अगौरी (द० प० मैं०), हरौरी (उ० प० मैं०), लगुआ (सामा०)। [अग + वड़ < अग्रभृति, अग्रवलि (बलि= भाग, अंश, भोजन, अन्न)]। २—अगाऊ (अग्रिम) मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर, (उ०प०)। पर्या०—अगवड़जन (उ० पू०), लागोवा (द० भाग०), कमाई (प०), कनियाँ (पट०, गया, द० मुं०), लगुआजन पहले से लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। खटौवार (भाग०-१) [अग्रबलि]

अगवड़जन—(सं०) (उ० प०)। दे० अगवड़। [अग + वड़ + जन < *अग्रभृति + जन, अग्रबलि+जन] ।

अगवन—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद (द०-प० शाहा०)। दे०—डाढ़ी। पर्या०—ड्योढ़िया (पट०-४), सवैया, दोबरा, डेढ़िया (भाग०-१)।

अगवन—(सं०)— (शाहा०)। दे०—फाजिल। [अग + वन < अग्रपण, अग्रिमान्न] ।

अगवर—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (द०, पू०, पट०-४)। दे०—अगवार। [अगवर < अपकर ?] ।

अगवरिया—(सं०) दे०—अँकवरिया।

अगवार—(सं०) (१) फसल के बोझों को हटाने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (सं० उ०—सामा०), पर्या०—लहार (भाग०-१), अगवार, अगवारी (प०)=ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़नेवाला (निष्फल = बेकार) अनाज। भाठ (सं० उ०-सामा०), तरी (सा०, मं० उ०)। [अपकर]। (२) घर के सामने का भाग (चंपा-१)। (३) खेतिहर मजदूर के लिए खलिहान से निकाला हुआ अन्न का भाग (चंपा०-१)। [अग्र + वाट = (स्थान)] ।

अगवार, अगवारी—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (प०)। पर्या०—अगाड़ (चंपा०, पट०, गया), अगवर (द०-पू०)। [अपकर] ।

अगवारी—(सं०) दे०—अगवार।

अगवासा—(सं) घर के आगे की जमीन (शाहा०-१)। [अग + वासा < *अग्र + वास]।

अगस्त—(सं०) एक प्रकार का लंबा वृक्ष, जो शरद् ऋतु में फूलता है और जिसका फूल सफेद होता है (पट०-१)। [अगस्त्य] ।

अगहन—(सं०) मार्गशीर्ष, भारतीय वर्ष का नवम और हेमन्त ऋतु का पहला महीना। (प्रायः नवम्बर के अंतिम और दिसम्बर के आदि के पंद्रह दिन)। इस मास की पूर्णिमा के दिन मृगशिरा नक्षत्र का उदय हुआ करता है, अतः इसका नाम मार्गशीर्ष भी है। (मंगसर सं०)< मार्गशीर्ष)। कभी इस महीने के बाद से वर्षारंभ होता था, इसलिए इसे आग्रहायण (अग्रे हायन-स्य = इसके आगे वर्षारंभ होता है।) कहते हैं (सर्वत्र)। [*आग्रहायण(< अग्र+हायन)> अगहन]।

अगहनिया—(वि०) (शाहा०-१)। दे०—अगहनी। [अगहन + इया < अगहन < आग्रहायण < अग्र+हायन] ।

अगहनी—(सं०)-(१)अगहन महीने में होनेवाला धान या अन्य फसल (चंपा०-१, पट०-४,भाग०-१)। (२) अगहन महीने में कटनेवाली फसल (धान) (पट०-१; भाग०-१ आदि)। [अगहन+ई< *आग्रहायणीय] ।

अगहनुआ—(सं०)-(१) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (सा०, चंपा०)। दे०—तरही। यौ०—अगहनुआ कुट्टी—अगहन मास में की जानेवाली खावन, भूसा आदि की कुटाई (भाग०-१)। [अगहन+उआ (वि० प्र०)] ।

अगहर—(सं०)-(द० शाहा०)। दे०—अगवार। [< *अग्रहार]।

अगाउर—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (द०-पू०मं०)। दे०—फाजिल। [अगाउर<, अग + आउर, अगा + उर< * अग्रवलि]।

अगाड़—(सं०) ओसाने के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (चंपा०, पट०, गया)। दे०—अगवार। [अग, अग्वार]।

अगार—(सं०)-(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०)। दे०—फाजिल [अगार < अगवार < * अग्रवृत्ति < * अग्रवलि २-खेत का वह छोर, जहाँ उसका अंत हुआ हो—(चंपा० १)। [अग]।

अगार, अगारी—(सं०)—कुएँ के ऊपर बरहे (मोटा रस्सा) से बड़े हुए ढेंकुल के डंडे का अगला भाग (भाग०-१)। पर्या०—अगाड़न (पट०-४)। [अगार < अगर < * अग्र]

अगारी—(सं०)—(१) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्द उगता है (पट०)। दे० अँगेरी। [अग्रकाण्ड, अगेली = ऊख का टुकड़ा (दे०-ना० मा० हेम०)]। (२) दे०—अगार। [अग्र]।

अगिया—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान के पौधे को जला देती है। [अग्नि]।

अगेँड़—(सं०)-(१) पशुओं को चारे के रूप में दिया जानेवाला ऊख का ऊपरवाला भाग (पट०-४, प०)। [अग्रकाण्ड]। (२) ऊख के ऊपरवाले शिखर की पत्तियाँ। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (सा०)। पर्या०—गेँड़ (द०-प० शाहा०), अँगेरी (गया, पट०), अगरा (पट०), पगार (मुं०), छीप (पू० मुं०), पगाड़ा (द० पू०), अगाड़ा, पगाड़ा (भाग०-१)। [अग्रकाण्ड, पगार < *प्रग्र=प्र + अग्र, *प्रग्राथ, छीप < *क्षिप्त, सूप्त] ।

अगेँड़—(सं०) ऊख के ऊपर का कटा हुआ हरा भाग, जो चारे के काम में आता है (सा०)। पर्या०—अँगेर (सा०), गेँड़ (चंपा०, शाहा०), अगेरी (गया, पट०), अगरा (पट०), अगाड़ (द० मुं०), पगार (मुं०), पगाड़ा (द०-भाग०)। [अग्रकाण्ड, पगार < पगाड़ < *प्राग, प्रग्राप] ।

अगोरबंधू—(सं०) (गया)। दे०—अगरबंधू। [अगोर + बंधू < अग्रबन्ध]।

अगोरनिहार, अगोरिया—(सं०) फसल या अनाज की रखवाली (रक्षा) करनेवाला (पट०-४)। दे०—रखवार। पर्या० —अगोरा (चंपा०, द० मुं०)। [अगोरनि + हार (वि० प्र०), अगोर + इया (वि० प्र०)]।

अगोरबटाई—(सं०) खलिहान में होनेवाला बँटवारा। यहाँ बँटवारा होने तक अनाज की देखरेख करनी पड़ती है, अतः इसे 'अगोर-बटाई' कहते हैं। दे०—बटाई खरिहानी। [अगोर + बटाई]।

अगोरल—(क्रि०) खेत आदि की रखवाली करना (चंपा०, मुं-१, पट०-४, भाग०-१) [अग + गोचरन, अग + गोचन, अगोरबा (हि०) < अग—(हि० श० सा०)]।

अगोरा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (रक्षा) करनेवाला (चंपा०, द० मुं०, पट०-१)। दे०—रखवार। पर्या०—अगोरिया, अगोरनिहार, ओलवार (भाग०-१)। अगोरी = रखवाली। [अगोर + आ, अगोर + इया, अगोरनि + हार (वि० प्र०)]

अगोरिया—(सं०)—दे०—रखवारी। [अगोर + इया]।

अगोरिया, अगोरनिहार—(सं०)। दे०—रखवार। अगोरनिहार।

अगोरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०-४)। दे०—रखवारी।

अगौँ—(सं०) गृहदेवता (कुलदेवता) के लिए नव तैयार अन्न से निकाला गया अंश। पर्या०—अगवाड़ (शाहा०), रसुआड़ (चंपा०), (भाग०-१); रसवाड़ (चंपा०)। [अग्राय]।

अगौआँ—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण-अंश (च०)। दे० विसुनपिरित। [< *अग्राय]।

अगौड़ी—(सं०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम नार्य की मजदूरी (प० मं०)। दे०—फाजिल। [अग + औड़ी < अग +

आहार, अग—पाउर (बाजल), अग + उड = अगौड़]।

अगौतिया—(सं०)—(१) आगे का। (२) समय के शुरू होते ही अथवा कुछ पहले ही रोपी-बोई जानेवाली और पहले तैयार होनेवाली फसल (मुं०-१)। पर्या०-अगवार (भाग०-१)। [अग + औतिया < *अग्र + उप्त]

अगौरी—(सं०) हरवाहे को अगाऊ दी जानेवाली मजदूरी (द० प० मं०)। दे०—अगवाह। [अग + औरी < अग + आहार = अग्राहार, अग + पाउरी (बाजल) = अगाउर > अगौरी, अग + उड = *अगौड़]।

अग्गा—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अगरा। [अग्र]

अग्निशस्य-(सं०) एक प्रकार का धुन (वर०-१)। [अग्नि + शस्य]।

अग्हार—(सं०)—(१) पानी में ही बीज डालने (बोने) की प्रक्रिया (बर०, पूर्णि० १, चंपा०)। (२) मेंढों की वर्षा, बौछार। (३) वृष्टि, प्रकाश। [< *आसार: (आसार = मूसलाधार वृष्टि), उपद्वाल]।

अग्हारा—(सं०) खेत में पूरा पानी रखकर बीज बोया जाना (मुं०-१, भाग०-१)। [आसार (आसार = मूसलाधार वृष्टि)]।

अग्हारी—(सं०) अच्छी वृष्टि, जिससे से जमीन में हाल होकर पानी जमा हो जाता है (मुं०-१)। [आसार]।

अड्डपट—(सं०) पीपल, बरगद और पाकड़ का संयुक्त वृक्ष (पट०-१)। [अड्ड + पट < *अश्वपट्ट]।

अजमोदा—(सं०) अजवाईन, एक प्रकार का मसाला। पर्या०—वनअजवाईन (मं०), चिवरसेली, चिवरसेली (मं०)। [अजमोद, अजमोदा (संस्कृ०), अजमोद, अजमुदा (हि०), करफसानी (बं०) अजमोद, बोडी अजमोद (गु०), आजामोदा (ते०), अजमो-दाचोबा (मरा०)]।

अजवाईन—(सं०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (गया, द० मुं०)। पर्या०—जवाईन (च०, चंपा०, पट०, द० भाग०), जेवाईन (पं० उ०)। खोरासानी अजवाईन—यह वस्तुतः इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [यवानी, खोरासानी अजवाईन = पारसीक यवानी (संस्कृ०)]।

अजवारल—(वि०) (१) अन्न आदि निकालकर खाली किया गया बर्तन; (चंपा०-१, पट०-४, सर्वत्र)। (क्रि०)-(२) किसी बर्तन को खाली कर देना (भाग०-१, सर्वत्र)। [अजवार + ल (प्र०) < अजवार (?)]।

अजान—(सं०) छींट कर (बाकल) बोया जाने वाला श्वेत वर्ण का धान (द० मुं०) [देशी]।

अजुरा—(सं०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—मजूरी। [अंजलि = (कभी-कभी अंजलि से नापकर ही मजदूरी दी जाती है)]।

अजु—(सं०)-(१) ज्वार (मकई) की बिना पकी बाल (मं०)। दे०—टुडा। (२) किसी फल की कोमल कलिया (चंपा०-१)। पर्या०—सिखा—(भाग०-१)। [आर्द्र]।

अटका—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—अँकटा। [अटका < अकता < अकाटक < *अट्टतक] ।

अटकामिसिया—(सं०) खेत में उपजनेवाली एक प्रकार की घास (मुं०-१, भाग०-१) [अटका + मिसिया < *अट्टतक + मिश्रित]

अठकठिया—(सं०) (१) आठ कट्ठे का खेत (मुं०-१, भाग०-१)। (२) आठ लकड़ियों (?) की (नाव) (मुं०-१)। [आठ + कठिया < आठ + कट्ठा + इया < *अष्ट + काष्ठ]।

अठनिया—(सं०) मूलिकर में से सर्वसाधिक मुकदी (किला)। (चंपा०, भाग० १) दे०—अधबार। [अठन्नी + इया < आठ आना, < आष्टक—मिला० 'अष्टु:'—(पैका०)]।

अठन्नी—(सं०) दे०—अधन्नार। आठ आने का सिक्का।

अठवारा—(सं०) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग०-१)। दे०— बारा। [आठ + वार (दिन) < *अष्टवार] ।

अड़कना—(क्रि०) जब खेत के पानी का सूख जाना,

जिसमें धान की फसल बोई गई हो, किंतु फसल अभी तक हरी-भरी न हो पाई हो। (शाहा०)। [अड़न + ल < अड़क (?)] ।

अड़कल—(वि०) अड़का हुआ। दे०—अड़कल।

अड़गड़ा—(सं०) अपराधी मवेशियों को बाँध देने का सार्वजनिक स्थान (मुं०-१, भाग०-१)। पर्या०—फाटक, काँजी-हाउस। [अड़+गड़ा < आड़+घर] ।

अड़गड़ा

अड़गुड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ जमीन। [देशी] ।

अड़हुल—(सं०) एक प्रकार का फूल, जो लाल रंग का होता है (दर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—अड़हुल (पट० ४), अड़उल (भाग०-१, ओड़उल (चंपा०)। [ओड्रपुष्प] ।

अड़रनेवा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल, पपीता (दर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—पपीता, रड़मेवा (भाग०-१, चंपा०)। [एरंड+मेवा] ।

अड़ार, अँड़ास—(सं०) कुएँ के मुँह का वह भाग, जहाँ पानी गिराते समय मेंड़ उभर जाता है (कहीं-कहीं यह लकड़ी का बना होता है)। (पट०-४, गया, भाग०-१, भाग०-५, मैं०-२ चंपा०)। [मिला०- अड़ेल (सं०) = (मुकना, रोकना), अड़ (प्रा०) = कूप, कूप के पास का गर्त्त, तट (पा० स० म०)] ।

अड्डा—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी (गया)। दे०—पाला। [अड्डा, मिला०-√अड (उद्यमे), √अट्ट, (अभियोगे), √अल (भूषणपर्याप्तिवारणेषु); अड्ड (प्रा०) = रोक, जो आड़े आता हो, बाधक होता हो (पा० स० म०); अड्डा (संता०) = चरागाह में पशुओं को बैठाने की जगह (संता० कि०)] ।

अड़ान—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी। (पट०, शाह०)। दे०—पाला। पर्या०—अड़ान (पट०-४)। [*आलान, √अड (उद्यमे) √अल (भूषणपर्याप्तिवारणेषु) अडिङ्ग (नें०) = रुकना, ठहरना (नेपा०) अड्डा। (संता०) = चरागाह में पशुओं को बैठाने की जगह (संता० कि०)। अड्डान, अड्डार (शाह०)] ।

अड़ानी—(सं०)—(१) कुदाल के बेंट के नीचे वाला नोंकदार अंतिम अंश। दे०—कुदा। (२) ढेंकी चलाते समय सहारे के लिए हाथ से पकड़ा जानेवाला बाँस या लकड़ी का टुकड़ा, जो दो खम्भों के बीच बँधा रहता है। (पट०-४, द० मुं०) दे०—अलम। [*आलान, अड़ + आनी < *अर + आनि] ।

अड़नी

अड़ार (सं०) (१)—(शाहा०) दे०—अड़ान और पाला। (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (शाहा०)। दे०—परती। पर्या०—गोचर। [अड्डा (संता०) = चरागाह में पशुओं के बैठाने की जगह (संता० कि०)] ।

अड़ाव—(सं०) रुकावट (शा०-१)। [मिला०—√अड (उद्यमे), आलान] ।

अड़ीया—(सं०) (मुं०-१)। दे०—अँड़िया। [अड़ (=बांध) + ईया < अरत्नवान्; (संस्कृ०) अड्‌डा (नें०)] ।

अड़ुआ बैल—(सं०)—बड़ा-बड़ा, लगभग दो-ढाई सेर तक का फलनेवाला बैल—(पट०-१)। [अड़ुड़ + वा + बैल < (अड़ाई) अर्द्ध + द्वि + बिल्व] ।

अड़ुवल—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अड़हुल।

अड़ाहुल—(क्रि०)—खेत को बार-बार जोत-कोड़कर तैयार करना (दर०, पूर्णि०-१)।

अढ़ैया—(सं०) ढाई सेर का बटखरा (बिहु०, हरि०, रां०)। [अर्द्ध+द्वि] ।

अतार—(सं०) एक प्रकार का कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (द० च०)। दे०—अलार। [अतार < आलार, आला (आलु) + र] ।

अदंत—(सं०) वह बाछा, जिसके दूध के दाँत न टूटे हों और नये दाँत नहीं निकले हों, किंतु जोतता (मु०, दर०, पूर्णि०-१, भाग०-१)। दे०—पदंत। [अ + दन्त] ।

अदरक—(सं०)— दे०—अदरख। [*आर्द्रक (संस्कृ०), आदु (नु०) आलें (मरा०)] ।

अदरख—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसका उपयोग मसालों और औषधों में होता है। यह तीता होता है। पर्या०—अदरक, आदी, आद, (द०-मु० मैं०, भाग०-१)। [आर्द्रक (संस्कृ०), आद (नु०), आलें (मरा०)] ।

अदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा। (पट०-४, चंपा०, भाग०-१) दे०—अदरा।

टि०—आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा फसल के लिए नितान्त आवश्यक मानी जाती है।

कहा०—अदरा धान के बोए जाही।

दुख के मार निकाल जाही ॥

—आर्द्रा नक्षत्र में यदि धानी धान बोया जाय तो आप लाठी मारकर दुःख को मार भगाएँ।

[< *आर्द्रा (संस्कृ०), आर्द्रा (मरा०)]

अदरा के कोढ़नी—(सं०), दे०—असाढ़ी कोढ़नी। [अदरा + के + कोढ़नी—गो०] ।

अदरा कोरन—(सं०)—(चपा०, द०-मु०)। दे०—असाढ़ी कोरन। [अदरा + कोरन—गो०] ।

अदरिया—(सं०) एक प्रकार का आम, जो आर्द्रा नक्षत्र में पकता है (पट०-१)। [अदरि + या (प्र०) < *आर्द्रा] ।

अदलाई-बदलाई—(सं०) परस्पर आदान-प्रदान (पट० ४, भाग०-१, चंपा०)। [अदलाई + बदलाई,—पदस्त की आवृत्ति, अदला-बदल- (मरा०)] ।

अदार—(सं०)—(१) वह बैल जो काम में कभी न सके (मैं०, शाहा०, द० भाग०)। पर्या०—अदारी, औदार (पट०, गया), अधी (द० मुं०)। (२) वह बैल, जिसे अभी तक हल में नहीं लगाया गया हो (चंपा०, भाग०-१)। [अदार (संता०) = नाँद; आदुत = अ + √दृ + त, उदार < उद् + आर (कील, रस्सी) < उद्गत + आर (=बंधन या सीमा से पार)] ।

अदारी—(सं०)—दे०—अदार।

अधकचु (वि०)—अधपका फल (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-२)। [अध + कचु, अर्धाकच्चा (मरा०), अधकचो (नें०)] ।

अधकड़ किस्त—(सं०)—(द० भाग०, भाग०-१)। दे०—अधबर। [अध + कड़ + किस्त, अर्ध + कर (संस्कृ०) + किस्त (फा०)] ।

अधकर—(सं०)—(गं० उ०)। दे०—अधबर। [अध + कर < *अर्धकर] ।

अधकर—(सं०) भूमिकर में से अर्धकालिक चुकती (किस्त)-(गं० उ० भाग०-१)। पर्या०—अधकर, (गं० उ०)। अठनिया, अढ़की (साभा०), अधकड़ किस्त (द० भाग०)। अध + कर = *अर्ध + कर] ।

अधन्नी—(सं०) प्रतिमास दो पैसे प्रति रुपये सूद की दर (द० मु० भाग०-१)। दे०—टकही। अध + अन्नी = आध (< अर्ध) + आना] ।

अधपइ, अधपई—(सं०) आधा पाव या दो छटांक भार का बटखरा (भोज०, मग० शाह०)। दे०—अधपौआ। [अध+पइ < आध+पाइ < *अर्धपाद]

अधपकू—(वि०) फसल की अधपकी बाल (गया, भाग०-१, चपा०-१)। दे०—हरमाइल। पर्या०—हॅमाइल (द० भाग०) हमहाइल (चंपा०) [अर्धपक्व] ।

अधपौआ—(सं०) आधा पाव या दो छटांक वजन का बटखरा (रां०)। पर्या०—अधपइ, अधपई (भोज०, मग०, शाह०)। [अध + पौआ √ *अर्धपाद] ।

अधबटिया—(सं०) भावली या जिनस जमीन की उपज में से किसान और जमींदार के बीच आधे-आध की बटाई (चंपा०, द०-मु०)। दे०—अधिया [अध + बटिया (= बटाई) < अर्ध + वंटन] ।

अधबटैया—(सं०) (पट०, गया, भाग०-१) दे०—अधिया [अध + बटैया] ।

अधबलिया—(सं०) धानी का एक हिस्सा (दर०, पूर्णि०-१)। पर्या०—अधबलवा [अध + बलिया < *अर्धवलय] ।

अधभरी—(सं०) वह धान जिसके दानों में चावल पूर्णतया विकसित नहीं होते, बल्कि आधा भरा हो जाता है (द० मुं० भाग० १) [अध + भरी] ।

अधमना—(सं०) आधे मन का बटखरा। आधा मन बीस सेर का होता है; अतः इसे 'बिसौरा' भी कहते हैं (बि०, हरि०, रां०)। [अध + मना < *अर्ध + मान, मानक (?)] ।

अधरसा—(वि०)—(शाहा०) दे०—अधरसा। [अध + रसा < *अर्ध + रस] ।

अधरासा—(वि०) किसी फल आदि का पूर्ण रूप से न पकना (चंपा०-१, भाग०-१) पर्या०—अधरसा (शाहा०-१)। [अर्ध+रास/रसा <*अर्ध+रस]।

अधलप्पा-(सं०)-(१)(प०-बँ०)। दे०-अधलाभा। (२) मवेशी को पोसने के लिए दिये जाते समय की वह शर्त, जिसमें मवेशी की कीमत आँककर दिया जाता है और उसे बेचते समय उस मवेशी की कीमत से आँकी हुई कीमत बाद करके शेष रकम को दो भागों में बाँट दिया जाता है, आधी रकम और आँकी हुई कीमत मवेशीवाले को मिलती है और शेष रकम पोसनेवाले को (चंपा०-१)। [अध+लप्पा <*अर्धलाभ (?)]।

अधलाभा—(सं०) पशु आदि के खरीदने या कुआँ बनाने के लिए दी जानेवाली अग्रिम द्रव्यराशि (पू० बँ०)। पर्या०-करजा, तगावी (सं०द०), अधलप्पा (प०-बँ०, चंपा०) (इस तरह का कर्ज किसानों को दिया जाता है। ऋणदाता दिये गये कर्ज का द्रव्य और पशु की आय का आधा द्रव्य ले लेता है।)। [<*अर्धलाभ]

अधवाड़—(सं०) बाँस आदि के ऊपर का आधा भाग (चंपा०-१, पट०-४, शाह०)। [अध+वाड़ <अर्ध+वालक या वल]।

अधसेरा—(सं०) आधे सेर का बटखरा (बिहु०, हरि०, रो०)। अध+सेरा <*अर्ध+सेटक]।

अधिया-(सं०)-(१) किसी जमींदारी या संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (सं० उ०, भाग०-१)। पर्या०—आधेआध (शाहा०)। [अर्धिक (संस्कृत), अधियाँ (नं०)]। (२) किसान और जमींदार के बीच आपसी अथवा निराला जमीन की उपज के आधे-आधे भाग की बटाई (सं०उ०, ब०-प०, भाग० १)। पर्या०-अधबटैया,-यह (पट०, गया), अधबटिया (चंपा०, ब०-पु०), दु दाना में से एक दाना (ब०-प० शाहा०)। [अर्ध]।

अधैल—(वि०) धान पौधों का पूर्ण वयस्क बैल दे०—पुरा। [अध+एल (देशी ?)]

अनंदी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)।

अनउआ—(सं०) दे०—अनुआ।

अनउत—(सं०) प्रातः, सबेरे (मुं०-१, भाग०-१, चंपा०)। [देशी, मिला०-अनुदक (संस्कृ०)= जलपानकाल]।

अनजान—(सं०) एक पशुघाय घास (पट०, गया, शाहा०)। [देशी]।

अनजीर—(सं०) एक मीठा और सुस्वादु फल। यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट०-१)। [*अंजीर (संस्कृ०, फा०)]।

अनपट—(सं०) दे०—अनपद।

अनबाह—(सं०) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गए अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लड़का (पू० बँ०, उ०बँ०)। पर्या०-चरवाहा, गोरखिया, [अन+वाह, *अनडुह्+वाह, (चरवाहा), गोरखिया <गोरक्षी, गुराखी (मरा०)]।

अननास—(सं०) दे०—अनास।

अनाज—(सं०) भोजन, अन्न। (पट०-४, भाग०-१, (चंपा०)। [अन्नाद (संस्कृ०)—(हि० श० सा०), अन्नाद्य, अन्नादि। अनाज (हिं), अनाज् (बँ०), अनाज (कश्मीरी०), अनाज, नाज (कुमा०), अनाज (बं०), अनाज (पं०), अनाज (सं०), अनाजु (सि०), अनाज (गु०) अन्दा (कादि० प्रत्य)]।

अनाड़ी—(सं०) अनाड़ी। वह बैल, जो अभीतक जोता नहीं गया हो (मुं०-१, भाग०-१)। [अन (अव्य०, निषे०)+आड़ी (=काठ <काष्ठ), अनाड़ु (बं०)=अपरिचित, अशिष्ट (संस्कृ०)—(चंपा०)]

अनाड़ु—(सं०) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस नहीं निकलता (ब०-पु० बँ०)। दे०—कोढ़ी।

अनारकली—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (ब० मुँ०,शाहा०)। [अनार+कली, अनार (फा०)+कली (संस्कृ०)]।

अनास—(सं०) एक फल-विशेष। इसके पौधे छोटे, पत्ते लम्बे और फल खट्टे होते हैं (पट०-१)। [अननास (हि०), नानस (बंकि० अमे०), उननास (पुर्त०)]।

अनुआ—(सं०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक जमीन आदि में पानी उठाया जाता है (चंपा०)। दे०—औदर। (२) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ जमीन काट कर पानी पटाया जाता है (चंपा०)। [मिला० अनूक=रीढ़ (मो० वि० डि०); अनूप=जलसमीपदेश, नदीतट; अनूर्ध्व=अधिक ऊँचा नहीं, अनुन्नत]।

अनुपान—(सं०)एक प्रकार का केला (दर०-१)। पर्या०—अलपान (पट०-४)। [देशी]।

अनुराधा—(सं०) सतरहवाँ नक्षत्र, अनुराधा, यह नक्षत्र कार्तिक महीने में पड़ता है। [अनुराधा]।

अनूपी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०, पूर्णि०-१)। [अनूप=जल-समीपस्थ]।

अनेर जाएल—(मुहा०) पशुओं का मुफ्त जाना, नरक जाना (उ० पु० बँ०)। दे०-हेरा जाएल। [अनेर+जाए+ल (प्र०) अनेर <अनृत (हि० श० सा०), अनेर=मूर्ख, <*अन्+अर्थ=असामाजिक]।

अनेरवा जाएल—(मुहा०) दे०—हेरा जाएल और अनेर जाएल। [अनृत (=अनेर)—हि० श० सा०), अनेर=मूर्ख, *अनर्थ (=अन्+अर्थ=असामाजिक]

अनेरा—(सं०) (प० बँ०, भाग० १)। दे०—अनेरिया। [*अनर्थ=(अन्+अर्थ) असामाजिक]।

अनेरिया—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देख-भाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (प०, चंपा०-१)। पर्या०—अनेरा (प०-बँ०), छुट्टहा (गया), बईलार (पट०), उजड्ड (द० मुं०), उजरा (द० भाग०)। [*अनर्थ (<अन्+अर्थ) =असामाजिक; अनेरा=अनर्थ; छुट्टहा √छुट (देशी), √छुट (छोड़ने, संस्कृ०); उजड्ड=उज्जड़, उज्झित (संस्कृ०)=त्यक्त; उजरा—उज्जड़ (देशी), उद्+ज, (=नष्टहानी)]।

अनौआ—(सं०) वह ऊँचाई, जहाँ तक जमीन आदि में पानी उठाया जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—औदर। [अनूक=रीढ़ (मो० वि० डि०), अनूप=जलीय प्रदेश, जलीय तट, अनूर्ध्व]।

अन्न—(सं०) भोजन, अनाज। [अन्न]।

अन्पद्—(सं०) मवेशियों की आँख को बंद करने के लिए सींक और टाट का बना हुआ ढक्कन (मा०, चंपा०)। पर्या०—खोलसा (बँ०, द०-पु०) खोल, खोला (पु०), झोंपनी (शाहा०), नोबूता (शाहा०), आँधियारी (पट०), अँधेली (गया)। ढेकनी (पट०-४) खोलसा—(भाग-१)। [अप्नुत=(अनु √नु+त) ढँकनेवाला]।

अनपद्

अन्हड़—(सं०)—दे०—अंधड़ (दर०-१,भाग०-१)। [*अन्धकार]।

अन्हरवखे—(सं०) सबेरे का वह समय, जब पूरा साफ नहीं हुआ हो और कुछ-कुछ अंधकार हो (चंपा०-१)। पर्या०—अन्हरूखे (भाग०-१)। [अन्हर+खे, <अन्ध (क) र+खे (<उषस्)]।

अन्हरिया—(सं०) ऊख में अंकुर फूटने पर पहली कोड़नी या जोत (उ०-पु० बँ०)। दे०—पुआरी। पर्या०—अन्हारि-(दर०-१)। [अन्धकार]।

अन्हरिया—(सं०) कृष्णपक्ष की रात, जिसमें चन्द्रमा नहीं उगता (चंपा०-१, दर० १, पट०-४, भाग०-१)। [अन्धकारित् (पक्ष)]।

अन्हरूखे—(सं०)-(भाग०-१), दे०—अन्हरवखे।

अन्हरोख—(सं०)—(दर०-१); दे —अन्हरवखे [अन्हर+ओख <*अन्धकार+उषस्]।

अन्हारि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—अन्हरिया और पुआरी।

अन्हारी देल—(मुहा०)—ईख के खेत में पानी पटाना (दर०-१)।

अन्हाव—(सं०)—धान रोपने के पहले खेत को तैयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया (बँ० भाग०)। दे०—लेव। [अनु+अवगाह]

अन्हावल—(क्रि०)—धान के पौधे को रोपने के लिए खेत गीला करना (मुं०-१)। [स्नान (?), अनु+अवगाहन]

अन्हेरिया-(सं०),पट०); दे०-अन्हरिया। [अन्धकार]।

अन्होर कइल—(मुहा०) बहुत जोर से बाजा बजाकर हल्ला करना (चंपा०-१), [अन्होर+कइल; आह्वान (?)—कइल (<√कृ=कर)]।

अपजोस—(सं०) एक प्रकार का मेवा। यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट०-१)। [आवजोश (फा०)]।

अपटा—(सं०)-(१) वह खेत, जिसे बाढ़ आदि किसी कारण से कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। पर्या०—अपटा (पट०-४, भाग०)। (२) नहर या नैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (उ०प०)। पर्या०—अगरपाट (चंपा०, उ० प० मैं०), टोड़ (प०), मोहर (प०), बालन (पट०, गया), मेलान (द० मुं०) तुरका, अपड़ा (द० भाग०)। [अ+पटा]।

अपराजिता—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [अपराजिता (संस्कृ०)]।

अपाय—(सं०) फसल का एक रोग (मुं०-१, भाग०-१)। [अपाय (संस्कृ०)]।

अपासी—(सं०) सिंचाई-(पट०-४) दे०—आब-पाशी। [अ+पासी<* आबपाशी (फा०)]।

अपुष्पांग—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१)।

अफार—(सं०) बिना जोता हुआ खेत (सा०-१, चंपा०; भाग०)। पर्या०—परती (पट०-४, भाग०-१)। [अ+फार<अ+फाल, अफाल]।

अफीम—(सं०) पोस्ते से उत्पन्न होनेवाली एक वस्तु, जो दवा और नशा दोनों कामों में व्यवहृत होती है। [अफीम (फा०) अहिफेन (संस्कृ०)]

अबई—(सं०) दे०—अबी। [अ+बई *अ+बीज, *अवीर्य]।

अबरसन—(सं०) वर्षा का अभाव (सा०-१)। [अ+बरसन<*अ+वर्षण]।

अबाद—(सं०)-(१) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती। (पट०-४, भाग०-१) पर्या०—अबादी, जड़ती (चंपा०)। (२) फसल लगाया हुआ खेत। पर्या०—अबादी, पद (द० मुं० गया), खील बैठाखोल, (पट०), खिलमार (शाहा०)। [अबाद = आबाद (फा०), सुपीक (मरा०)]।

अबादी—(सं०) दे०—अबाद [आबादी (फा०)]

अबिजा—(सं०) मरा हुआ या उगने में असमर्थ बीज (सं० उ०)। दे०—अबी। [अ+बिज<*अबीज, *अवीर्य]।

अबी—(सं०) वह अन्न का बीज, जो उग नहीं सकता है (चंपा०-१)। [अ+बी<*अबीज, *अवीर्य]।

अबुआब—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जानेवाला भूमिकर (पू०)। दे०—बोल-रचा। [अबवाब] (अर०)]।

अबौ—(सं०) वह बैल, जो काम में कभी न थके (द० मुं०)। दे०—मदार। [अबोट (संस्क०)=अपरिश्रान्त]।

अबौन—(सं०) रोपने के बाद खेत के पानी को बाहर निकालकर धान के पौधों में धूप लगाने की प्रक्रिया। (मुं०-१, भाग०-१)। [देशी]।

अभर—(वि०) कमजोर मिट्टी (चंपा०)। दे०—हलुक। [अ+भर<*अबल]।

अभी—(सं०)-(१) न जम सकनेवाला अनाज। पर्या०—निरबीज, बिजमार, बीयामार, बरुआ (द० प० शाहा०), कुन्नी (द० भाग०)। (२) न उगनेवाला निष्फल बीज (प०)। दे०—मुन्नी। पर्या०—अबई, कुन्नी (द० भाग०)। [अ+भी<*अवीर्य, *अबीज]।

अमचूर—(सं०) आम की सूखी खटाई (चंपा०-१)। [अम+चूर<*आमचूर्ण]।

अमड़ा—(सं०) एक फल और उसका पेड़। इसका फल कसैला और खट्टा होता है। इससे चटनी, अँचार आदि बनाये जाते हैं। (पट०-१, दर०-१, सर्वत्र)। [आम्रातक (संस्कृ०); *अंबाड़ (प्रा०); अँबाड़ा, आमरा, अमरा, अमड़ा (हि०); आमड़ा, अमड़ा (बँ०); अंबाड़ा, आंबाड़ा (मरा०) जंगली आंबी, अंबेडा, अंबेडा (गु०), आंबोडेकाय; आमोट, अंबालमु (तै०); अमरा, अंबड़ा (पं०), अमारी (बँ०)]।

अमड़ाह—(सं०) वह बटखरा जो उचित तौल से ज्यादा हो (चंपा०-१)। [देशी]।

अमता—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (प० मैं०, चंपा०)। [देशी]।

अमसी—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)।

अमसुर—(सं०) अमरूद। एक प्रकार का पेड़ और उसका फल। इस पेड़ का फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है। इसके भीतर छोटे-छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। इसकी पत्ती और छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती है। इसकी पत्ती के काढ़ा से कुल्ली करने से दाँत का दर्द दूर होता है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं (पट०-१)। पर्या०—अमसुर—(चंपा०), अमरूध (शाहा०-१)। [अमृत (फल); आम-सिंह (म० प्र०, म० भा०); प्यारा (बँ०) पेरु-(मरा०); जेरु-पल, पेरुक (त०, तै०); तूप्पो (कँ०); शफ्तालू, अमरूद (अर०); सफरजी, लताम (बँ०)]

अमसुर—(सं०)—(चंपा०)। दे०—अमरूद।

अमरलता—(सं०) बबूल आदि के पेड़ों पर फैलनेवाली बिना जड़-पत्ते की एक प्रकार की पीली लता। इसे 'परजीवी' लता भी कहते हैं। यह उन पेड़ों से रस लेकर जीती है (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अमरबेल। अमरलत्ती (दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१, चंपा०)। [अमर+लता<अम्बर+लता,<अम्बर+लता]

अमरलत्ती—(सं०)—(दर०-१,—पूर्णि०-१, भाग०-१, चंपा०)। दे०—अमरलता।

अमरूद—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (शाहा०-१)। दे०—अमरूद। [अमृत (फल)]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० मैं०, गया, चंपा०)। [देशी]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार का घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी]

अमलदारी—(सं०) अमला का अधिकार (सा०-१, पट०-४)। [अमल + दारी<अमला + दार+ई (फा०)]

अमवाड़ी—(सं०) आम का बाग (पट०-१)। [अम+वाड़ी<आम+वाटिका]

अमासूल—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पूर्णि०-१)। [अम+सूल<आम+शूल<आम+शूक]

अमहुा—(सं०) बैल का एक भेद (घाव)। [अमाह (हि०)=बैल का एक रोग, जिसमें आँख के कोने से मांस निकल आता है (हि० श० सा०) <अमास]

अमारी—(सं०) सूखे हुए गोबर का (बिना कमाये) ढेले जैसा टुकड़ा, जो जलावन के काम में आता है (गया, द० मुं०, भाग०, पट०-४, भाग०-१)। दे०—करसी। मुहा०—अमारी तुड़ना—गोबर से अमारी बनाना।

अमावट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (प०, चंपा०)। पर्या०—अमोट (उ०-पू० मैं०, भाग०-१)।

अमीन—(सं०) खेत में लगी फसल का मूल्य आँकने के लिए नियुक्त व्यक्ति (पट०-४, चंपा०, भाग०-१, भाग०-५)।

अमोट—(सं०) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य-पदार्थ (उ०-पू० मैं०, दर०-१, पूर्णि०-१, भाग०-१)। दे०—अमावट [अम+ओट<आम्रावर्त]

अमोला—(सं०) आम का नया निकलता हुआ बिरवा (चंपा०-१)।

अम्मारापत्र—(सं०) सफेद कागज और छिलके-वाला एक अलहदी घास, जिसकी गाँठ में सौल-सोल बालों के गुच्छे होते हैं (सा०-१, चंपा०)। [अम्मा+पत्र<आम्रकुल (?)]

अमौरी—(सं०) आम का छोटा टिकोला, जिसमें रेशा नहीं आया हो (पट०-१)। [अम+औरी<आम्रवटी]

अरई—(सं०)—(१) बैलों को हाँकने के लिए छड़ी के अंत का नुकीला भाग। पर्या०—अरौआ (मग०, द० मुं०), आर या आरूआ (द० भाग०)। [आरतुद] (२) वह बैल, जो चलते-चलते एकाएक रुक जाता है (सा०-१, चंपा०)। [आरंतुद]

अरई

अरक—(सं०) अर्क (शुद्ध प्रवीण) का रस।

अरगनी—(सं०)-(चंपा०)। दे०—अलगनी। [अर्क (संस्कृ०), अर्क (बँ०), अर्क (मरा०)]

अरजन—(सं०) कमाई (चंपा०-१)। [अर्जन]

अरजुन—(सं०) एक वृक्ष-विशेष, जिसकी छाल दवा के काम में आती है (शाहा०-१)। [अर्जुन]

अरजल्ल—(वि०) उपार्जित (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अरज+ल (प्र०) < √अर्ज]

अरद्‌रा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा, यह आषाढ़ के कृष्णपक्ष में पड़ता है। वि०—बिहार में सामान्यतः आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र में धान बोया जाता है और विश्वास किया जाता है कि इस नक्षत्र में बोने से धान की प्रचुरता, पुनर्वसु नक्षत्र में बोअने वाले या बाँसही की अधिकता और पुष्य में बोने से सर्वथा अभाव होता है, जैसा कि निम्नांकित कहावत से ज्ञात होता है—

"अरदरा धान, पुनरवस पैया,
गेल किसान, जे बोवे चिरैया।"

प्रायः धान पूस (पौष) महीने में काटा जाता है। बिहार के किसान आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर किया करते हैं। इस नक्षत्र में वर्षा होने का अर्थ है कि धान की फसल अच्छी होगी। अतएव, इसके नाम पर कई कहावतें प्रसिद्ध हैं—

"आदि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान।
कहहिं भाक सुनु भिलवरि भये किसान पिसान॥"

यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त-नक्षत्र के अन्त में वर्षा नहीं होती है, तो भाक कहते हैं—हे भिलवरि! सुनो, किसान पिस जाते हैं।

"चढ़त बरसे अरदरा उतरत बरसे हस्त।
कतेक राजा डाँड़े, रहे अनंद गिरहस्त॥"

यदि आर्द्रा-नक्षत्र के आरंभ में और हस्त के अंत में वर्षा हो जाती है तो राजा की ओर से मालगुजारी कितनी भी क्यों न हो जाय, गृहस्थ (किसान) प्रसन्न ही रहेगा।

"अरदरा बरसे सब सिझुठी।
एक जवास पतर बिन भौ॥"

यदि आर्द्रा में वर्षा होती है तो सभी फसल अच्छी होती है, केवल जवास (एक प्रकार का कँटीला पौधा) ही पत्रहीन हो जाया करता है। पर्या०—अद्रा। [आर्द्रा]

अरदवी—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (उ०-मुं० मैं०)। दे०—अरुई। [आलुकी (संस्कृ०), आलुई (प्रा०), कोचू, कच्चू (बं०), आलु, अलवाचा काँदा (मरा०), अलवी (गु०), राव आलु, अरवी, कचालु (पं०), शिमक, किंवहनु (ता०), चमकुरा (तें०)]

अररा—(सं०) नदी का ऊँचा किनारा। दे०—करारा। पर्या०—आरार (पट०-४)। [आर =तट (हि० श० सा०)]

अरवा—(सं०) बिना उबाले हुए धान को सुखाकर कूटा गया चावल, जो पवित्र और शुद्ध मानकर देवादि विषयक कार्य में व्यवहृत किया जाता है (भाग०-१, चंपा०-१, पट०-४)। दे०—चाउर। [अ + रवा =(लावना)=जलाना, भूनना (हि० श० सा०), मिला०—अपूर्व=देवादि पर अर्पित करने योग्य]

अरार—(सं०)-(१) नदी का ऊँचा खड़ा किनारा (प्रायः सर्वत्र)। (२) पानी सूख जाने के बाद बाँगर जमीन का फट जाना (चंपा०-१)। दे०—करारा। [आर (हि० श० सा०), मिला०—आर=किनारा, अरार=नदी का ऊपर का तट। टेकाड़ (मरा०)]

अरारि—(सं०) दे०—करारा।

अरिखन—(सं०) ऊँची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीन (ब० भाग०)। दे०—बीहड़ [अरएय (?)]

अरिया—(वि०) अगल-बगल के खेतवाले। किसी व्यक्ति के खेत की बगल में जब दूसरे का खेत रहता है, तब दोनों 'अरिया' कहलाते हैं (मुं०-१, चंपा०)। पर्या०—अरियापरोस (पट०-४, भाग०-१)। [आर = खेत की मेड़+इया (प्र०)]

अरियापरोस—(वि०)-(पट०-४)। दे०—अरिया।

अरुआ—(सं०) बैल, भैंस आदि को हाँकने के लिए बनी छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग। दे०—अरई। [अरुन्तुद]।

अरुआ—(सं०) अरुई की जाति का लम्बा, मोटा कंद, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—अरुई। पर्या०—कंद्रा (पट०-४)। [आलुक, आलुकी]

अरुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है। पर्या०—अरदवी (उ०-मुं० मैं०), पेकचा (द०-प० मैं०)

पेकची (शाहा०), पेचकी (गया, शाहा०), अलती (ब० भाग०), अरुई (भाग०)। कच्चू, अरुआ, कंदा, कच्चा=अरुई का बड़ा भेद। [आलुकी (संस्कृ०), आलुई (प्रा०), कोचू, कच्चू (बं०), आलु, अलवाचा काँदा (मरा०), अलवी (गु०), राव आलु, अरवी, कचालु (पं०), शिमक, किंवहनु (ता०), चमकुरा (तें०)]

अरैया—(सं०)-(१) धान के पौधे का एक रोग (ब० मुं०)। पर्या०—पोचारी (पु०)। (२) पानी में होनेवाली बिना पत्तों की एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पट०-४)। [देशी]

अरौ, अरौआ—(सं०) हलवाहे का छोटा डंडा या छोटा पैना, जिसकी नोक में बैलों के पुट्ठों पर गड़ाने के लिए लोहे की पतली कील लगी रहती है (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अलातक, अरुंतुद]

अरौआ—(सं०)-(१) पशु को हाँकनेवाली छड़ी के अन्त का नुकीला काँटेदार भाग (पट०, ब० मुं०)। दे०—अरई। [अलातक, अरुंतुद] (२) हेंगा खींचने के बरहे (रस्सी) की जगह काम में आनेवाली बाँस की लग्गी। दे०—कुम्ही।

अरंहो—(सं०) भैंसा को पुकारने का शब्द (गा०-१, पट०-४)। पर्या०—अर्‌र्‌है (भाग०-१, चंपा०)।

अर्‌रा—(सं०) एक प्रकार का चौड़ा बड़ा दाँतदार औजार, जिससे लकड़ी काटी जाती है (ग० ब०)। दे०—आरा। [आर]

अर्राहट—(सं०) वृक्ष के गिरने के समय की आवाज (चंपा०-१, पट०-४)। [अनु०]

अर्‌र्‌है—(सं०)-(भाग १, चंपा०)। दे०—अर्‌र्‌हो।

अर्हारल—(वि०) किसी को कोई काम करने के लिए कहना (चंपा०-१, पट०-४)। [अर्ह+आरल (प्र०) अर्ह<अर्घ< अर्थ (?)]

अलंग—(सं०)—(१) जल के बचाने या बहाव से संबद्ध समतल भूमि से ऊपर उभरा हुआ बाँध। दे०—पिंड। (२) दो चहारों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (पट०)। दे०—मरीआं। (३) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (पट०, गया, ब०-म०)। दे०—आर। (४) शरीर का एक अंग। हिस्सा। भाग (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [अ+लंग< अवलम्ब्‌;—मिला०—"हिरण्यं वपुषे प्रार्णेऽवलम्बो मध्यलम्बयोः"—(अने०)। "अवलम्बोऽलियां मध्येऽपि स्याल्लम्बमात्रके"—(मेदि०)। अलङ्ग्य=अलङ्घनीय; सीमा]

अलगरा—(सं०) पक्का पका या मारा गया हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (गया)। दे०—मलियाएल। (वि०) सामान्य अर्थ में उठा हुआ या उभरा हुआ। [अ+लग+रा (प्र०)=न लगा हुआ, निष्कासित]

अलगा—(सं०) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (ब० भाग०)। दे०—बलकट। [अ+गला]

अलगनी—(सं०)-(१) फसल उखाड़ने का काम (मुं०-१, भाग०-१)। (२) कपड़े टाँगने या रखने की रस्सी या बाँस (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—अरगनी (चंपा०)। [अ+लग+ना (प्र०)+ई (प्र०)< अवलग्न (?)]

अलगावल—(क्रि०) किसी चीज का बोझ, दूसरे को, किसी के द्वारा उठाया जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [अ+लगाव+ल (धा० प्र०)]

अलगी—(सं०) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वरा-शक्ति को चुकी होती है (ब०भाग०)। दे०—ऊसर। [अ+लग+ई]

अलगोजा—(सं०)—(१) बाँस के कोपल का ऊपरवाला भाग (चंपा०-१)। (२) वह बाँसुरी जो सामने से फूँककर बजाई जाती है (चंपा०-१)। [देशी]

अलठी—(सं०) एक प्रकार का कंद, जो छोटा, लंबा, लसदार और खाज करनेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (ब० भाग०, भाग०-१)। दे०—अरुई। [मिला०-आलुकी]

अलपजिया—(सं०) थोड़ा जानेवाला पशु (द०-मुं० मैं०)। दे०—तिखोराह। [अलप+जिया< अल्पजीव, अल्पजिह्व]

अलान—(सं०) हाथी को ऊपर चढ़ाने का बंगल। पर्या०—पाँड़ा (मुं०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [आलान, आलंबन]

अलाया, अलाये—(सं०)—(१) किसान के द्वारा अपने खेत में अफीम आदि की उपज के बाद बोई जानेवाली चीज। (२) एक फसल काट लेने के बाद बोई जानेवाली दूसरी फसल। [अलाया (फ़०)]

अलाये—(सं०) दे०—अलाया।

अलाह—(सं०) पत्तपरवार जलाकर बनाई हुई खाद (पट०, गया)। दे०—खादर।

अलुआ—(सं०)—(१) एक प्रकार का लंबा, मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पु०-प० बि०)। दे०—शकरकन्द। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (सं० उ०, द०, भाग०-१)। [आलू, आलुक]

अलुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पु० मैं०, सा०-१, चंपा०)। दे०—आलू। [आलुकी]

अलेह—(वि०) बहुत ज्यादा, इफरात (मुं०-१, भाग०-१)। [मिला०—अलेख = (जिसका हिसाब-किताब न हो; अधिक)]।

अलोप—(वि०) किसी वस्तु को किसी चीज की ओट में रखना (चंपा०-१, भाग०-१)। [आलुप्त, मिला०—अलोप होना (वि०)]

अलुआ—(सं०) एक प्रकार का लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (द०-पु० मैं०, मुं०-१, भाग०-१)। दे०—शकरकंद। [अलु + आ < आलुक]

अवखराह—(सं०) अचानक दूसरी ओर लग जाने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। पर्या०—ओछ्-बाह (पट०-४)। [अवखर]

अवसार—(सं०) वर्षा का वह झोंका, जो कुछ देर के लिए एकाएक पानी बरसा जाता है (चंपा०-१)। पर्या०—अझार (पट०-४, भाग०-१)। [अवसार = अ + सार]

अवाँसल—(वि०) नये बरतन को पहले-पहल काम में लाना (सा०)। दे०—उत्तहुल [आवासन]।

अवारजा—(सं०) वह बही, जिसमें प्रत्येक दिन के आय-व्यय के सारांश का हिसाब लिखा रहता है। पर्या०—वारजा। [अवारजा (फ़ा०)]

असकजाहु—(सं०) डेंकी की धुरी (द० भाग०)। दे०—असौत। पर्या०—साम, समौथा (पट०-४)। [अस + शलाका]

असठी—(सं०) चौरी (ओसारी) के नीचे की ऊँची भूमि (गया)। [अष्टी ?]

असनी—(सं०)—(१) आश्विन में होनेवाला सफेद छिलकावाला एक लंबा धान (शा०-१, पट०-४, गया०-१, भाग०-१)। (२) वह नक्षत्र, जो अगहन में चलती है (मैं०)। दे०—अगहनी। [आश्विन + ई = असनी < आश्विनीय]। (३) पहला नक्षत्र, अश्विनी (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। दे०—अश्विनी। [अश्विनी]

असगोल—(सं०) एक प्रकार की छिल-जैसे दानवाली वस्तु, जो तरल वस्तु के साथ मिलने पर फैलकर लसदार बन जाती है तथा जिसके दाने और भूसी पेट की बीमारियों में खाई जाती है। इसका दाना भूरा एवं गुलाबी होता है और भूसी सफेद-भूरी होती है। पर्या०—सफगोल (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [इसबगोल (फ़ा०)]

असमानी—(सं०) हलका नीला रंग (पट०-४, भाग०-१)। दे०—कुसुम। [आसमान + ई = आसमानी (फ़ा०)। मिला०—आस्मा (दिखा) + मान (संस्कृ०)]।

असरा—लकड़ी का वह भाग जो कच्चा होता है (चंपा०-१, पट०-४)। पर्या०—असला (भाग०-१) [अ + सरा < असार]

असराफ—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट०-४)। पर्या०—सुरफा (पट०), सुरफाय (गया), बड़ आदमी (सं० उ०)। [अशराफ़ (अर०)]

असरेखा—(सं०) नवाँ नक्षत्र, आश्लेषा। यह नक्षत्र प्रायः सावन के अंत में आता है। यह चक्राकार छह नक्षत्रों से बना है। इसका देवता सूर्य है। कहा०—'जौ न भरे असरेखा मघा।
फेर भरे असरेखा मघा॥'

—जो आश्लेषा और मघा नक्षत्र में नहीं बरसता है, वह तबतक नहीं बरसता है जबतक पुनः दूसरे वर्ष आश्लेषा और मघा नक्षत्र नहीं आ जाते। पर्या०—असरेस, असरेसा (चंपा०), असलेखा। असरेखा (भाग०)। [आश्लेषा]

असरेस—(सं०) दे०—असरेखा।

असरेसा—(सं०)—(चंपा०)। दे०—असरेखा।

असल—(सं०) वह मूलधन, जो सूद पर दिया गया हो (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। पर्या०—मूर, मूल (शाहा०), मूड़ी रुपया (द०-पू०)। [असल—(अर०)]

असल-के-असल—(सं०) जिस भाव पर खरीदा गया हो, उसी भाव पर बेचने की प्रक्रिया (द० पू०, पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। दे०—किरी के भाव।

असला—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—असरा।

असलायल—(क्रि०) सड़ना, स्वाद उतरना, गलना (मुं०-१, भाग०-१)। [अ + सलायल < अ-शाल (= अ + √ शू = नष्ट होना, सड़ना)। मिला०—सलन (अ०)]

असलेखा—(सं०) नवाँ नक्षत्र, असलेषा। दे०—असरेखा [आश्लेषा]।

असाढ़—(सं०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म का अंतिम मास। प्रायः जून के अन्त और जुलाई के आदि के १५ दिन। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता है। अतः आषाढ़ नाम पड़ा है। (पट०-४, भाग-१, चंपा०, शाहा०, सा०, भाग०)। दे०—अषाढ़।

असाढ़ी—(सं०)—(१) असाढ़ में बोई जानेवाली चीज की दूसरी जोती (सं० उ०)। दे०—दानूनी। (२) असाढ़ में बोयी जानेवाली फसल। [असाढ़ + ई < आषाढ़ीय]

असाढ़ी के कोड़—(सं०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो आषाढ़ या आर्द्रा-नक्षत्र में होती है (प०)। दे०—असाढ़ी कोड़नी। [असाढ़ी + कोड़]

असाढ़ी कोड़न—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई (पट०)। दे०—असाढ़ी कोर। [असाढ़ी + कोड़न]

असाढ़ी कोर—(सं०) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई। पर्या०—टोकाव (चंपा०, द०-पू० मैं०), पासा (गया), असाढ़ी कोड़न (पट०), असरा-कोरन (चंपा०, द०-पू०)। [असाढ़ी + कोर]

असामिवार—(सं०) वह समझौता, जिसके द्वारा किसान नील यूरोपियन निलहों के साथ नील की खेती में प्रवृत्त हुए थे। दे०—रैयती। [असामि + वार < आसामी (अ०)]

असामिवार—(सं०) दे०—रैयती। [असामि + वार < आसामी (अर०) + वार]

असामी—(सं०)—(१) कर्ज लेनेवाला किसान (भाग०-१, चंपा०)। दे०—खातुका। (२) दे०—गिरिहा। (३) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी आदि किसी शर्त पर जोतनेवाला किसान। पर्या०—रैयत, परजा, काश्तकार, पोतेदार, (पट०, भाग०-१)। [आसामी (अ०) मिला०—अस्वामी (संस्कृ०)]

असार—(सं०) फाल की नोक तेज करवाने की क्रिया (द० मुं०)। दे०—धार पिटावल। [आसार]

असुनी—(सं०)—(भाग०-१)। दे०—अश्विनी।

असेरी—(सं०) कास्तकी जमीन में पटवारी को अनिमन आधा सेर के हिसाब से मिलनेवाला पारिश्रमिक (शाहा०)। दे०—सींवा। [अ + सैरी < अपसेरी < अर्धसेर]

अश्विनी—(सं०) पहला नक्षत्र, जिसकी आकृति घोड़े के मुख जैसी मानी जाती है। पर्या०—असनी, असुनी (भाग० १)। [अश्विनी]

अहमुख—(सं०) वह पशु, जो हमेशा जीभ निकालता हो (पट०-१)। [अह + मुख < अहिमुख]

अहरा—(सं०)—(१) जल के संग्रह के लिए बँधा हुआ जलाशय, अजाना, अहरे की मेंड़ (द० बि०, भाग०-१)। पर्या०—बाँध, सरबन (चंपा०), पूर (द० मैं०), खरकी (द०-पू० मैं०)। (२) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली और ऊँची सतह के जल-प्रवाह से युक्त ऊँची समतल भूमि (ग० द०, उ०-प०)। दे०—ईडेंडी। [आधार, जलाधार, आहार]

अहरी—(सं०)—(१) छोटा जलाशय। दे०—ईडेंडी। (२) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेंड़ (पट०, गया द०-प०)। दे०—आर। पर्या०—आहीर,

लेहँड़ी = जानवरों के पानी पीने के लिए बनाया गया हौज (शाह०)। [अहरा + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)]

अहूरी—(सं०) बैल के खुर का गलना (चंपा०)। [अ + हुरी < अर्ध—खुर]

अहुला—(सं०) भूसा या पुआल से बनी फसल की राशि (मु० मं०, भाग०-१) दे०—औंसरा।

आ

आँउस—(सं०) एक प्रकार का भदैया धान (दर०-, पूर्णि०-१)। [आशु (संस्कृ०), आउश—(बं०), आउस हि०)]

आँकड़—(सं०)— (मोत०, सम०, भाग-१)। दे०—अँकरा।

आँख—(सं०)—(१) बीजवाले आलू में निकला हुआ अंकुर (पट०-४, भाग०- १, चंपा०)। दे०—आँखि। (२) ऊख का अंकुर (मं० ज०, शाहा०, गया, चम्पा०, भाग०-१)। पर्या०—आँखिल (द० मं०), अँखुआ (पट०), कनसी (द० मुं०), गोंफी (द० भाग)। (३) ऊख के डंठे का आँख-जैसा वह स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (गया, प०, द० मुं० भाग०-१) पर्या०—अँखिया (उ० मं०), अँखुवा (द० प० शाहा०), अँखुआ (पट०, पू० मं०), अँखियाव (द० भाग०)। (४) बाँस की गाँठ पर आँख-जैसा स्थान, जहाँ से अंकुर निकलता है (बिहा०, शाह०)। [अक्षि (संस्कृ०), अखिन (प्रा०), आख]

आँखा—(स०)—दे०—आखा।

आँखिगुरा—(सं०) चोर-चमार का एक तरीका। इसमें जितने आदमियों में सामान बँटना होता है, उतने हिस्से लगाकर हर आदमी के लिए अलग-अलग नाम सूचक वस्तुएँ मान ली जाती हैं। कोई लड़का अलग खड़ा रहता है। उसीको वे सूचक दिये जाते हैं, जो एक-एक सूचक एक-एक हिस्से में रख देता है। जिसका सूचक जिस हिस्से में रखा जाता है, उसका वही हिस्सा हो जाता है (द०मुं०)। [अक्षि + कूट(बंद', कूट > कुट > गुट > गुरा। आंख + गुड़ (छिपा हुआ, गुड़ > गुड़ > गुरा]

आँखि—(सं०)—(१) बीजवाले आलू में निकला अंकुर। पर्या०—आँख (पट०-४, भाग०- १)। (२) दे०—आँख—१। [अक्षि]

आँजुर—(सं०) अनाज के बँटवारे में किसान द्वारा प्रतिकूल एक या दो सेर लिया जानेवाला अंश (शाहा०)। पर्या०—मुड़िया (पट०-४)। दे०—अँजुरी। [अंजलि]

आँजुरी—(सं०) अन्न बोने के समय किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला एक निश्चित (अंजलि-भर) अन्न-परिमाण (गया)। दे०—अँजुरी। [अंजलि]

आँट—(सं०)—(१) अँटाव (चंपा०-१)। (२) दोबारे का किनारा (चंपा- १, भाग०- १)। [आँटी (हि०)—हि० श० सा०, मिला०—आउट्ट (प्रा०) < आ + √वृत]

आँटा-(सं०) जौ, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण। पर्या०—आटा, पिसान, कनिक, चिकस (पू० मं०), चिकसा (द० भाग०, भाग०-१)। [अट्ट = 'अट्ट'...चतुष्कलयोः'—(अर्म०), 'अट्ट भक्ष च' (वैदि०), अट्ट > आटा]

आँटी—(सं०) धान आदि काटने और ढोने की मजदूरी, जो प्रति बोझा एक आँटी के हिसाब से दी जाती है (दर०- १, भाग०- १, समस्त)। [आँट + ई—(हि०)-अँटना; (बंध ?— हि० श० सा०) [मिला०—ताड़ (संस्कृ०); ताडन्तु ताडने घोषे मुष्टि भेद तृणादिषु (मेदि०, अर्म०)]

आँटी, अँटिया—(सं०)-(१) तैयार होने पर रोपने के लिए उखाड़े हुए धान, मडुआ आदि के बीज के पौधों का पुआ या बंडल (मं० ज०, द०-मुं०, चंपा- १, भाग०)। (२) अनाज निकाल लेने के बाद पुआल का पूला (बंडल) (मं० द०, शा०, भाग०-१)। दे०—पूला। (३) अँटिया या कड़ी से बढ़ी दोनों भुजाओं के अंदर भरकर लानेवाली फसल की राशि (द०-प०-शाहा०)। दे०—तौजा। (आँट + ई, इया (हि०—अँटना); ताड (संस्कृ०), मुष्टिभेदतृणादिषु (मेदि०— अर्म०)]

आँठिल—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं। दे०—अँटुली। [आठिल —मिला०— अमवठा चाष्ठलोष्ठवान्—(वैदि०)]

आँठी—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (गया, द०-प० शाहा०)। दे०—अँटुली। (२) आम या किसी दूसरे फल की गुठली (चंपा०-१, भाग०-१)। (३) मवेशियों का एक प्रकार का रोग। इसमें वह काफी खाँसता है (चंपा०-१, पट०-४)। पर्या०—ढरका (पट०-४)। [अष्ठी, अष्ठिल— मिला०— अमवठा चाष्ठलोष्ठवान्—(वैदि०)]

आँठी के रोटी—(सं०) आम की गुठली को पीसकर बनाई गई रोटी। पर्या०—किलाठी के रोटी (चंपा०), अमौठी के रोटी (गया, द० मुं०), गुम्मा (द० भाग०, भाग०-१)।

आँवा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। पर्या०— हरीफा (भाग०-१)।

आँतर—(सं०) खेत जोतने के समय एक चाह में कुछ हटकर आगे की ओर से जोतने की प्रक्रिया, जिससे बैल आसानी से घूम सकें और खेत की जुताई हो सके (दर०, पूर्णि०-१, पट०-४, भाग०-१, चंपा०, शाह०। पर्या०— हट्टा (उ०-प०, उ०-पू०)। दोसर आँतर धरल (मुहा०)—दूसरी आवृत्ति की जुताई आरंभ करना। [आँतर, अन्तरा]

आँतर, अँतरा—(सं०) धान की लताओं या पंक्तियों के बीच का स्थान (बिहा०, शाह०)। दे०—अँतरा। [अन्तर]

आँचट—(सं०) बिना साफ किया (छाँटा) पीसा हुआ जौ (उ०-पू० बि०, द०-पू० मं०)। दे०— अबरा। [देशी]

आँसु—(सं०)—(१) भदई फसल (दर०-१ पूर्णि०-१)। (२) एक प्रकार का धान। [आशु]

आइल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेंड़ (गया, द० मुं०) दे०— आर। पर्या०—आल (पट०-४)। [दे०-आर]

आउटकेन—(सं) चीनी मिल में दूर से लाये जानेवाले ऊख, जिनकी तौल बाहर ही कर ली जाती है (बि०, रो०, हरि०)। (मिला०— गन्नेकेन)। [आउट + केन (अं०)]

आउन—(सं०) चौकी या अखारी का वह मुँह, जिससे अन्न निकाला जाता है। दे०—नाल। [आनन, अवन]

आक—(सं०) ऊसर भूमि में होनेवाला एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा (दर०-१)। पर्या०—अकवन (पट०-४, चंपा, भाग०-१)। [अर्क]

आकासफल—(सं०) आसमान से गिरनेवाले ओले। पर्या०—बनौरी (द० मुं०-१, पट०-४, चंपा०, भाग०-१) [आकाश + फल]

आखा—(सं०) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा। पर्या०—आँखा, लंगी (चंपा), गोठिया (मं० द०), पट्टा (मं० द०), जोरा, गोन (शाहा०)। [देशी, मिला० अक्ष]

आखिरी पटावन—(सं०) ऊख की तीसरी या अंतिम सिंचाई (पट०, भाग०-१)। पर्या०-तेसर पटावन, तेसर पानी (पट० के समस्त) तेसरो पटावन, तेसरो पानी (द०, भाग०, भाग०-१)। [आखिरी + पटावन]

आगा—(सं०) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (द० भाग०)। पर्या०— अगना (भाग०-१)। दे०—अगेरी। [अग्र, अग्रकाण्ड]

आघी—(सं०) खेत में लिए गये अन्न के बीच पर लिया जानेवाला सूद (प०, द०-पू० मं०, भाग०-१)। पर्या०—अगावन (द०-प० शाहा०), आगा (पट०), कढ़ौर (पट०)। [अर्घ]

आटा—(सं०) जौ, गेहूँ आदि का पीसा हुआ चूर्ण। दे०—आँटा। [अट्ट, (अट्ट... चतुष्कलयोः—अर्म०), (अट्ट भक्षे च-वैदि०)]

आठक—(सं०) गोड़ाई की बँट के अग का गाँठदार अंश (द०-प० शाहा०)। दे०—एका। [देशी (?)]

आढ़ा—(सं०) १६ पैला अन्न का परिमाण, जो प्रायः चार सेर से पाँच सेर तक होता है (भाग०-१)। [आढक]

*आढ़ा—(सं०) दो सेर आठ छटाँक की एक तौल। पर्या०—अढ़ैया (पट०-४, चंपा०)। [आढक, अर्धसेर]

आदी—(सं०) एक प्रकार का तीता कंद, जिसका मसालों और औषधियों में उपयोग होता है (द०-पू० मं०, दर०-१)। दे०—अदरख। [आर्द्रक]

आंदी—(सं०)—दे०—अदरख। [आर्द्रक]

आंदीपक—(सं०) एक प्रकार का आर्य पौधा ... दे०—कंद, चोकन्दर। [आर्द्री+पक]

आधंआध—(सं) किसी आसामी का संपत्ति के आधे भाग का अधिकारी (शाहा०, भाग०-१)। दे०—अधिया। [आधे+आध<अर्धार्ध]

आन—(सं०) कोठी या बखारी का वह मुँह, जिससे अन्न निकाला जाता है (भाग० १)। पर्या०—आनरा, आपन, मोहरा (पु० मं०, पट०) मुँह (मं० उ०), मुखा (पट० ४)। [आनन, अन्नायन]

आना—(सं०)—(भाग०)। दे०—आन। [आनन, अन्नायन]

आपत—(सं०) (१) बाढ़, वर्षा आदि के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (पट०, भाग०-१)। दे०—बाहर। (२) कष्ट, विपत्ति। [आफत (अ०), मिला०—आपद् (संस्कृ०)]

आबपाशी—(सं०) सिंचाई (शा०-१)। पर्या०—आपासी (पट०-४)। [आब+पाशी (फा०)]

आबादी—(सं०) खेती या वह भूमि, जिसमें खेती होती है। पर्या०—आबादी (पट०-४, भाग०-१)। [आबाद+ई (फा०)]

आभा—(सं०) फावड़ा—जैसे पतलवाली लकड़ी की बनी चीज, जो खेत में पानी पटाने के काम में आती है (पं० ब०)। दे०—हथा। पर्या०—चाँड़ (का०-१), छिवा (भाग०-१)। [मिला०—आशोभ — आभोशो पत्रबहुव्रल पूर्वोत्संवत्सरेत्रि—(वैदि०) आभि—नाव में से जलादि के निष्कासन के लिए लकड़ी का कुदाल जैसा आकार। "अभि: स्त्री काष्ठकुद्दाल:—(अमर)"]

आभा

आभी—(सं०) कड़ी मिट्टी काटने के लिए नोकदार मजबूत एक प्रकार का फावड़ा (गया) दे०—कोना। पर्या०—अँगेठी (पट०-४)। [आ+भिद्=बलपूर्वक काटना—मिला०—अभ्रि =काष्ठ-कुदाल]

आम—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल (बिहा०)। [आम्र]

आम के बगैचा—(सं०) आम का बागीचा। (भाग०-१)। पर्या०—गाछी (मं०, भाग०-१)। [आम+के+बगैचा<बागीचा (फा०), मिला०—वाटी (संस्कृ०)=वृक्षाणां समूह:—'वाटी पर्ण ... गृहिणं समयं पतम्'—त्रिका०]।

आमदनी—(सं०) आनेवाला धन (भाग०-१)। [आमदनी (फा०)]

आमन—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१, पुर्णि०-१)। [आमन (बँगी०), मिला०—आमान्न, आम्राज्ञ=आम के सदृश धान]

आमापउद्—(सं०) एक प्रकार का धान। इसकी बाल में तीन-तीन धान का एक-एक गुच्छा रहता है। पर्या०—आमाधौर (दर०-१, भाग०-१)। [आमा+पउद् (=आम की तरह गुच्छावाला धान), आमा<आम, पउद्<गुच्छ अथवा गोद<√गुप् 'परिवेष्टने']

आमाधौर—(सं०)—(दर०-१, भाग०-१)। दे०—आमापउद। [आमा+धौर<आमा+पउद<आम्रगुच्छ, आम्रगोप (?)]

आयमा—(सं०) वह जमीन, जिसे सरकार दान कर देती है (शा०-१)। [आयमा (अ०)=वह भूमि जो इनाम या मुआफी में बिना लगान या कम लगान पर दी जाय (हि० श० सा०)]

आर—(सं०)—(१) वह खेत या मैदान, जहाँ गायें चराई जाती हैं (द० भाग०)। दे०—चराई। पर्या०—चरागाह (पट०-४)। (२) खेतों के बीच की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़। पर्या०—आर (चंपा०-१), आरि, आरी, डँडेर (मं० उ०), आइरी, आलंग, धरांड़ (चम्पा०, गया, द०-प०), परेंगा, गँडारी, आइल, आल (गया, द० मुं०), डाँड़ (द०-प० शाहा०)। (३) पानी के किनारे की धीरे धीरे ढाली उठी हुई जमीन (मं०)। दे०—मेंड़। (४) पहली जोती हुई रेखा को काटकर की गई जुताई (चंपा०, द० भाग०)। दे०—आरा। [आर, आरोह, आल, आलि=(पुल), मिला०—√ऋ 'अभिघाते', √अर्द्द—उदयने]

आर—(सं०) मवेशियों को हाँकनेवाली छड़ी के अंत का नुकीला और काँटेदार भाग (द० भाग०)

दे०—अरई। पर्या०—अरउआ (पट०-४, भाग०-१)। [अर, आर, अराय]

आरद्दा—(सं०) तनु, अनाज आदि की तौल पैसे की माप (मुं०-१, भाग०-१)। [आढक (संस्कृ०), आढ़ (हि०)]

आरा—(सं०)—(१) पहले जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई। पर्या०—आर (चंपा०, द० भाग०), सगार (उ०-पू० मं०), सम्हार (भाग०)। (२) सींचने के निमित्त कुएँ नाली का पहला आंतरिक भाग (उ०-पू०)। पर्या०—पैन, पैनि। डौंगर (द० मं०, पट०, गया), नारी, करहा (पट०, गया), भीता (पु० मं०), डौंग (पट०, द०-पू०) (३) गाड़ी के पहिये की पुट्ठी के बीच में जड़ी हुई लकड़ी की मोटी और चौड़ी पट्टी। (४) लोहे का बना, रेतकर लकड़ी चीरने का दाँतीदार हथियार (बिहा०, शाह०)। (५) टेकुआ या सुआ, जिससे चमड़ा सीया जाता है। [अर, आर, आरा, आल, आलि, आलवाल]

आरा—३

आरा—४

आरि—(सं०) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेड़। (बिहा०, शाह०)। दे०—आर। लोको—'आरि जाई त कपार राखी, बीच बसा चराबाहो।' यदि तुम आरि (मेड़) पर जाते हो तो अपने सिर की रक्षा के लिए लाठी रखो, (और तब) तुम बीचा (बगान) के खेत के बीच अपने पशु चराओ। [अर, आर, आल, आलि, आलवाल]

आरिछाँटल—(मुहा०) मेंड़ काटना या छाँटना (मं० भाग०-१)। दे०—गौहट। [आरि+छाँटल (देशी)]

आरी—(सं)—(१) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से कुछ ऊँची उठी रहती है, मेंड़। दे०—आर। पर्या०—आरी (चंपा०-१, भाग०-१) [आर, आलि, आलवाल] (२) लकड़ी चीरने का एक औजार, छोटा आरा। (चंपा०, पट०-४, भाग०-१, शाह०)। [आर+ई<आर]

आरीपास—(सं०) खेत के चारों ओर अर्द्ध-गोल आकार की जुताई (गया, पट०-४) दे०—चौकेठा। [आरी+पास, आर+पास (देशी)]

आरू—(सं) एक प्रकार का प्रसिद्ध गोल कन्द, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (पु० मं०)। दे०—आलू। [आलु, आलू]

आल—(सं०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मेड़। (गया, द० मुं०)। दे०—आर। [आल, आर, आलवाल, आलि]

आलू—(सं०) एक प्रकार का गोल कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (बिहा० शाह०)। पर्या०—आरू (पु० मं०), अलुआ, अलुई (मं० उ०, भाग०-१)। [आलु, आलू]

आलो—(सं०) पूरी फसल के पकने के पहले ही खाने के लिए किसान द्वारा काटा गया अनाज (गया)। [देशी]

आस—(सं०) आश (दर०-१, पुर्णि०-१)। [आश (संस्कृ०)=राश, धूलि]

आसन—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष (दर०-१ पुर्णि०-१)। [आसन]

आसापास—(सं०) जमींदार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी या मालगुजारी के बिना परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, प० मं०)। दे०—सिकहरी [आसा+पास (देशी)]

आसिन—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ और शरद् ऋतु का पहला मास (सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्राय: १५-२५ दिन)। आश्विन की पूर्णिमा को प्राय: अश्विनी नक्षत्र हुआ करता है, अत: इस मास का नाम आश्विन पड़ा। ज्योतिष-गणना के अनुसार कभी आश्विन से ही वर्ष का आरंभ किया जाता था, तब यह पहला मास था। [आश्विन<आश्विनी<अश्व+इन् (सं०)]

आहुर—(सं०)—(१) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली, जलप्रवाह से युक्त, ऊँची समतल भूमि (मं० उ०, उ०-प०, भाग०-१)। दे०—डँडेरी। (२) दो पहाड़ों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेड़ (द० मुं०, भाग०-१)। दे०—बाँध [आहुर, आधार]।

आही—(सं०) चौर (ताल) के किनारे की सीढ़ी-जैसी गहरी जमीन। [देशी]

आहुत—(सं०) भूसा या पुआल से बड़ी फसल की राशि (पु० मै०, भाग०-१)। दे०—अँवाँसा। [देशी]

ई

ईंकड़ी—(सं०) अनाज में पाया जानेवाला छोटा-छोटा कंकड़। दे०—अँकड़ी। [मिला०—अंकुर]

ईंकरी—(सं०) दे०—ईंकड़ी।

ईंगुर—(सं०) कूटकर छिलका-रहित किया हुआ जौ। पर्या०—ईंगुरी। [देशी, मिला०—ईंगुर (=रंग), हिंगुल (संस्कृ०)]

ईंगुरी—(सं०)—दे०—ईंगुर। [देशी]।

ईंच—(सं०) एक फुट का बारहवाँ हिस्सा (इति०, रीं०)।

ईंजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (मुं०-१, भाग०-१) [इन्जल = जल-प्रधान भूमि में उगनेवाला एक पौधा—मो० वि० हि०]

ईंजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष। महीने के कृष्णपक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती है और रात उजेली होती जाती है। (पट० १) दे०—इजोरिया। [इन्दुज्योतिष्, ज्योतिष्, ज्योतिर्]

ईंदरा—(सं०) ईंट, पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (पट०-४)। दे०—इनारा। [इन्द्रघाट, अन्धु, इरंधर < इरं = जल+धर=धारण करनेवाला, कुआँ]।

ईंदारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। दे०—इनारा। [अन्धु, इन्द्रघाट, इरंधर]।

इकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक घास, जो टट्टी आदि बाँधने के काम में आती है। (चंपा०-१) पर्या०—ईकर (पट०-४)। (२) अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़। दे०—ईंकड़ी। इक्कट, इत्कट = एक प्रकार का सरकंडा (मो० वि० हि०)।

इकरी—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास। (२) धान की पंक्तियों का अवलंबन (द०-पु०, सा०)। दे०—कोरी। [इक्कट, इत्कट = एक प्रकार का सरकंडा]—(मो० वि० हि०)]

इकर—(सं०) दे०—इकरी।

इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (सा०-१, पट०-४, भा०-१)। [इजाफ़ (अ०)]

इजमाल लगान—(सं०) अनेक भूस्वामियों की सम्मिलित मालगुजारी (सा०-१)। [इजमाल + लगान (फा०)]

इजारा—(सं०) ठेका पर लिया गया ठीका। (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—वरपेशगी ठीका। [इजारा (फा०)]

इजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष (पुर०-१-पूर्णि०, १)। दे०—ईंजोरिया। [इजोरिया < इन्दुज्योतिर्, < ज्योतिर्]

इनर बेल—(सं०) एक लता-विशेष (चंपा०-१, बर०-१, पूर्णि०-१)। [इन्द्रवल्ली]।

इनाम—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों की भूमिकर से मुक्ति (पट०)। दे०—माफी। [इन+आम (अ०)] (२) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—बरीदगी। [इन+आम (अ०)] (३) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या कांस्टेबुलों को या किसी दूसरे बड़े सरकारी अफसर के द्वारा भी ग्राम-प्रवेश करके, शिविर डालने या किसी विशेष अवसर पर माँगा गया या दिया गया पुरस्कार (प-मं०, भाग०-१)। दे०—सलामी। [इन+आम (अ०)]

इनायत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—इनाम, बरीदगी। [इन+आयत (अ०)]।

इनार—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। दे०—इनारा। [मिला०—इन्द्रघाट, इरंधर (= इरा + धर = जलधर), अन्धु, < *इन्द्रागार (—सु० कु० च०)—नेपा०]

इनारा—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (बिहा०, शाह०)। पर्या०—ईंदारा, इनार (चंपा०), ईंदरा (पट०-१, भाग०-१)। [इन्द्रघाट, इरंधर (इरा+धर = जलधर), अन्धु, < *इन्द्रागार (—सु० कु० च०)—नेपा०]।

इंदकमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (बर०-१)। [इन्दुकमल]

इमली—(सं०) एक प्रकार की खट्टी फली, जो लंबी होती है। इसका पेड़ बड़ा होता है, पत्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं, किंतु लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। [अम्लिका, (संस्कृ०), अंबिलिया (प्रा०), इमली (हिं०), इम्लि (मै०), इम्मली (पं०), आमिळी (सि०), आमली (गु०), आँबली (म०) अंबिला (सिंहा०)]

इमली के चाईं—(सं०) इमली की एक गिरह (पट०-१)। [इमली के + चाईं]

इमिरती—(सं०)(१)- एक प्रकार का शाकयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है। पर्या०—रमचरना (गया)। (२) एक प्रकार की मिठाई जो जलेबी के आकार की होती है। [अमृत]

इलाम—(सं०) दे०—इनाम। [इनाम (अ०)]

इलाही गज—(सं०) अकबर के समय की राष्ट्रीय माप जो ३३½ इंच की होती थी। [इलाही + गज (फा०)]

इस्तमरारी—(सं०) निश्चित कर (राजस्व) की शर्त पर भूमि जोतनेवाला असामी। टि०—मौरूसी और इस्तमरारी में भेद करना प्राय: कठिन होता है। इस भेद को न तो जमींदार ही समझता है और न काश्तकार ही। [अ०]

इस्तमरारी बंदोबस्त—(सं०) भूमि के इस्तमरारी बंदोबस्त करने की प्रक्रिया [इस्तमरारी + बन्दोबस्त (फा०)]

ई

ईकड़—(सं०) पान की लता का आधार-स्तम्भ, जो प्रधान कोरों के बीच में खड़-खड़ पड़ते हैं (शाहा०, पट०-४)। दे०—हरई। [इक्कट, इत्कट। दे०—इकड़।]

ईंट—(सं०) साँचे में ढालकर और आग में पकाया हुआ मिट्टी का चतुष्कोण, लंबा, मोटा, मकान बनाने का साधन-विशेष (सं० ह०)। दे०—ईंटा पर्या०—ईंटा (पट०-४, भाग०-१, चंपा०)। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्टक (प्रा०)> इट्टका (प्रा०) >इट्टा >ईंटा, ईंटा >ईंट]।

ईंटा—(सं०) दे०—ईंट। पर्या०—ईंट, ईंटा (सं० ह०), ऐंटा (पट०, गया, द० मुं०)। लोको०—"मन में आम, बगल में ईंटा।"—ऊपर से मीठी बातें और सद्व्यवहार करना, पर भीतर-ही-भीतर आघात पहुँचाने की तैयारी। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्टका (प्रा०) >इट्टका (प्रा०) >इट्टा >ईंटा, ईंटा >ईंट]

ईकर—(सं०)—(पट०-४)। दे०—इकड़ी-१।

ईनार—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—इनारा।

ईस—(सं०)—(१) हल की लंबी लकड़ी, जिसमें जुआ या पालो जुड़ा रहता है। पर्या०—हरीस (पट०-४, द० मुं०-१, भाग०-१)। (२) एक लंबी लकड़ी। [ईषा (संस्कृ०), ईसा (प्रा०)]



ईस

उ

उकटनी—(सं०) बीज बोने के पहले खेत के पुराने पौधों की जड़ या घास आदि को उखाड़ कर बाहर निकाल फेंकने की प्रक्रिया। (चंपा०, पट०-४)। पर्या०—तामना (पट०-४)। [उकटन + ई < *उत्कर्षण]

उकटल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों की दौनी के समय उलट-पलट करना (पट०-४, भाग०-५, मैं०-२)। दे०—कउरल। (वि०) उलट-पलट की हुई वस्तु। [उकट + ल (प्र०) उत् + कृत्, उत् + कृष्]।

उकठल—(क्रि०) पेड़-पौधों का सूखना (शाहा०-१)। (वि०) सूखा हुआ पेड़-पौधा। [उकठ + ल (प्र०) < *उत्काष्ठ, अवकुष्ट]।

उकठा—(सं०)—(१) अधिक वर्षा के कारण मरा हुआ चना या कोई दूसरी फसल (द०-प० शाहा०)। दे०—मराहल। (२) गेहूँ में लगा पाली का रोग, जो अनाज को सुखा देता है (द०)। पर्या०—उकढ़ा, उकरा (भाग०-१), उकसा। [अवकुष्ट *>उक्कट्ठ, उक्कट्ठ (प्रा०)> उकठ, उकट >उकठा, उकठा]

उकठुल—(क्रि०)—(१) किसी पेड़ या पौधा का एक प्रकार के कीड़ा लगने के कारण सूख जाना

(चंपा०-१)। (वि०) (२) कीड़ा लगने से सूखा हुआ पेड़। [उखड़्+आ (वि० प्र०) < *अवखुट्ट]

उखड़ा—(सं०) दे०—उकठा। [अवखुट्ट]

उखन्हल—(क्रि०) बैल के कंधे से जूआ का अलग हो जाना (चंपा०-१, भाग०-१)। [उखन्ह्+ल (क्रि० प्र०)< अवस्कन्ध, अवस्कंद (?)]

उखसा—(सं०) दे०—उकठा। [उत्कर्ष, अपकर्ष]

उखाँव—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (शाहा०)। दे०—सिल्ली। पर्या०—सिल्ली (पट०-४), ढेरी (भाग०-१)। [मिला० उत्कार, उत्कर्ष, उत्+√कृ, अपक्रम< अप+√क्रम्]

उखाम, उखुम—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखी हुई भूसा-मिश्रित अनाज की राशि (द०-पू० मं०)। दे०—सिल्ली। [मिला० उत्कार, उत्कर्ष < उत् + √कृ, अपक्रम < अप + √क्रम्]

उखास—(सं०) बादल का हट जाना (दर०-१, पूर्णि०-१)। [अवकाश, उत्कास=खुला हुआ]

उखुम, उखाम—(सं०)-(द०-पू० मं०)। दे०—उखाम।

उखा—(सं०) लुकवा, लुकाठी, मशाल (मुं०-१, भाग०-१)। [उल्का]

उखापाँती—(सं०) सन के डंठलों की बनी लुकाठी, जिसमें आग लगाकर दिवाली की रात में 'दरिद्रा' को घर से बाहर निकालने का स्वांग किया जाता है। उखापाँती जलाकर लोग यह पद पढ़ते हैं—"उखापाँति धू-धू, लछमी घर, दरिद्रा बाहर।" [उल्का+पंक्ति]

उखड़ल—(क्रि०) (१) किसी गड़ी हुई चीज का उखड़ना। (२) किसी खेत की ऐसी अवस्था हो जाना कि उसमें हल न चल सके। (वि०) (३) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखड़ गई हो। (४) ऐसा खेत, जो पानी या वर्षा के अभाव के कारण कड़ा हो गया हो और पुनः भीगे बिना जोता-कोड़ा न जा सके। पर्या०—उसहल (पट०-४, भाग०-५)। [उत्खात]

उखड़हाल—(सं०) खेत के छोटे टुकड़े, जिनमें हल न लगा हो (द० भाग०, भाग०-१) दे०—पैस। [उत्खात+हल्य]

उखक्का—(सं०) अनाज को मारनेवाली एक छोटी घास, जो कुश-जैसी होती है (प० मं०, भाग०-१)। पर्या०—दुधिया (प० मं०, गया, भाग०-१) बहुआ। [देशी]

उखनाएल—(क्रि०) बोना (दर०-१, पूर्णि०-१) [उखन+आएल (प्र०)< उखन< *उत्खनित (?)]

उखबँधना—(सं०) ऊख के बोझ को बाँधनेवाली रस्सी। (भाग०-१)। दे०—जोरी। [ऊख+बँधना< इक्षुबन्धन]

उखम—(सं०) गर्मी-(दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, भाग०-१)। [ऊष्म]

उखर आएल—(मुहा०) अधिक भार के कारण बैल का लँगड़ाना। (पट०-४)। दे०—भर बाएल। [उखड़+आएल]

उखरा—(सं०) दे०—उखड़ा, उकठा (भाग०-१)। [अवखुट्ट (संस्कृ०), उक्कट्ट (प्रा०) >उखड़, उखड़्, उखड़ा, उखड़्, उखड़ा, उखड़ा]

उखरिमुसरा—(सं०) एक प्रकार का धान (दर०-१)। [उखरि+मुसरा (देशी), मिला०—उलूखल-मूसल]

उखरी—(सं०) लकड़ी का वह गहरा पात्र, जिसमें ढेंकी या मूसल से धान कूटते हैं (द० मुं०, भाग०-१)। दे०—ओखरी। [ऊखल+ई< उलूखल मिला० 'ऊखर' हुर्ष उलूखल मित्र्यामवर्तते—'मल०']

उखरी

उखरौरा—(वि०) ओखल से गिरा हुआ। (सं०) कूटते समय ओखल से छिटककर गिरा हुआ अनाज (मुं०-१, भाग०-१)। [ऊखल+औरा< चाउर]

उखली—(सं०)-(१) दे०—उखरी। (२) लकड़ी का एक गहरा पात्र, जिसमें ईंट कूटकर सुर्खी बनाई जाती है। (द० मुं०, पट०-४)। दे०—ओखरी। [उलूखल]

उखाँव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत (उ० प०बि०)। पर्या०—उखाब। केवारी खेत (भाग०-१)। [ऊख+आँव इक्षु+वप्र, या आँव< ठाँव< ठाँव< स्थान, स्थाम, मिला०—एखुवीन = वह खेत, जिसमें ईख पैदा होती है]

उखाँव, उखारी—(सं०) ऊख रोपने का खेत (च०)। पर्या०—ऊख के खेत, केवारी के खेत (चम्पा०, भाग०-१)।

टि०—ऊख की खेती के लिए बड़ी मेहनत और जानकारी की आवश्यकता होती है, इसलिए कहा जाता है—"तीन पटावन तेरह कोड़न" ऊख के पौधों को तीन बार पटाना और तेरह बार कोड़ना चाहिए। [ऊख+आँव< ठाँव< स्थान, मिला०—एखुवीन]

उखाड़ल—(क्रि०)-(१) किसी गड़ी हुई चीज को जमीन से निकालना (चंपा०-१)। (वि०)-(२) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखाड़ ली गई हो। [उखाड़+ल< उत्खात, मिला०—उखाड़ना (हि० पं०, ब०), उखड़ना (हि० पं०, ब०) उखेलनु (सि०), उखाड़नु (सि०), उखाड़ुँ (गु०), उखाड़ने (मरा०), सं०< *उत्क्षिप्त, उखाड़ (अ० मा०), उक्खडिय (प्रा०) सं०-< *उद+स्फुट (संस्कृ०)-नेपा०]

उखारी, उखाँव—(सं०)-(१)—(च०) दे०—उखाँव। (२) वह खेत, जिसमें ऊख हो (शाहा०)। [ऊख + आरी < इक्षु + केदार]

उखाब—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत। (पट०-४, शाहा०)। दे०—उखाँव। [ऊख+आब< इक्षु+वप्र या आब< ठाँव< ठाँव< स्थान, स्थाम]

उखेड़ा—(सं०)-(१) ऊख का छोटा पौधा, जो उखाड़कर बाहर कर दिया जाता है (पट०-४)। (२) ऊख का छोटा पौधा, जो पानी के बिना सूखने लगता है (भाग०-५, मुं०-१)। लोको०—"धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा"—अर्थ :—धान, पान और ऊख—इन तीनों को पानी बहुत चाहिए। [ऊख+एरा (स्वार्थ० प्र०), ऊख< इक्षु]

उखेंपी—(सं०) किसी चरवाहे का दौर (मुं०-१)। [उत्क्षेप]

उखेरा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—उखेड़ा।

उखेल—(सं०) वर्षा समाप्त होना (मुं० भाग०-१)। मुहा०—उखेल करना—पानी का पड़ना बंद हो जाना। [उखे+ल (प्र०) < अवक्षय (?)]

उखेला—(सं०) खेत से निचली सतह में पानी के रहने पर उसे ऊपर प्रवाहित करके सिंचाई करने की प्रक्रिया (द०-पू०, भाग०-१)। दे०—उबहू के पानी के बाएल। [उत्क्षेपित]

उखैनी—(सं०) खलिहान में फसल की दौनी के समय पुआल तथा डंठल आदि हटाने के काम के लिए बनी हुई एक लग्गी, जिसके अंतिम छोर पर लोहे का काँटा देकर या बाँस की पतली शाखा (कनखी) छोड़कर एक टेढ़ी-पतली नोक बनाई जाती है। (द० भाग०)। दे०—अखैना। [उत्खनन, उत्क्षेपणी, कषापर्द]

उखौता—(सं०) वह धुरी, जिसपर ढेंकी काम करती है (गया)। दे०—अखोता। [उत्खात]

उगरबाह—(सं०) रखवाला (दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—अगोरनिहार, अगोरिया। [उग्र+बाह]

उगरबाहि—(सं०) रखवाली (दर०-१, पूर्णि०-१)। [उग्र + बाह + इ]

उगल—(क्रि०) (१) उगना, पौधों का जमना। (२) सूर्य का उदय होना। (वि०) उगा हुआ। पर्या०—जनमल। [उग्+ल (प्र०) < उग< *उद्ग, उद्गम (संस्कृ०) उगना (हि०)]

उगावल—(क्रि०) उगल क्रि० का प्रे०। उगाना, पौधों का उगाना। [उग+आवल (प्र०)< *उद्ग, उद्गम (संस्कृ०)]

उगाहल—(क्रि०) चंदा आदि की निश्चित रकम को माँगना या इकट्ठा करना, उगाहना (चंपा०-१, पट०-४)। (वि०) उगाही हुई वस्तु। [उगाह+ल< * *अवग्राह, *उद्+ग्रह। < *उद्ग्राहयति, उद्ग्राहनम्—उग्गाहइ (प्रा०), उगाहनु (सि०) उगाहे (कुमा०), उगाहना (हि०) उग्गाहइ (प्रा०), < * उद्ग्रह, उद्गृह्णते (संस्कृ०), < * उद्ग्राहयति, < उद्ग्राह, उद्ग्राहित, < *उद्ग्राहयति—नेपा०]

उघेन—(सं०) किसी बर्तन में बाँधकर कुआँ से पानी खींचनेवाली रस्सी (द०-पू० मं०)। दे०—उबहन। पर्या०—उघैन (भाग०-१)। [उद्वहन]

उचका—(सं०) टूटी दीवार, छप्पर, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द०-पू० मं०)

भाग०-१)। दे०—अखमन। [उच्चक्, औत्कक < √उच् समवाये]।

उचकुन—(सं०)-(१) ओखली से अनाज निकालने के समय ढेंकुली को ऊपर की ओर टिकाये रखने के लिए लकड़ी का एक टुकड़ा (द० भाग०, पट०-४)। (२) किसी प्रकार की वस्तु के सहारे के लिए लगाया लकड़ी आदि का टुकड़ा (भाग०-१)। दे०—टेकनी। [उच+कुन < उच्च+कल्प्य]

उचखी (सं०) ऊँची-नीची जमीन (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—ऊभड़-खाभड़। [उच+खी (प्र०) < उच्चल]

उचवड़—(सं०) छप्पर आदि को ऊँचा रखने के लिए लकड़ी का मोटा आधार स्तंभ (उ०-पू० मं०)। दे०—खंभा। [उच+वड़]

उचास—(सं०) ऊँची जमीन (हजा०, पट०-४ चंपा०, भाग०)। दे०—उपरवार। [उच्चैस्]

उछटनी—(सं०)-(१) हाथ से की गई घास आदि की सफाई (चंपा०, मं०)। दे०—बिछुरनी। (२) कोड़े या कोड़े हुए खेत से घास निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। (३) आलू या शकरकंद के खेत में फसल कोड़ लेने के बाद खेत को कोड़कर, उससे छूटी हुई फसल को निकालने की प्रक्रिया (चंपा०-१)। [देशी]

उछाही—(सं०) धनरोपनी के अन्त में किया जानेवाला सहभोज (पट०)। दे०—ओखली। पर्या०—बनकखाड़ (पट०-४)। [देशी]

उछाहल—(क्रि०)—(१) बोने के दो-तीन दिन पूर्व खेत को जोतकर और हेंगा देकर छोड़ देना (चंपा०-१)। (२) किसी घर को गिरा दे डालने के लिए उखाड़ना (चंपा०-१)। [उछाह + ल (क्रि-प्र०) < उत्साद < उत्+√सद्]।

उछिटल—(क्रि०) कोड़े-कोड़े हुए खेत से घास निकालना (चंपा०-१)-पर्या०—छामल (पट०-४) [उछिट + ल (प्र०) < *उत्+छिद्, मिला०—*छिद्—नेपा०]

उजड़—(सं०) ध्वस्त या बर्बाद गाँव। दे०—दमका पर्या०—उजड़ल (पट०-४, भाग०-१)। [उजड़ना (हि०), मिला०—उद्+√जृ (=वयोहानौ) > उज्जल, उज्जड़]।

उजड़ल—(वि०)-(पट०-४, भाग०-१)। दे०—उजड़। (क्रि०) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना। [उजड़+ल (प्र०) < उज्जड़ < उद्+√जृ (=वयोहानौ)। तुल०—< *उज्जटयति मिला०—जटा (संस्कृ०), उजगेड़ें (का०)—नेपा०]

उजड़ा—(सं०) (१) ध्वस्त गाँव। दे०—दमका। (२) वह खेत, जिसकी फसल नष्ट हो गई है। (३) छुट्टा पशु। [उजड़ना (हि०), मिला०—उद्+√जृ (=वयोहानौ) > उज्जड़, उज्जड़]

उजबुज—(सं०) पानी में डूबते समय की वह अवस्था, जब डूबनेवाला पानी के ऊपर और भीतर आता-जाता है। (चंपा०-१, पट०-४) [उद्विज]

उजबुजाइल—(क्रि०) पानी में डूबने या किसी चीज से मुँह ढँक जाने से सहसा श्वासावरोध के कारण व्याकुल हो जाना (चंपा०-१)। (वि०) उद्विग्न। पर्या०—उजबुजाएल (पट०-४)। [उजबुज+आइल (प्र०) < उद्विज < उद्+√विज]

उजबुजाएल—(क्रि०, वि०)-(पट०-४)। दे०—उजबुजाइल।

उजरका—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद (द० मुं०, भाग०-१)। दे०—सेती। (वि०) कोई वस्तु, जो उजली हो। [उज्ज्वलक]।

उजरकी—(सं०) तीन प्रकार की होनेवाली उजले रंग की मकई (भा०-१)। (वि०) उजली वस्तु। [उजरक+ई < उज्ज्वलक]

उजरकी बहुरगा—(सं०) उजले रंग का मवेश (पट०-१)। [उजरकी+बहुरगा < उज्ज्वलक +बहुरागक]

उजर दीन—(सं०) वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद आनेवाली ऋतु (चंपा०-१) [उज्ज्वल + ऋतु]।

उजरल—(सं०)—(१) उजड़ा हुआ गाँव, छुट्टा पशु, फसल विहीन खेत। दे०—दमका। (क्रि०) (२) उजड़ना, फसल आदि का नष्ट होना।

[उजड़+ल (क्रि० प्र०) उद्+√जृ "वयोहानौ"। < *उज्जट < उद्+जटा (संस्कृ०)—नेपा०]

उजरा—(सं०)-(१) वह पशु, जो किसी देखभाल के बिना चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—अरेरिया। (२) बिना चरवाहे का ढोर (द० मुं०)। (३) दूसरे की फसल चरनेवाला पशु (पू०-१)। (वि०) [उजड़ा+आ < उद्सृज्]

उजराघास—(सं०) एक घास विशेष, जो उजला और लंबा होता है। (पट०-१) [उजरा+घास < उज्ज्वलक + घास]

उजागर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है, (पाय० सं० प्र०)। पर्या०—आगर (हा०, उ०-पू० मं०)। [उ+जागर < उज्जागर = अच्छा जमने वाला, उगा उठने वाला]

उजाड़—(सं०) (१) उजड़ा हुआ गाँव। (२) उजड़ा हुआ स्थान। दे०—दमका। (३) छुट्टा पशु, फसल-विहीन खेत। [उजड़ना (हि०) उद्+√जृ (=वयोहानौ) > उज्जड़, उज्जड़]

उजारल—(क्रि०) किसी पौधे को उखाड़ना, उजाड़ना, क्रिया की प्रे० क्रि०। (चंपा०-१, भाग-१)। (वि०)-उजाड़ा हुआ पौधा। [उजार+ल (क्रि० प्र०) उद्+√जृ (=वयोहानौ) > उज्जड़, उज्जड़। < *उज्जटयति, मिला०—जटा (संस्कृ०)=मूल, उजगेड़्नु (का०), उजाड़वो (कुमा०), उजाड़िव (बल०), उजाड़िया (औ०), उजाड़ना (हि०, पं०), उजाड़वा (म०), उजाड़्नु (नें०), उजाड़नु (सि०), उजाड़ड़ँ (गु०)]

उजाह—(सं०) आषाढ़ में प्रथम-प्रथम काफी वर्षा होने पर मछलियों का सामूहिक रूप से बाहर निकलना (चंपा०-१)। [उ+जाह < *उद्याज < उद्+√यज् = बाहर निकलना]

उजिया—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० मुं०)। दे०—अरेरिया। [उज्झित]

उझकुन—(सं०) किसी बर्तन के नीचे, उसकी सतह को बराबर करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी आदि का टुकड़ा (चंपा०-१)। पर्या०—उचकुन (भाग०-१)। [उझ+कुन < उच्चकल्प्य]

उझखन—(सं०)-(१) माघ-फाल्गुन महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोड़नी (कोड़ाई) (मधु०, म०)। दे०—अँधेरी कोरन। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के पौधों से घास आदि को दूर करनेवाली सफाई (मधु०, शाहा०)। [देशी]

उझिलल—(क्रि०) किसी बर्तन से अनाज आदि का बाहर निकालना। (वि०) वह अन्न, जो किसी बर्तन से नीचे रख दिया गया हो (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उझिल+ल (प्र०), उज्झकस्य (हि० श० सा०), < *उद्झिप < उद्+√क्षिप् (फेंकना), उद्धरणं < उद्+हृ]

उटकनी—(सं०) (१) पिटाए कूटते समय अनाज में उसे उलट-पलट करने की लकड़ी (पट०-४)। पर्या०—ओहला (पट०-४, चंपा०-१), ओकरा (भाग०-१)। (२) ढोरसी की घास उलट-पलट करने की लकड़ी (द० मुं०, पट०-५)। [उटकन+ई। मिला०—√उठ "उपपाते = ठोकर देना, उटकना]

उटकनी

उटकल—(क्रि०) दे०—उकटल। (वि०) उटकी हुई वस्तु।

उटरा—(सं०) (१) मटर, चना, जौ, गेहूँ या कोई अन्य दो या तीन मिले हुए अनाज, जो एक ही साथ बोये गये हों (पट०)। पर्या०—उटेरा (पट०-४), उटेर (शाहा०)। (२) बैलगाड़ी के आगे पहिए के नीचे लगी हुई एक मजबूत खूँटी, जिससे वह जमीन पर न गिरने पाती है। [देशी]

उटेर—(सं०)-(१) दे० उटरा। (२) जौ-गेहूँ के साथ एक-दो करके बोया जानेवाला मटर या चना (शाहा०)। मुहा०—उटेर बोअल—उटेर का बोना। उटेर उखाड़ल—उटेर का उखाड़ना। उटेर कबाड़ल—उटेर का उखाड़ना।

उटेरा—(सं०) दे०—उटरा (पट०-४, भाग०-१)।

उट्ठा—(सं०) बिना चपाऊ मजदूरी लिए

कामकरने वाला हलवाहा (पू० मैं०, द० मुं०, भाग०-१)। [उठल < उद् + √स्था]

उठली—(सं०) वह ज़मीन, जो कभी परती नहीं रहती (चंपा०)। दे०—अवार। मिला०—परती या पड़ती। [उठली, उठल्ल (हिं०) < उद् + √स्था]

उठल—(क्रि०)—(१) उठना, खड़ा होना। (२) मादा पशुओं का मैथुनेच्छुक होना। पर्या०—बरदिआएल, मैंआएल। (वि०)—उठी हुई, मैथुनेच्छुक, [उठ+ल (प्र०) < उठ < *उत्थ < उद् + √स्था, उठनु (नें०) < * उत्थति, मिला०—उत्तिष्ठति (संस्कृ०), उत्थति (पा०), उत्थेदि (प्रा०)]

उठाएल—(क्रि०)—(१) पौधों की जड़ों में से जमीन का उठाना या समझ करना। (२) किसी वस्तु का उठाना। पर्या०—काढ़ल (उ०-प० द०-प० मैं०), पोछल (उ०-प० मैं०)। [उठा+ एल (क्रि० प्र०, प्रे०), उठाना (हिं०) < * उत्था < उद् + √स्था। उठाउनु (नें०) < * उत्थाप्य, मिला०—उत्थापयति (संस्कृ०), उत्थापेति (पा०), उत्थावेदि (प्रा०), उठुनी (कुमा०), उठान (पं०), उठवुन (कौ०), उठाना (हिं०), उठाउणा (पं०), उठाव्‌वु (गु०), उठुविद्‌ (मरा०)—नेपा०]

उठान हारल—(सं०) किसी मवेशी की वह अवस्था, जब कमजोर होने से उससे उठा-बैठा नहीं जाता (चंपा०-१)। पर्या०—उठौना हारल (भाग०-१)। [उठान + हारल]

उठानी—(सं०) अनुपयोगी, दुर्बल गाय या बैल (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—टुराह। [उत्थापनीय = स्वयं उठने में असमर्थ, उठने योग्य]

उठारा—(स०)-(१) धान के रोपने का अंत होना (मुं०-१)। (२) किसी नये (आरंभ) हुए काम का अंत होना (मुं०-१)। [उठल, उठलहा]

उठौना—(सं०)—प्रतिदिन निश्चित दर पर नियमित रूप से दूध या किसी वस्तु को देने का काम या ढंग (मुं०-१, भाग०-१)। [देशी]

उठौना हारल—सं० (भाग०-१) दे०—उठान हारल। [उठौना + हारल]

उठौनिहार-(वि०)-(१) पौधों की जड़ों पर इकट्ठी हुई जमीन को उठानेवाला पुरुष। (२) किसी वस्तु को उठानेवाला पुरुष। पर्या०—उठौनिहारिन (स्त्री०)। [उठौनि + हार (प्र०)]

उठौनिहारिन—(वि०) "उठौनिहार" का स्त्री० दे०—उठौनिहार। [उठौनि + हारिन]

उड़ल—(क्रि०) उड़ना। (वि०)-उड़ी हुई वस्तु।

उड़ाअल—(क्रि०) उड़ल क्रिया का प्रे०। उड़ाना, चिड़ियों या खेतों से भगाना। [उड़ाव + अल, उड् + आअल (प्र०) < *उड्डय < उड्डापयति (संस्कृ०), उड्डावेइ (प्रा०), उड़ाना (हिं०), उड़ाउनु (नें०), उड़ान (पं०), उड़ौना (प०)]

उड़ाहल—(क्रि०)-(१) किसी नये बर्तन को काम में लाना (चंपा-१, सा०-१, पट०-४, भाग०-१)। (२) कुएँ की सफाई के लिए उसके कीचड़, पानी आदि को निकाल डालना (पट०-४, शाहा०-१, सर्वत्र)। [उद्घाटन (?)]

उढ़कल—(क्रि०) किसी वस्तु का नीचे की ओर लुढ़कना। (वि० लुढ़की हुई वस्तु। [उढ़क + अ (प्र०) < उढ़क, उच्छ < *अवकर्त < अव + √कृत्]

उढ़काअल—(क्रि०) उढ़कल क्रिया का प्रे० क्रि०। किसी वस्तु को ऊपर की ओर से नीचे की ओर लुढ़काना। उकसाना (वि०) लुढ़काई हुई वस्तु। [उढ़क + आअल (प्र०) < उत्कर्त < उद् + √कृत्, अवकर्त < अव + √कृत्]

उढ़काहु—(सं०) वह ढालू स्थान, जहाँ से किसी चीज के गिर जाने का भय रहता है (चंपा०-१, भाग०-१)। [उढ़क + आहु < अव + कृष्]

उतरल—(क्रि०) उतरना, ऊपर से नीचे आना। [उतर + अल (प्र०) < *अवतर < अव + √तॄ]

उतरा—(सं०) उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद नक्षत्र; किंतु विशेषतः उतरा से उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र ही लिया जाता है। यह निम्नांकित कहावत से प्रमाणित होता है—

> उतरा में जनि रोपहु भैया।
> तीन धान होए तेरहु पैया॥

—हे भाई, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में धान मत रोपो, क्योंकि रोपोगे तो तीन धान मिलेंगे और तेरह खखड़ी मिलेगी।

उतराखाड़—(सं०) इक्कीसवाँ नक्षत्र, उत्तराषाढ़, यह पूस महीने में पड़ता है। [उत्तराषाढ़]

उतरा फगुनी—(सं०) बारहवाँ नक्षत्र, उत्तर फाल्गुनी, यह प्रायः भादो के शुक्लपक्ष में पड़ता है। [उतरा + फगुनी < *उत्तर + फाल्गुनी]

उतान-(वि०) उत्तान, उलटना। उतान होअल (मुहा०)-उलट जाना, चित हो जाना। [उत्तान]

उतारल—(क्रि०) उतरल क्रि० का प्रे०। उतारना, गाड़ी का जुआ या हल का पालो बैल के कंधे से उतारना। [उतार + अल (प्र०) < *उत्तार < उद् + √तॄ (संस्कृ०) उतारना (हिं०), उतारनु (नें०), उतारना (पं०), उतारवुं (गु०), उतारणें (मरा०)]

उबीर—(सं०)—(१) मटर का हरा और कोमल झीमीदार पौधा, जो खेत से उखाड़ लिया जाता है (बाल० १)। (२) मवेशियों के खाने के लिए रखी हुई या निकाली हुई फसल या घास (शाहा०-१)। (३) कमजोर पौधा, जो खेत से निकाल दिया जाता है। [उ+बेर < *अवकीर्ण, अवकर]

उतर भाद्रपद—(सं०) छब्बीसवाँ नक्षत्र, उत्तर भाद्रपद, यह फाल्गुन कृष्ण में पड़ता है। [उत्तर + भाद्रपद]

उथर—(वि०) छिछला (पट०-४, भाग०-१) दे०—उथल। [उ + थर < *उत्स्थल, उत्थल]

उथल—(वि०) कम गहरा, छिछला (चंपा०-१)। पर्या०—उथर (पट०-४, भाग०-१)। [उत्थल < *उत्स्थल, उत्थल]

उदंगल—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (पट०)। दे०—अनेरिया। पर्या०—उदाम (भाग०-१)। [< *उदर्गल = बंधन से निकला हुआ]

उदंत—(सं०) वह मवेशी, जिसके दूध के दाँत अभी नहीं टूटे हों (पट०-४, चंपा०-१, भाग०)। पर्या०—अदंत (मुं०, भाग०-१)।

> "उदंत बरदे अदन्त बिसाये,
> आप जाय या सपने जाय।"—घाघ।

यदि मवेशी अदंत ही खरीदा (बाछिन हो) और जनमा दे, तो वह या तो स्वयं मरे या स्वामी का नाश करे।

[उ + दन्त < *अ + दन्त]

उदह के पानी से जाएल—(मुहा०) खेत की सतह से नीचे पानी रहने पर उसे ऊपर मचा-

हित कर सिंचाई करना। उस प्रकार की सिंचाई की प्रक्रिया (पट०-४, सा०-१) पर्या०—उलौंथा (द०-पू०)। [उदह < *उद्वह]

उदाम—(सं०) वह पशु, जो बिना किसी देख-भाल के ही चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (भाग०-१)। दे०—अनेरिया। [< *उद्दाम < उद् + दाम = बंधन रहित]

उदाह—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध वृक्ष का बीज। (२) उस बीज की माला (पट०-४)। [रुद्राक्ष]

उधार—(सं०) वह रकम, जो चुका देने के वादे पर ली गई हो (पट०-४, चंपा०-१, भाग०-१)। [उद् + हार = उद्धार* > उधार]

उपेरल—(क्रि०) किसी कंद आदि को हाथ से खोदना (चंपा०-१)। (वि०)—हाथ से खोदी हुई वस्तु। [उपे+रल (क्रि० प्र० < उद् + √हृ]

उनहा चिरचिरी—(सं०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम आती है (पू० मैं०, गया, पट०-४, भाग०-१)। [उनहा < उगहा < *उद्गूढ़। चिरचिरी (= अपामार्ग)]

उनमल—(क्रि०) गिर जाना (अनाज का पौधा का—गिरना) (चंपा०)। [उनम + ल (क्रि० प्र०) < *उन्नम < उद् + √नम् = झुकना]

उनाहल-(वि०) लकड़ी की वस्तुओं या कुदाल, हल-जैसी चीजों का किसी कारण टेढ़ा-मेढ़ा होना या उभर आना। [< *उन्नद्ध, उन्नह]

उनवाहा—(सं०) खेत जोतने के समय किसी आदमी के एवज में किसी दूसरे आदमी का काम करना (सा०-१)। [< *अन्यवाह < अनु + अा + √वह् + अ (= प्र०)]

उनाह—(सं०)-(१) धान की खेती में धान बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई करने और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हलकी-सी जुताई (उ०-पू०, उ०-पू० मैं०, भाग०-१)। पर्या०—राजर (उ०-पू०मैं०), समाह (पट०), बिराह (गया), बिदाह (प०, पट०, गया), बिदहनी (चंपा०, द०-पू०)। उनाहना, उनाहीन, उनाहुना (दर०-१, भाग०-१)। [उन + आह < उन + वाह < अनु (पीछे) + वाह] (२) किसी रोग से मुक्त होने के लिए 'साफ देना

(चंपा०-१)। (३) बीज छींट देने के दो-तीन दिनों के बाद खेत में हल जोतना (चंपा०-१)। [उत्स्नात्, उद्गाह, मिला० उत्साह]

उनाहना—(सं०)—(हर०-१)। दे०—उनाह।

उनाहीन—(सं०) बीज बोने के बाद भी मिट्टी गीली रहने पर उसे बाड़े-बाड़े (सोमार) जोत-कर और हेंगा देकर खेत को बराबर कर देना (हर०, कृषि०-१)। दे०—उनाह। [अनुनहन]

उपचावेंडी—(सं०) दूसरे द्वारा निश्चित की हुई रकम से अधिक देकर बीज प्राप्त करने की चेष्टा (चंपा०-१)। [उपक्रमविधि, उपक्रमवृद्धि]

उपछल—(क्रि०) हाथ या किसी चीज से पानी बाहर फेंकना (मुं-१, भाग०-१, चंपा, पट०-४), (वि०) उपछा हुआ (सं०); पानी उपछने की प्रक्रिया। पर्या०—उबछल, उबिछल। [उपछल < उप्पेच्छल (प्रा०) < *उत्प्रोच्छण]

उपजा—(सं०) फसल, पैदावार (हर०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उत्पाद]

उपटल—(क्रि०) (१) पानी का उमड़ना या मेड़ या बाँध से बाहर आ जाना (मुं-१, पट०-४, भाग०-१) (२ किसी हथियार की बेंट का ढीला होकर निकल जाना (चंपा०)। (३) बाढ़ या वर्षा के कारण पानी का घेरे से बाहर निकल कर बहने लगना (चंपा०-१, भाग०-१)। [उपट+ल (क्रि० प्र०) < *उत्पतन, उत्पतन]

उपटौंड—(वि०) वह ठोकी हुई चीज, जो ढीली होकर निकल जाती है (चंपा०-१)। [उपट+औंड < *उत्पतमान]

उपटा—(सं०) नहर या पैन आदि का मुँह खोल-कर जमीन की सतह से ऊँची जगह पर जल-प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण की जानेवाली की खेत बारामाहिक सिंचाई (द० भाग०, पट०-४)। दे०—अपटा। [उपटा < उपट < *उत्पट, उत्पत]

उपटावल—(क्रि०) उपटल क्रि० का प्रे०। उपटाना। [उपट+आवल (प्र०) < *उत्पट, उत्पत]

उपरपाटी—(सं०) हल और हरीस के जोड़ में लगाया जानेवाला ऊपर का दूसरा पच्चड़ (द० भाग०, भाग०-१ दे० पौली। पर्या०—पाटा (पट०-४) पाटा (द० चंपा०)। [उपर+पाटी < उपरि+पट्ट]

उपरवार—(सं०) ऊँची जमीन (पट०, उ०-मुं०, भाग०-१)। पर्या०—बहुरमूल (द० मुं०), उपरार (पू० मुं०); बिहरीस (पट०), डाँड़ (गया, द० मुं०, चंपा०), डीह (शाहा०), डीह (द० भाग०, भाग०-१), उपावास (हजा०), डीपर (हजा०), भिट्ठा (भाग०-१) उपराहुत, उपराहुत (चंपा०)। [उपर+वार (प्र० = वाला) < वत् (संस्कृ० प्र०), < *उपरिवत्]

उपरावेंडी—(सं०) प्रतिस्पर्धा (चंपा०-१)। दे०—उपचावेंडी। [उपरा+वेंडी < *उपरिवृद्धि]

उपरार—(सं०)-(पू० मुं०)। दे०—उपरवार। [उपर+आर < उपरवार]

उपराहुत—(सं०) दे०—उपराहुत, उपरवार।

उपरौंछल—(क्रि०) बाढ़ आदि के पानी का, किनारे को पार कर ऊपर से निकलना (शाहा०-१)। [उपरौंछ+ल (प्र०) < उपर+औंछ < उंछ, *उदंच = बाहर निकालना]

उपलाइल—(क्रि०) किसी हलकी चीज का पानी के ऊपर की सतह पर बहना। (वि०) उपलाया हुआ (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—उपलापल (पट०-४)। [उपल+आइल (प्र०) < *उप+√प्लु = तैरना, ऊपर उछलाना]

उपलापल—(क्रि०)-(पट०-४)। दे०—उपलाइल।

उपाइल—(क्रि०) धान या किसी फसल को जड़-समेत खींचकर उखाड़ लेना (हर०-१, कृषि०-१)। [उपाड़ + ल (क्रि० प्र०) < *उत्पाट < उत्+√पाट]

उबंगिया—(सं०) किसी तरह की मजदूरी लेकर काम करनेवाला खेतिहर मजदूर (गया, चंपा०)। दे०—बन। [देशी]

उबछल—(क्रि०)-(शा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल।

उबहन—(सं०) किसी बर्तन में बाँधकर पानी निकालनेवाली रस्सी (पट०-४, चंपा०-१, शा०-१)। पर्या०—उबहनी, उबहैन (द० भाग०), उघेल (उ०-पू० मुं०), उभैन (भाग०-१)। [< *उद्वहन]

उबहनि—(सं०) खाता में जमा हुआ पानी निकालने का रस्सा (चंपा०, उ०-पू० मुं०, पट०-४)। दे०—बरहा। [< *उद्वहन]

उबहनी—(सं०)। दे०—उबहन। [< *उद्वहन]

उबहैन—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—उबहन।

उबिछल—(क्रि०) हाथ की अंजलि या किसी बरतन आदि से पानी उलीच कर खेत पटाना (चंपा०-१, पट०-४)। दे०—उपछल। [उबिछल < उपछल < उप्पोच्छल (प्रा०) < *उत्प्रोच्छण (संस्कृ०)]

उबेर—(सं०)—(१) वह खेत या मैदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (शाहा०)। दे०—चराई। [< *उदवृत < उद्+√वृ (?)] (२) वर्षा बंद हो जाना (हर०, चंपा०-१)। [< *उद्वार, < *उद्वेल (?)], (३) फसल काटने के बाद से खेत, जहाँ गाएँ आदि चरती हैं। [उद्वृत]

उबेरा—(सं०) वह खेत या मैदान, जहाँ गाएँ चराई जाती हैं (द० मुं०)। दे०—चराई। [< *उदवृत < उद्+√वृ]

उभर-खाभर—(सं०) ऊँची-नीची जमीन (उ०-प०, द०-पू० मुं०, भाग०-१)। पर्या०—अदहा (उ०-प० मुं०), डाभर (चंपा०, उ०-पू०मुं०), ऊबर-खाबर (पट०, गया, द० मुं०, शा०), ऊँचखाल (पट०, चंपा, प०), ऊभर-खाबड़ (शाहा०), उभसी (द० भाग०)। [उद्भव+खात, उपरि+खात अथवा उभर का अनु०]

उभैन—(सं०) कुएँ से पानी निकालने की डोरी (मुं०-१, भाग०-१)। दे०—उबहन। पर्या०—उबहन (पट०-४)। [< *उद्वहन]

उमकल—(क्रि०) किसी वस्तु का उमंग में आकर उछलना-कूदना। उत्तेजित होना। जोश में आना (मुं०-१, चंपा, पट०-४)। [< *उद्+√मंक = चलना > उन्मंकन, उमकल (सं०) < *उकन, < *उत्क्रमयति (?)। मिला० क्राम्यति, उत्क्रामति (संस्कृ०), उक्कामति (पा०), उक्कमई (प्रा०)—नेपा०]

उमी—(सं०) होरहा बनाने के लिए मटर की काटी हुई हरी बाल (प०, मैं०)। पर्या०—ऊमी, उनी (चंपा०)। टि०—जौ और गेहूँ की बाल को आग में भूनकर भी उमी बनाई जाती है (शाहा०)। [< *उन्मुक (संस्कृ०), उम्मुक (प्रा०) मि० —उम्मलियम (प्रा०) = दग्ध, जला हुआ]

उरकुस्सी—(सं०)-(१) एक परजीवी घास, जो पोस्ते आदि फसल को हानि पहुँचाती है (द०-पू० मि०)। पर्या०—सिकौनिया, सिखनिया, भरभाँड़ (द० प० शाहा०), ठोकरा (शाहा०, चंपा०)। (२) एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियों के लगने पर जोरों से खुजलाहट होती है (मुं०-१, चंपा०, मैं०, भाग०-१)। मुहा०—उरकुस्सी लगल = व्याकुल होना, स्थिर न रहना। [कमाछ (हि०), अलाकुशी, आलकुशी (बं०), < *अलिपक (संस्कृ०)]

उरदी—(सं०) एक प्रकार का कलहन, जो स्लेटी रंग का, छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी दाल पकने पर चिकनी होती है। दे०—उरिद। [ऋद (?), उड़िद (देशी)—उड़िदो माष-धान्यम्—दे० ना० मा०]

उरिद—(सं०) दे०—उरदी। पर्या०—कलाई, कराई, कलाय (भाग०-१), माश कराई (पू० मुं०), उरीद (हर०-१, कृषि०-१, भाग०-१)। [< *ऋद्ध, (?), उड़िद (देशी) उड़िदो माषधान्यम्—दे० ना० मा०। माष (संस्कृ०), मास (पा०, प्रा०), माह (प०), उड़द, उड़िद (हि०), माषकलाय (बं०), उड़िद (मरा०), उड़द, अड़द (गु०), उड़िदु, उद्दु (सिं०)]

उलटल—(क्रि०) उलटना, गाड़ी आदि का उलट जाना। [उलट+ल (प्र०) < *उल्लट, √उल्लट्यते। उल्टाउन (कश्मी०), ओलतिन (आस०), उलटा (बं०), उलिटया (ओ०), उलटना (हि०), उलटनु (गु०), उलटणा (पं०), उलटणें (मरा०) उलट्यु (गु०)—नेपा०]

उलटावल—(क्रि०)—उलटल क्रि० का प्रे०। उलटाना।

उलटा सरसों—(सं०) वह सरसों, जिसकी फली ऊपर की ओर उठी न होकर नीचे की ओर झुकी होती है (प्रायः सर्वत्र)। [उलटी+सरसों < *उल्लट+सर्षप]

उलबक्का—(सं०) गाड़ी को पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए लकड़ी या बाँस की बनाई

हुई भूसी (बिहा०, शाह०)। दे०—एड़ा। [उलाड़, उलड़ना (हि०), < √ओल्लटि 'उत्पे-पयो = ऊपर उठाना, फेंकना, ओलपलटना, उलटपलट। < *उल्लाटयति, *उल्लाटति—नेपा०]

उलरवा

उसवा—(वि०) उबला या भूना हुआ अनाज।

उसवा दाल—(सं०) उबाली (धान पर भूनकर बनाई हुई) दाल। दे०—दाल। पर्या०—उसावल दाल (पट०-४, भाग०-१)। [उसवा+दाल, उसवा < √उस = उबालना अथवा आग पर थोड़ा भूनना]

उसहल—(क्रि०)-(१) दे०—उसाहल २, ४। (२) धूप या सूखी हवा लगने से कच्ची लकड़ी का सूख कर टेढ़ा हो जाना। (पट०-४, भाग०-५) दे०—उमहल। [उसह+ल (प्र०) < उसह < *उत्सह (?) < उद् + √सह]

उसार—(सं०) पीछे भार पड़ने के कारण गाड़ी का पीछे की ओर झुक जाना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१, शाह०)। मुहा०—उसार होअल = उसार होना। [< *उत्सरण < *ओसरण < ओसरति (उत्सर्पण) या < *उत्सार, उत्सारयति, उत्सरति (संस्कृ०)—नेपा०]

उसावल—(क्रि०) किसी अनाज को हल्के-हल्के भूनना (चंपा०-१, मुँ०-१, पट-४, भाग०-१)। (वि०) उसाया हुआ अनाज। [उसाव+ल, उस + आवल (प्र०) < √उस = भूनना, गर्म करना]

उसावल दाल—(सं०) दे०—उसवा दाल। [उसाव+ल (वि० प्र०) < √उस = भूनना]

उसकावल—(क्रि०)—(१) धान आदि को उबालते समय, किसी लकड़ी से चलाना। (२) पिउरा कूटते समय ओखल में लकड़ी या बाँस के छोटे डंडे से उसे चलाना। (३) दीपक की बत्ती को आगे की ओर उसकाना (चंपा-१, मुँ०-१, भाग०-१) [< *उत्कषण ∠ *उत्कर्ष]

उसटल—(क्रि०) फसल का उठ जाना या काट ली जाना (मुँ०-१)। [उसट+ल (प्र०) ∠ *उत्सद ∠ उद्+√सद]

उसटाकल—(क्रि०) फसल को उठा लेना या उखाड़ना (मुँ०-१)। [उसट + आकल (प्र०) ∠ *उत्सद ∠ उद् + √सद]

उसठ—(सं०) (१) कमजोर मिट्टी (सं० द०, पट०-४, चंपा, भाग०-१)। दे०—हलुक। (२) किसी रसीली चीज का रस चूस जाना (चंपा०)। [∠ *उत्सृष्ट]

उसनल—(क्रि०) धान या किसी अनाज को उबालना (मुँ०-१, भाग०-१, चंपा०)। (वि०) —उबाला हुआ, उसना हुआ धान आदि। [∠ *उष्ण ∠ *उत्स्वेद। ∠ *उद् श्रीष्णाति, मिला० —श्रीष्णाति (संस्कृ०), उसनना (हि०), उसिन्नु (बं०)—नेपा०]

उसना, उसिना—(सं०)-(१) धान उबालकर तैयार किया हुआ चावल (मुँ०-१, चंपा०, भाग०-१)। दे०—चाउर। (२) अरहर, मूँग, चना आदि को उबालकर बनाया गया खाद्य पदार्थ (हर०-१, पूर्णि०-१)। [∠ *उष्ण, ∠ *उत्स्विन्न ∠ उद् श्रा]

उसनापैरी—(सं०) धान उसनने का काम (मुँ०-१, भाग०-१)। [उसना + पैरी ∠ पर्यंत]

उसरल (क्रि०) किसी काम का जल्दी-जल्दी पूरा होना (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-१)। [उसर + ल (क्रि०प्र०) ∠ *उत्सर]

उसिनल—(क्रि०) पानी में धान आदि डालकर, आग पर रखकर उबालना (चंपा०-१, पट०-४)। (वि०), उबाला हुआ। [उसिन + ल, उष्ण, उत्स्विन्न]

उसिना—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—उसना।

उसर—(सं०) वह भूमि, जिसमें रेह अधिक हो और जो खेती के योग्य न हो (पट०-४, चंपा०, भाग०-१)। दे०—ऊसर। [ऊसर]

ऊ

ऊँट—(सं) एक प्रसिद्ध चतुष्पाद पशु, जो लंबी और ऊँची गर्दनवाला होता है तथा रेगिस्तान में बहुतायत से पाया जाता है। कहीं-कहीं इनसे हल चलाने का काम भी लिया जाता है। पर्या०—शुतुर (मु० प्र०)। [उष्ट्र (संस्कृ०), उट्ठ (प्रा०)]

ऊँटा—(सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से खुजली की चिकित्सा के लिए तेल बनाया जाता है (द० मुँ०, भाग०-१)। [उष्ट्रकण्टक]

ऊँख—(सं०)—दे०—ऊख।

ऊख, ऊखि—(सं०) एक प्रकार का डंडाकार पौधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती हैं। पर्या०—केतारी (सं०, पट०, गया, द०-पू० बिहा०), कुशियार (उ०-पू० सं०)। [< *इक्षु (संस्कृ०), इक्खु (प्रा०), आख, इख, कुशिआर (बं०), ऊंख, ऊस (मरा०), ऊस, शेरडी (गु०), कबुपुल्लु, कबु (क०), चिरकु (तै०), इक्कु (ता०), सौंठो, सौंठा सेलड़ी (मरा०), गन्ना, गंडा (पं०), करम्ब (प्रा०), नय शुक्र (फा०), कसबुस्सुकर (अ०), ईख, ऊख (हि०)। [केतारी < कान्तार, कुशियार ∠ कोशकार]

ऊख नम्बर २४—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह हल्के लाल रंग का पतला ऊख है। यह बैसी नीची जमीन में, जहाँ पानी जमा होता है, रोपा जाता और अधिक परिमाण में उपजता है (बिहा०, पी०)। [ऊख+नम्बर+२४ ∠ ऊख (हि०) + नंबर (अं०)+ २४ (संख्या)]

टि०—ऊख के साथ दिये गये नंबर भारत की विभिन्न ऊख-अनुसंधानशालाओं के वैज्ञानिक शोध के विभिन्न प्रयोगों पर आधारित हैं।

ऊख नम्बर ३१२—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद, जो हल्के रंग का होता है। इसकी उपज अच्छी होती है, इसका छिलका पतला होता है। यह ऊख नरम और रस से भरा होता है। इसका गुड़ साफ होता है। चीनी की मात्रा भी अधिक होती है। आजकल बीमारी लगने के कारण इसकी खेती बहुत कम हो गई है (बिहा०, पी०, हरि०)। [ऊख + नम्बर + ३१२ ∠ ऊख (हि०) + नंबर (अं०) + ३१२ (संख्या)]

ऊख नम्बर ३२१—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह लाल रंग का और मोटा होता है। यह नरम और रसीला होता है। इसका गुड़ अच्छा नहीं होता। कुछ वर्ष पूर्व इसकी खेती खूब होती थी। इसमें बीमारी लग जाने के कारण इसकी खेती अब कम हो गई है (मिला०—लाल मोढ़ी, लाल गेंडा) (बिहा०, पी० हरि०)। [ऊख (हि) + नम्बर ∠ नंबर (अं) + ३२१ (संख्या)]

ऊख नम्बर ४१६—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह काफी मोटा और वजनदार होता है। इसकी उपज अच्छी होती है। (बिहा०, पी०)। [ऊख (हि) + नम्बर < नंबर (अं०) + ४१६ (संख्या)]

ऊख नम्बर ४५३—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद, जो काफी मोटा और लंबा होता है। पर्या०—समसेर (पी०), हकदहवा, कबीहवा (भोज०), कतहवा (मग०)। [ऊख(हि) + नम्बर < नंबर (अं०) + ४५३ (संख्या)]

ऊखर-खाबड़—(सं०)—(शाहा०) दे०—ऊबड़-खाबड़। [ऊखर + खाबड़, ऊखर < उखाड़ ∠ उखाड़ना (हि०) < *उत्कर्षति ∠ *उत्खनन, खाबड़ < खर्पर ?)]

ऊखि—(सं०)—(पं०, भोज०, शाह०)। दे०—ऊख।

ऊना डेढ़ी जोत—(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई (चंपा०)। दे०—ऊना ड्योढ़ी जोत। [ऊना + डेढ़ी + जोत—(भो०)]

ऊना ड्योढ़ी जोत—(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई (सा०, पट०)। पर्या०—ऊना डेढ़ी जोत (चंपा०)। [ऊना + ड्योढ़ी + जोत—(भो०)]

ऊना फानी—(सं०) खेत की चौड़ाई की ओर से जुताई (पट०)। दे०—फानी। [ऊना + फानी—(भो०)]

ऊमी—(सं०)—(चंपा०)। दे०—उम्मी, ऊमी। [मिला०—उमी]

ऊपराहुत—(सं०) ऊपर की ओर वाली जमीन। ऊँची जमीन (चंपा०-१)। दे०—ऊपरवार। [ऊपर+आहुत ∠ उपरि + आहूत (?)]

ऊबड़-खाबड़—(सं०)—(पट०-४, भाग०-१)। (दे०—ऊबर-खाबर)। [ऊबड़ + खाबड़, ऊबड़ ∠ उत्कर्ष (?) खाबड़ (अनु०) या ∠ खर्पर]

ऊमि—(सं०) गहूँ के कच्चे दाने, जिन्हें पीसकर और छान कर बड़ी बनाई जाती है या जो भून कर खाये जाते हैं (चंपा०-१)। [मिला०—उमी]

ऊमी, ऊम्मी—(सं०) होरहा बनाने के लिए गहूँ

की काटी हुई हरी घास (प० मैं०, चंपा०-१)। दे०—उम्मी। पर्या०—ऊसी (चंपा०)। [मिला०—उम्मी]

ऊम्मी, ऊमी—(सं०) दे०—उम्मी, उमी।

ऊलुस—(सं०) खाने के बाद नौकर के लिए छोड़ दिया गया जूठन। दे०—जेवाला। [देशी]

ऊसर—(सं०) (भाग०-१, चंपा०,प्राय: सर्वत्र)। दे०—ऊसर। पर्या०—ऊसर, रेहाड़, रेहार (पू० मैं०), रेहड़ा (पट०, गया, द० मुं०)। [ऊषर]

ए

एँकरी—(सं०) बिना साफ किया हुआ चावल। (पट०-४)। दे०—अकरी। [एँकर + ई ∠ ऐंकर ∠ अँकर ∠ अकर ∠ अक्षतत्र ∠ *अक्षुतक]

एँड़ियाबल (क्रि०)-(१) एँड़ी से मारना (मुं०-१ चंपा०, भाग०-१)। २-ऐंड़ी से रौंदना(मुं०-१, भाग०-१। [एँड़+इया+बावल (क्रि० प्र०) ∠ एँड़ ∠ *एड्डुक]

एँसौं—(सं०) वर्तमान साल, चालू वर्ष (चंपा०-१, भाग०-१)। [∠ *एष्यसन्]

एक चास—(सं०) जमीन की पहली बार हुई जुताई (पट०-४, भाग०-१, चंपा०, प्राय: सर्वत्र)। [एक + चास (देशी)]

एकजाई करना—(मुहा०) एक से अधिक भूमिखंड (होल्डिंग) को इकट्ठा करना या बतलाना (शा०-१)। [एक जाति* 7 एक जाई]

एकठउरी—(सं०) अनेक चीजों का एक साथ का मिश्रण (चंपा०-१, भाग०-१)। [एक+ठउरी ∠ ठौर ∠ स्थली (?)]

एकठा—(सं०)-(१)—हेंगे का चौरस लंबा काष्ठ-फलक (शाहा०)। दे०—पल्ला। (२) छोटी नाव (चंपा०)। (३) वह हेंगा, जिसमें दो बैल जोते जाते हैं (चंपा०)। [एक+ काठ ∠ काष्ठ]

एकठा

एकठौरी—(सं०) दे०—एक ठउरी।

एकड़—(सं०) भूमि की नाप, जो एक बिगहा बारह कट्ठे के लगभग होती है। लेकिन इसकी निश्चित नाप ४८४० वर्गगज है। (सा०-१, पट०-४)। [एकड़ (अं०)]

एक तौल—(सं०) पूरे (आठ) दाँत हो जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल (प्राय: सर्वत्र)। दे०—तौल। [एक+तौल]

एक फसिला—(सं०) वह जमीन, जिसमें साल में एक ही बार फसल पैदा होती है (पट०-४, भाग०-१)। पर्या०—एकफसिली, एक-सलिया (चंपा०)। [एक+फसिला (का०)]

एकफसिली—(सं०) दे०—एकफसिला। [एक+ फसिली (का०)]

एकलग्गा—(सं०) वह मुँहजोर व्यक्ति या मवेशी, जो किसी बात पर ध्यान न दे और जिधर मुड़े उधर ही रहे (चंपा०-१, मुं०-२, पट०-४, भाग०-१)। [एक+लग्गा ∠ *वर्गी, ∠ *मार्ग]

एकवन—(सं०) आक (अकवन) नामक पौधा-विशेष (शाहा०-१)। [अर्क]

एकवाँह—(सं०) खेत की पहली बार की जुताई। दे०—एकचास। [एक+बाँह ∠ वाह, वाहु (?)]

एक रउनी—(सं०) किसी खेत की एक बार की निकौनी (चंपा०-१)। पर्या०—निकौनी (पट०-४)। [एक+रउनी (देशी)]

एकरी—(सं०) बिना साफ किया हुआ चावल (पट०-४) दे०—अकरी। [एकरी ∠ अकरी ∠ *अक्षुतक]

एकवाई—(सं०) (१) नाली की वह लीक, जो एक तरफ अधिक गहरी हो और दूसरी ओर अधिक ऊँची हो (चंपा०-१, भाग०-१)। (२) पानी पटाने के लिए आर (मेंड़) के पास बनी नाली (शा०-१)। [मिला०—एकवलि]

एकसलिया—(सं०)—(चंपा०)। दे०—एक-फसिला। [एक+सलिया ∠ साल (फा०)]

एक साल के तौल—(सं०) पूरे (आठ) दाँत हो जाने के बाद एक वर्ष का पूर्ण वयस्क बैल। दे०—तौल। [एक+साल+के+तौल (दे०)]

एकसिंघा—(वि०) एक सींगवाला बैल, भैंसा आदि (भाग०-१) पर्या०—सिंगटुट्टा (पट०-४, भाग०-१), एकसिंहा। [एक+सिंघा ∠ एक+शृंगक]

एकसिंहा—(वि०) दे०—एकसिंघा।

एकहन—(सं०) वह अन्न, जिसमें दूसरा अन्न नहीं मिला हो (शाहा०-१)। [एक+हन ∠ एक+अन्न का < *एकान्न]

एकहरा—(सं०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बैल जोते जाते हैं (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—हेंगी। पर्या०—दुबरधिया (चंपा०)। [एक+ हरा (प्र०) ∠ हास् (संस्कृ० प्र०)]

एकहुला के माल—(सं०) किसी खलिहान का एकमात्र पशु (चंपा १)। [एक+अहुला+के +माल—(वैल)]

एकैस—(सं०) इक्कीस की संख्या। [एक+ ऐस ∠ *एक विंशति]

एकैसिया—(सं०)—(१) फसल के २१ बोझों की एक राशि (शाहा०)। (२) फसल को काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझों पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (शाहा०, गया, मुं०, भाग०-१)। दे०—एकैसी। [एकैस+ इया ∠ *एकविंशतिक]

एकैसी—(सं०)—(१) बोझों से बनी फसल की एक राशि, (२१ बोझों = एक एकैसी)—(पट०, गया, द० मुं०)। (२) फसल को काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझों पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (पट०, गया, द० मुं०, भाग०-१)। पर्या०—एकैसिया (शाहा०)। [एकैस+ई ∠ *एक विंशतिक]

एखरा खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होने-वाला गाँव का खर्च (पट०)। दे०—गाई खरच।

एगदाई—(सं०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बैल (द० भाग०, पट०-४)। दे०—पाट। [∠ *युगदमिन् ∠ *एकदमिन्]

एगाँव—(सं०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन, लाठा आदि से पानी उठाया जाता है। दे०—ओगर। (२) जब करीन, लाठा आदि से पानी चलाने में कई उठान (ऊँचाई) पड़ते हों और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक पानी पहुँचाया जाता हो तो उस दशा में पहला उठान या जलाशय (सं० द०)। दे०—थेथका। पर्या०—एधावा (पट०), एघाव (द० भाग०), एघाई (भाग०-१), दोपाँव = दूसरा उठान; दोपावा (पट०), दोपाइ (भाग०-१)। तेपाव = तीसरा उठान; तेपावा (पट०)। तेपाई (भाग०-१) चौपाँव = चौथा उठान; चौपावा (पट०)। [ए+पाँव ∠ एक+ स्थाम (?)]

एघाइ—(सं० (भाग०-१)। दे०—एगाँव।

एघाव—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—थेथका। [एक+स्थाम (?)]

एधावा—(सं०)—(पट०)। दे०—थेथका। [एक+स्थाम]

एड़ा—(सं०)—(१) गड़ासी की बेंट के अंत का गोलदार भाग (सं० उ०)। पर्या०—हूर (उ०-पू० मैं०, चंपा०), ठेकवा (द०-प० मैं०, शाहा०), चाबुक (द०-प० शाहा०), मूठ, मुठिया (द०-पू० बिहा०, भाग०-१)। (२) दे०—हूरा। (३) गाड़ी को पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। पर्या०—उलरूआ, सिपपाइ, खलरूआ (पट०)। [< *एड्डुक(?)]

एड़ा

एढ़ुली—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींट कर (बाबग) बोया जाता है (गया)। [(देशी), मिला०-एलक, एलक = काले वर्ण का हरण, संभ०—एलक सदृश होने से नाम पड़ा हो।]

एमारत सेस—(सं०) किसान से मकान बनाने के लिए लिया जाने वाला एक प्रकार का कर (शा०-१)। [इमारत+सेस]

ऐ

ऐंजा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर०-१)। [देशी]

ऐन—(सं०)—(१) रुपये के बदले अन्नादि के रूप में चुकाया जानेवाला भूमि-कर। दे०—भाउ। (२) कौल के मुताबिक जमीन की फसल का हिस्सा (मुं०-१)। (३) मालकी या ठीके की जमीन का मालिकाना हिस्सा (मुं०-१, भाग०-१)। [अन्न, अयन]

ऐमाल—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१, पूर्णि०-१)। [मिला०—अम्ल]।

ओ

ओटन—(सं०) दे०—ओटन। [< *आवर्त्त (संस्कृ०), आवट्ट (प्रा०)]

ओइलल—(क्रि०)—(१) किसी अन्न की डंठी से उसके पत्ते आदि को अलग करना (चंपा०-२, पट०-४, भाग०-१)। (२) किसी ओले-कोड़े खेत से घास-फूस निकालना (चंपा०-१, भ०म०-१)। [मिला०—अव+√लुञ्च, अव+√लुप्=उखाड़ना, अलग करना]।

ओखर—(सं०)—(१) (उ०-पू० मैं०, पट०-४, भाग०)। दे०—ओखरी। (२)—(उ०-पू० मैं०, उ०-पू०)। ओखरी। [उलूखल]

ओखरा—(सं०)—(द०-प० शाहा०)। दे०—ओखरी। [ओखल+आ(प्र०)< *उलूखल]

ओखरी—(सं०)—(१) लकड़ी या पत्थर का बना गहरा बर्तन, जिसमें मूसल से धान, तंबाकू आदि कूटे जाते हैं। (भाग०-१)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मैं०, शाहा०), ओखरा (द०-प० शाहा०), ओखली (गया), कुरइन (पट०), धनकुट्टी (भा०)। [ओखल+ई (प्र०) < *उलूखल] (२) लकड़ी का वह गहरा बर्तन, जिसमें मूसल या ढेंकी से धान कूटते हैं (म० उ०)। पर्या०—ओखर (उ०-पू० मैं०, द० प०), ओखरी, मुंरी (द० भाग०, भाग०-१), उखरी (द० मुं०), कूँड़ी (द०-प० शाहा०), गुड़िया (शाहा०), मुंड ओखरी (गया), मुड़की (पट०), मुंडी (पट०-१)। [*उलूखल]

ओछी कानी—(सं०) वह दाँतोंवाला बैल (मुं०-१, भाग०-१)। [ओछी + कानी < *तुच्छ + स्कन्ध (?)]

ओछी-कान्ही—(सं०) वह बैल, जिसके दूध के सब दाँत टूट गये हों और स्थायी अभी तक जमा न हो (सा०-१)। दे०—ओछी कानी। [ओछी +कान्ही < *तुच्छ + स्कन्ध (?)]

ओट—(सं०)—(१) किसी चीज के नीचे किसी वस्तु को लगा देना ताकि वह गिरे या लुढ़के नहीं (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४, शाहा०)। (२) किसी वस्तु की आड़। [ओट∠उट (संस्कृ०, = तृण (हि० श० सा०), मिला०—उटज = घर]

ओट करल—(मुहा०) आड़ करना, छिपाना, किसी वस्तु से घेरना।

ओटनी—(सं०) वह वस्तु, जिससे बीज रूई से अलग किया जाता है। पर्या०—ओटाई (सा०), औटाई (द० भाग०, चंपा०-१)। [< *आवर्त्तनी]।

ओटल—(क्रि०)—(१) कपास को चरखी में दबाकर रूई और बिनौले को अलग करना (चंपा०-१)। (२) अपनी ही बात कहते जाना (चंपा०-१)। [∠ *आवर्त्त]

ओटाई—(सं०)—(सा०)। दे०—ओटनी। [< *आवर्त्त, *आवृत्त]

ओड़हुल—(सं०) लाल रंग का एक प्रसिद्ध फूल, जो देवी देवता पर चढ़ाया जाता है। (शाहा०, चंपा०)। [ओड़+हुल < ओड्+पुष्प, मिला०—ओड्र-पुष्प]

ओड़ा—(सं०) बाँस की कमची या करची का बना बड़ा खुला टोकरा। इसमें विशेषतः ताम का पत्ता देकर बुना जाता है (पट०-४, सम्पन्न)। [ओड़ा < कुंड (?) (संस्कृ०)—हि० श० सा०), मिला०—औंटा = बुना हुआ < आ + उत्, अवट]

ओड़िया—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (द० भाग०, पट०-४)। दे०—छैंटी। (२) बाँस आदि का बना चौरा। डलिया (मुं०-१, भाग०-१)। [मिला०—ओत∠आ+उत = बुना हुआ, अवट = गर्त]

ओड़ी—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़ों को डालने के लिए प्रयुक्त टोकरी (शाहा०, पू० मैं०)। दे०—छैंटी। (२) हल से जोतने पर खींची गई गहरी रेखा, जिसमें रोपने के समय ऊख का बीज डाला जाता है (भाग०-१)। (३) ऊख का उबाला रस (गुड़) रखने का बर्तन। दे०—नदूपी। [∠ *ओत∠आ+उत] (४) एक धान-विशेष, जो जलाहार में किया जाता है (पट०-१)। [मिला०—ओड्रक = ओड्र (उड़ीसा) संबंधी]

ओड़ैया—(सं०)—(१) बाँस की कमची या करची की काफी बारीक बुनी हुई टोकरी, जिसमें

पानी आ सके। (२) चारा खिलाने के लिए प्रयुक्त टोकरी (कहीं-कहीं)। दे०—पथिया। [मिला०—ओतिनीक∠आ+उत+इनीक]।

ओढ़—(क्रि०)—(१) गीला (चंपा०-१)। (सं०)—(२) एकसाथ मंडलाकर उगनेवाले बाँस के पौधों का समूह (चंपा०-१)। [आर्द्र, ओदम्, आवन्ध]

ओदरल—(क्रि०)—(१) किसी सटी हुई चीज का फटकर अलग हो जाना (चंपा०-१, भाग०-१)। (२) खेत की पपड़ी का फटना। [< *अवदर < अव+√दृ = फटना]

ओदार—(सं०) किसी फसल का बोझा बाँधने के लिए पटुए की ऐंठी हुई रस्सी (पू० मैं०)। दे०—कबरा। [देशी]

ओदारल—(क्रि०) ओदरल क्रि० का प्रे०। किसी सटी हुई ऊपरी चीज को फाड़ना या अलग करना (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४)। [*अवदार < अव + √दृ = फाड़ना]

ओदौँदी—(सं०) गीले खेत को जोतकर उसमें बीज बोने पर फसल में लगनेवाला एक रोग-विशेष (शाहा०-१)। [ओद+ औंदी < औदा < आर्द्र, उद + औंदी, औंदी < उन्दू (?)]

ओध—(सं०) बाँस के पौधों का समूह (चंपा०-१), दे०—बाँस के कोठी। [आबन्ध]

ओरहा—(सं०)—(१) पकने के पहले ही काटी हुई गेहूँ की फसल (द०-पू० मैं०, भाग०-१)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज (द०-पू० मैं०, चंपा०, भाग०-१)। दे०—होरहा। [अव + √उष = जलाना, भूनना]

ओरांटीली—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पट०, गया)। [देशी]

ओल—(सं०) जमीन में पैदा होनेवाला एक प्रकार का कंद। इसके भरता, तरकारी आदि बनाये जाते हैं। पर्या०—सूरन (दर०-१, पट०-४, भाग०-१, पट०-१)। [ओल (संस्कृ०), ओल (हि०), ओल् (मं०), ओल् (बं०), ओल (बो०), सूरण (गु०)]

ओसल—(क्रि०)—(१) अन्न को बजाकर उसमें मिले विजातीय अन्न या दूसरी वस्तु को अलग करना। (२) बोये हुए बीज या क्यारी की मिट्टी को घास-फूस निकाल देने के बाद बराबर करना। (दर०-१, चंपा०, पूर्णि०-१, भाग०-१)। [अव + √लल् = चलाना]

ओलहनी—(सं०) रोपनी के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत, जो भगवान के बड़ाई में गाया जाता है और जिसका स्वर धीरे-धीरे नीचे की ओर झुकता है। इसका प्रतिकूलार्थक शब्द 'चढ़नी' है (चंपा०-१)। [उलहा (प्रा०) = झुकना, अव + हरण = < *अवहलन < अव + √हल् (= नीचे जाना, गिरना, झुकना)]

ओलहल—(क्रि०)—(१) किसी चीज का किसी एक तरफ झुक जाना (चंपा०-१, पट०-१)। (२) हल या ट्रैक्टर द्वारा एक तरफ ज्यादा मिट्टी फेंकना (चंपा०-१)। [< *अवहलन < अव+√हल् (= गिरना, चलना)—(संस्कृ०), उलहा (प्रा०) = झुकना, अव+ हरण = एक तरफ रखना, झुकाना]

ओलहे आव—(सं०) हल, गाड़ी आदि में जुते बैलों को घुमाने के समय हाँकनेवाले का संकेत-शब्द। (सा०-१)। [ओलहे + आव]

ओसर—(सं०) पूर्ण वयस्क बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो। पर्या०—कलोर (प०), गौर (उ०-पू० मैं०), फेटाइल (पट०), ओंसरिया (द० भाग०)। [उपसर्या, < *उत्सा (गाय)]

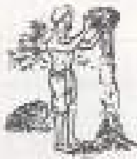
ओसाएल—(क्रि०) ओसाना, वायु के सहारे में अनाज को सूप आदि से ऊपर से नीचे तक पतली रेखा में गिराकर भूसा आदि से अलग करना। पर्या०—ओसावल (चंपा०-१, पट०-४)। [< *अव + √सो (पो) 'अन्तकर्मणि' = समाप्त करना, पूर्ण करना; *अव + √सृ = छितराना, फैलाना; *अव+ √सृ = प्रेरणा देना, नीचे फैलाना, अवसरण]

ओसारा—(सं०) घर के आगे का बरामदा।

ओसावनि—(सं०)। दे०—ओसौनी।

ओसावल—(क्रि०)—(चंपा०-१, पटना०-४) दे०—ओसाएल। (वि०) ओसाया हुआ। [< √अव+√सृ, *अव+√सो]

ओसौनी (सं०)-(१) चीनी के रस को ठंढा करने के लिए प्रयुक्त लकड़ी का कड़ाह। दे०—कठौत। [< *अभिश्रवन = सोमरस रखने का पात्र] (२) धान आदि अन्न ओसाने की प्रक्रिया (बिहा०, शाह०)। पर्या० — ओसावनि (दर०-१, पुर्णि०-१)। [अव + √सृ ∠ अवसवन]।


ओसौनी

औ

औंकर-(सं०)-एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम में आती है (शाहा०, गया)। [देशी-मिला०—अवकर (संस्कृ०) = कूड़ा-करकट]

औंजही-(सं०) धनरोपनी के अंत में किया जानेवाला सहभोज (द० भाग०)। पर्या०—धन-उसरा या बतुसार (गया), गावा-पखार (प० चंपा०), बज्झाड़ी या कलशस्नान (पट०) [देशी]

औटाई-(सं०)-(१) वह वस्तु, जिससे रुई ओटी जाती है। दे०— ओटनी, (२) रुई ओटने की मजदूरी (द० भाग०)। [औटा + ई (प्र०) ∠ आवर्त (संस्कृ०), आवट्ट (प्रा०)]

औगारल-(क्रि०) अथवा गड्ढा करके कुछ बोलना (चंपा०-१)। [< *अवगर्त, < *अवगाढ़ (संस्कृ०), ओगाढ़ (प्रा०) = गंभीर, गहरा]

औझार—(सं०) वर्षा का एक झोंका (चंपा०-१)। पर्या०—अझार (पट०-४, भाग०-१)। [< *अवझार < अव + √झृ + घञ्]

औहार—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—अहार। [मिला०—उद्धार = पुरौथा]

औरंग—(सं०) ज्वार, मकई और ऊख के पौधों का एक रोग, जो पत्तों पर श्वेत चिह्न-जैसा होता है और पौधे के ऊपर का भाग नष्ट कर देता है (चंपा०)। पर्या०—गधरू (पट०, ज०), धमनी (उ०-प० मुं०, चंपा०), गधरू, ठोढ़ियारी (शाहा०), गधस् (सा०)। [अवरंग]

औरा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल जो दवा, मुरब्बा, अँचार आदि के काम में आता है। इसका फल कागजी नींबू की तरह या उससे छोटा और कसैला होता है। पेड़ बबूली लिए तथा पत्तियाँ इमली के पत्तों की तरह, छोटी-छोटी होती हैं। यह फल भारत के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। पर्या०—अँवरा (शाहा०, चंपा०)। [आमलक (संस्कृ०), आमलअ, आँवला, औरा, आमरा (हि०), आमला, आमरो, आमलकी (बं०), आँवले, औंधी, आंवलीकाठी (मरा०), आमला, अंबुल, अंबुली (पं०), आँवला (मार०), आँवला, आमला, आमली (गु०), नेल्लि, नेल्लिक्काय (क०), नेल्लि, नेल्लिकाय (ता०), उसरिकाय, उसरकाय (ते०), अंडा (ओ०), आमलज, आमलज, आमलज, आमलह, आमलाह (फा०), आमलज (अ०), आमला, आमलकी (असा०)]

औलहा—(सं०) मूठ या पूले से बड़ी फसल की राशि (उ०-मुं०, भाग०-१)। दे०—अँजोरा। [देशी]

क

कँइत—(सं०) कपित्थ फल। इसका फल गोल-गोल बेल-सा होता है। पर्या०—कँइती (शा० १)। [कपित्थ (संस्कृ०), कइत्थ (प्रा०), कैथ, कैत, कबीट (हि०), कयेत, कत्बेल (बं०), कवठ, कवट, कंवट, कवीठ (मरा०), कोठ, काठ, कोठु (गु०), बेलल, बेलडा, बलुवल, ब्यालडम्म (क०), एलामिकाया बेलगा चेट्टु, एकोल्ह बल्ला (ते०), कैथ (मार०)]

कँइती—(सं०) एक फल-विशेष। यह श्रीफल की तरह होता है तथा इसके भीतर का भाग खट्टा होता है (शाहा०-१)। दे०—कँइत। [कपित्थ]

कंकड़-(सं०)-(१) चूना मिला हुआ गाँठदार पत्थर का छोटा, गोल और मटमैला टुकड़ा, जिसे पकाकर चूना बनाया जाता है। (२) पत्थर का टुकड़ा, जो सड़क बनाने के काम में आता है। (३) अनाज में मिलनेवाला ककड़। (मुं०-२)। दे०—अँकड़ा। पर्या०—आँकड़, इकड़ी, इँकड़ी (द०-पु० मुं०, ज०), गंगट—(पट०, गया), गंगट (द०-पु०)। (४) विशेष प्रकार से बनाया हुआ एक तम्बाकू, जो भुर-भुरा होता है और चिलम की चिलम पर रखकर पीया जाता है। [कर्कर् = कठिन, दृढ़, पृथ्वी का खण्ड (मो० वि० डि०); 'कर्करी मुकुरे दंडे'—(मने०); 'कर्करी मलाइमेसला-दर्पणी कठिने त्रिषु' (मंखि०)]

कंकड़ी—(सं०)-(१) ईंट-पत्थर का छोटा टुकड़ा (गया, पट०, शाह०)। दे०—अँकड़ी। पर्या०—कँकरी। [कर्कर]

कँकड़ी—(सं०) दे०—ककड़ी।

कंकराही—(सं०) कँकरीली मिट्टी (सा०, पट०, मुं०-२)। पर्या०—कँकड़ैल (सा०, शाहा०) कँकड़ीर (प०)। [कंकर + आही < अस्थि (?)]

कँकरोटिया—(सं०) एक प्रकार की कड़ी मिट्टी, जो जमीन खोदने पर जमीन की ऊपरी सतह के नीचे मिलती है (द० भाग०, पट०-४)। दे०—गँगटियाहा। पर्या०—गँगाहट (पट०-४), कँक-रोटी [कँकर + औटिया < *औट्टी, अस्थि (?)]

कँकरी—(सं०)-(शाहा०, सा०, चंपा०)। दे०—कंकड़ी।

कँकरोटी—(सं०) दे०—कँकरोटिया।

कँगनिया—(सं०) नदी का बड़ा ऊँचा किनारा (उ०-पु० मुं०)। दे०—करारा। [कंकट = सीमा, अवधि; कच्छ = किनारा]

कँचनचूर—(सं०)—(१) मोटा दानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० मुं०, चंपा०)। (२) बासमती चावल का एक भेद (पट०-४)। [कञ्चनचूर्ण]

कंचा—(वि०) दे०—कच्चा।

कंजु—(सं०) एक प्रकार का साग, जिसकी पत्ती कमई की तरह चौड़ी होती है (दर०-१, मुं०-२)। [मिला० —कंज]

कँचोरस—(सं०) ऊख को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (द० भाग०)। दे०—रस। पर्या०—कचरस (पट०-४, चंपा०)। [कँची + रस]।

कंजर—(सं०)—(१) रस्सी बटनेवाली एक विशेष जाति (उ०-प० बिहा०, गया)। पर्या०—कँजड़ा, कंजड़ (चंपा०), चाँईं (प० मुं०), रसबंटा (शाहा०, गया)। (२) एक प्रकार का हरा पक्षी (मुं०-२)। [कंजर (देशी), कालंजर = बुंदेलखंड का एक भाग, उस प्रदेश के रहनेवाले लोग। इनका पेशा रस्सी बँटना और भीख माँगना है]

कँटहवा तार—(सं०) दो-तीन पतले तारों को मिलाकर बनाया गया लोहे का तार, जिसमें दो-एक हाथ की दूरी पर लोहे के ही काँटे बने होते हैं। यह फसल की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर घेरने के काम आता है (बिहा०)। [कँट-हवा + तार (देशी), कँटहवा < काँटा < कंटक]

कंटा—(सं०)-(१) वर्षा या सिंचाई के बाद तेज धूप के कारण कड़ी हो गई खेत की मिट्टी को मुलायम करने के लिए प्रयुक्त कुछ काँटों-जैसी लोहे की कीलों से बना एक तरह का हल (मुं०)। पर्या०—खबोरनी (मुं०) [< *कपट, कपटक < √कपट > कपटति = चलता है, घूमता है। (२) काँटा। ( ) लग्गा, (चंपा०-१)। पर्या०—काँटा (चंपा०, पट०-४, शाहा०)। [कण्टक]

कँठिया—(सं०)-(१) गाय-भैंस के दूहने या घी-तेल आदि रखने के काम में प्रयुक्त लंबी गर्दन वाला मिट्टी का छोटा बर्तन। पर्या०—कठिया (चंपा०), गूँथा (चंपा०), टेहरी (पट०-४), मेठिया (चंपा०, द० भाग०), लबही (चंपा०, मुं०-२)। [मिला०—कठिन, लंबी गर्दनवाला। कंठाल = पात्र, कलक = कमंडलु—'कमंडलुश्च करकः' (शाश्व०)] (२)-(उ० पु०, द० प० मुं०) दे०—कोहा। [मिला०—कंठाल = पात्र]

कंठ—(सं०) दे०—कठी। [∠ कण्ठ]

कंठफोड़—(सं०) वह सुग्गा, जिसके गले में इन्द्र-धनुष-सा रंग निकल आया हो (शाहा०-१)। [कंठ + फोड़ < कंठ + फोड़ < स्फुट]

कंठा—(सं०)—(१) मवेशियों के गले में पहनाई जानेवाली घुंडीदार मोटी रस्सी (बिहा०, शाह०)। (२) स्त्रियों के गले का एक आभूषण। [< *कंठक]

कंठी—(सं०) कुदाल की धार और पासे की जोड़ (पट०, गया)। पर्या०—नहटी (शाहा०), बान, कंठ (द० भाग०), गुन (प० मुं०)। (२) दे०—कंठा। (३) तुलसी या बेल की टहनी की बनी छोटी-सी माला। [< कण्ठ]

कँड़हा—(सं०) जंगल या चरागाह में सूखा हुआ गोबर, जो खाद अथवा जलाने के काम में आता है (प० उ०, मुं०-२)। पर्या०—कड़हा (पू० उ०), छमारा (पट०-४, भाग०-५), कंडा

(गं० प०), डमार (पू० मैं०), बिलुआ गोइठा (च०), बनगोइठा (सामा०; मैं०-२) । [मिला०—करण्ड = मधु का छत्ता, 'करण्डं मधुकोशमपि करण्डेषु दलाढके' (कोश०), 'करण्डं मधुकोशोऽसौ' (अमे०)]

कँड़रा—(सं०)—(१) सूखा हुआ गोबर (प०, शा०) । दे०—डमार । (२) गोइठे की ऐसी राख, जो बिखरी नहीं रहे, बल्कि बँधी और कड़ी रहे । (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) । [करण्ड]

कँड़वानी—(सं०) मूँज पैदा होने का स्थान (उ०-प०, चंपा०-१) । दे०—मुजवानी । पर्या०—कर-वानी (शाहा०)। [कँड़ + वानी < *करण्ड + वन]

कंडा—(सं०)—(उ० भाग०) । दे०—कंदा, अरई । [∠ *कांड, ∠ *कन्द]

कँड़ा—(सं०)—(१) (गं०प०) । दे०—कँड़रा । (२) सूखा हुआ गोबर (शाहा०, पट०) । दे०—डमार । पर्या०—करसा (मैं०-२) । [∠ *कांड, ∠ *करंड] । (३) मूँज का सरपत नामक भाग (शाहा०-१, भाग०-१) । पर्या०—कोंड़ा (चंपा०-१, पट०-४, मैं०-२) । [कंड < *कांड]

कंता-कनेल—(सं०) एक प्रकार का फूल । (अर०-१, पूर्णि०-१) । [कंता + कनेल < कान्त + कर्णिकार]

कंदरी—(सं०)—नदी के किनारे खोदा हुआ कुआँ, जिसमें नदी का पानी छनकर आने से शुद्ध रहता है (पट०, गया) । पर्या०—कान्दर (मग०-५) । [मिला०—कन्दर, कन्दल]

कंदा—(सं०) अरई की जाति का जमीन में बैठने-वाला एक कंद, जिसकी तरकारी होती है(पट०-१ । मिला०—अरई, कंडा । टि०—कंदा दो प्रकार का होता है, एक लंबा और गोल, जिसे मगही कंदा कहते हैं; दूसरा अपेक्षाकृत छोटा और गोल होता है (पट०-४, मैं०-२) । [∠ *कंदक]

कंदौआ—(सं०) एक झाड़ीदार पौधा । इसका फल खट्टा और आकार कसैली की तरह होता है (पट०-१) ।

कंधा—(सं०)-(१) कोल्हू के जाठ (कोल्हम) के ऊपर का कटा हुआ भाग । दे०—कंध । (२) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले जाठ (कोल्हम) के मुँह के ऊपर का कटा हुआ भाग । दे०—कण्डू । [स्कन्ध, कन्ध]

कँवरी—(सं०) गाय-बैल आदि के द्वारा निगले हुए चारे का थोड़ा-थोड़ा अंश फिर मुँह में लाकर चबाने का व्यापार (शाह०-१)। पर्या०—कावरी (शाहा०),कचुरी (द०-प० चंपा०), पागु(मैं०-२) पागुर (मग०-५, चंपा०) [< *कवल]

कंसासुरी—(सं०)वह बैल, जिसका एक सींग नीचे की ओर और दूसरा ऊपर की ओर जाता है (द०-प० शाहा०) । दे०—सरग-पताली । पर्या०—सुरंग-पताली (पट०-४, मग०-५), डेवा (पट०-४) । सरगपताली (मैं०-२, चंपा०) । [कंसासुर (?)]

कंसासुरी

कँसिया—(सं०) वह बैल, जिसका कस-रंग कांसे की तरह हो (पट०-१) । [कँस + इया (प्र०) < कौंस < *कांस्य]

कइन—(सं०) बाँस की गिरह पर का धूलि-जैसा रोएँदार छिलका (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०) । (२) बाँस का पतला छिलका या टहनी (शाहा०, मैं०-२) । [कनी, कर्णिकृत, कंचिका]

कइल—(वि०)—(१, सफेद रंग का मवेशी(चंपा०-१, शाहा०) । पर्या०—कयर । (२) कपिल वर्ण का पशु (पट०-४, मग०-५) । [∠ *कपिल]

कइलाएल—(क्रि०)—(१) फसल की बाल का पुष्ट और चोखा होना (पट०-४, मग०-५) । दे०—कनाएल, हुलसाएल । (२) किसी अन्न के दाने का कुछ-कुछ पकने लगना (चंपा०-१ शाहा०, पट०-४, मग०-५) । [कइल + आएल (क्रि० प्र०) < *कपिल]

कईंता—(सं०)—(चंपा०) । दे०—कईंता ।

कईंता—(सं०) ककड़ी-जैसी एक प्रकार की तरकारी । यह एक हाथ से लेकर तीन हाथ तक लंबी होती है । इसका आकार सर्पाकार होता है (पट०-१, मैं०-२) । पर्या०—कईंत, चिचड़ा (चंपा०) । [देश, चिचिण्ड (सं०) । श्वेतराजि (संस्कृ०) ।

कछनी—(सं०) दे०—कोंट ।

कदर—(सं०) वह स्थान जहाँ गड्ढा खोदकर गोइठा लकड़ी, पुआल आदि डालकर और उसमें आग लगाकर गाँव के लोग जाड़े में आग तापते हैं और गोल-विचार किया करते हैं (शाहा०) । दे०—घूर ।

ककटल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों को दौनी के समय उलट-पुलट करना (चंपा०-१, शाहा०) । पर्या०—उकटल (पट०-४, मग०-५, मैं०-२) । [ककट + ल (प्र०) < *ककट = संयुक्त, सम्मिलित (मो०वि०वि०), < *कच्छाप-क्षिप्य < कच्छ + अवक्षिप्य < अव + √क्षिप् (क्षिपति = फेंकना)]

कवरी—(सं०) दे०—कँवरी ।

कबुली बूँट—(सं०) उजले और बड़े दानोंवाला एक प्रकार का चना (पट०-१) । पर्या०—कबुली बूट (मग०-५, मैं०-२), काबुली बूँट (चंपा०) [काबुल + ई + बूँट < काबुली + बूँट]

ककड़िया—(सं०) आम का एक भेद, जो ककड़ी के समान होता है (दर०-१, मैं०-२) । [मिला०—कर्कोटक, ककड़ी]

ककड़ी—(सं०)-(१) खीरे की जाति का एक लंबा पतला फल, जो कच्चा खाया जाता है । पर्या०—काँकरी, (शाहा०, शा०, पट०-४, मग०-५ समस्त भी), काँकरि (= बड़े आकार की ककड़ी)—(शाहा०), कँकड़ी (पट०-१, शाहा०) । यह फल बहुत लोकप्रिय है । इसके विषय में कहा-वत है—"बिकौरिया रोवाइ हाट, काँकरि देखि हिया फाट" (कोई मनुष्य बिना पैसे के बाजार गया, वहाँ ककड़ी देखकर उसका हृदय फटने लगा ।)। 'एक हाथक काँकरि, नौ हाथक बीया' (एक हाथ की ककड़ी और उसमें नौ हाथ का बीज) । (२) खरबूजे की तरह का एक फल जो पकने पर फूट जाता है और फूटने पर फूट या फूट कहा जाता है । [कर्कटी (संस्कृ०), ककड़ी (प्रा०), काकड़ी (हिं०), काँकुड़, वह काँकुड़ (बँ०), गोकड़ी (ओ०), ककड़ी (पं०), काँकड़ी (मरा०)

ककड़ी

काकड़ी (गु०), काकिरा (सिंह०), क्यारजान (फा०), खियारा कदस (अ०), फकंस (यू०)]

ककना—(सं०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (पट०-४, गया, द०-पू०) । पर्या०—घनसारी (शाहा०, पू० मैं०) [मिला०—ककुभ (?) (संस्कृ०), कंगुनी । मिला०—कौनि (ले०)]

ककोर—(सं०) प्रचलित अंखों का एक अच्छा धान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (उ०-पू० मैं०) । दे०—ककना । पर्या०—ककेर (द० पू० मैं०) । [मिला०—ककोड़ा = ककड़ी की तरह लम्बा होने के कारण संभावित नाम]

ककुड़ी—(सं०) तम्बाकू के पत्ते का एक रोग, जिसमें हरा पत्ता सिकुड़ जाया करता है (दर०-१, चंपा०, मग०-५) । टि०—कद्दू और मिरचे के पत्तों में भी यह रोग कभी-कभी हो जाता है । [∠ *कर्कट = एक प्रकार का रोग । ककड़ (हिं०), कर्कर (संस्कृ०) = सूखी या सेंकी हुई सुरती का मसला चूर्ण, जिसमें पीनेवाला तम्बाकू मिला रहता है (हि० श० सा०)]

ककेर (सं०)—एक प्रकार का अच्छा धान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (द०-पू० मैं०, मैं०-२) । दे०—ककोर ।

कगिया—(सं०) वह बैल, जिसका रंग काग की तरह काला हो (पट०-१, मग०-५) । पर्या०—कगिया (मैं०-२) । [काग + इया (प्र०) < काक < *काक]

कचकुड़ा—(सं०) देश का अधपका रस (मुं०-१, चंपा०) । दे०—कचरस ।

कचटाही—(सं०) वह मिट्टी, जो कुछ भुरभुरी तथा कुछ कड़ी हो (शाहा०-१)। [कच्चा + टाही (देश)]

कचनार—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष, जो मझोले आकार का होता है, कहीं-कहीं लता के जैसा भी होता है । इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर कटी होती हैं । प्रायः भूरा और फूल लाल, पीले और सफेद होते हैं । फूलों और कलियों की तरकारी बनती है । फली चिपटी होती है (दर०-१, पट०-१-४, मग०-५, चंपा०, शाहा०) । [काञ्चनार (संस्कृ०), कोञ्चणार (प्रा०) कानचार (हिं०), कोचन, काँचनार (बँ०), कोसख,

कौंचनी (बरा०), जिल्य (संता०), कौंचली, चमपकाटी (मु०), टकी (गं०), कोंचलि, कोंच-नाल (क०), देवकोंचन, देवकांचनम् (तै०), सेंगपुलुं घरी (म०)]

कचमहुआ—(सं०) एक बीजू आम, जो कच्चा खाने में भी मीठा लगता है। [कच+महुआ< कच्च+मधुक या कच्चा+मधु (=मीठा)]

कचरस—(सं०)—(१) ऊख को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (शाहा०, चंपा०, पट०-४, मग०-५)। दे०—रस। [कच+रस+कच्चा रस]। (२) पानी मिला हुआ ऊख का रस (द० च०)। पर्या०—पनुआँ (द०-च० शाहा०)। (३) ईख का अधपका रस (मुं०-१, चंपा०) पर्या०—कचकुहा। [कच+रस< कच्च+रस (?)]

कचरा—(सं०)—(१) फूट की अधपकी छोटी। पर्या०—ऊसराइल कचरी (शाहा०); कचरी (सामान्य)। (२) फसल के बोझों को बाँधने के लिए पटुए की ऐंठी हुई रस्सी (सं० उ०, पु०)। [कच+रा (प्र०) <कच< कच्चा]

कचरी—(सं०)—(१) कच्चे-हरे चने के पौधे (शाहा०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। (२) कच्चे हरे चने के सुखाये हुए दाने (शाहा०, चंपा०-१)। (३) काल नामक रोग के पौधे की छोटी जड़ (शाहा०, द० मुं०)। दे०—काल। (४) दे०—कचरा। [कच+री (प्र०)< कच, <कच्चा] (५) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (सामा० पु०)। (६) एक प्रकार का गुरम्ही नामक फल, जो बरसात में मकई के खेत में होता है और जिसके पौधे खीरे की तरह फैले हुए होते हैं। (७) चने या खेसारी की दाल को पानी में फुलाकर, फिर सिल पर पीस-कर और तेल या घी में तलकर बनाई हुई बड़ी। कभी-कभी यह केवल प्याज या अन्य चीजों को बेसन में मिलाकर तथा छान कर बनाई जाती है। (पट०-४, मग०-५, चंपा०, रांची)। [कच+री (प्र०) < कच, < कच्चा]

कचला—(क्रि०) कुदाली से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छोप देकर जमीन को कोड़ना (दर०-१) [कच+ ल (प्र०)< कच, < कर्त < कृती (छेदने)]

कचाठी—(सं०) धान का वह पौधा जिसकी बाल पुष्ट न हो पाती और जिसे हरा रहते ही काट-कर पशुओं को खिला दिया जाता है (मुं०-१) पर्या०—गुआर (चंपा०, पट०-४), मरहौना (मग०)। [कच+आठी< *अस्थि (?)]

कचिया—(सं०)—फसल काटने की दाँतेदार हँसिया (द०-पु० बिहा० मुं०-१, दर०-१)। दे०—हँसुआ। [मिला०—कच्छ, कच्च। *कौक्षेयक (संस्कृ०) >कउच्छेअय (प्रा०) >कचिया, कर्तरी (संस्कृ०) >कइती, कचारी (प्रा०)]

कचिया

कचुआ—(सं०) पान की लता के ऊपर की घनी झाड़ी (द० मुं०)। दे०—खरई। [कञ्चुक= भाड़ी, आवरण, वृक्ष-विशेष (बी० बि०हि०)]

कचेलिया—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ लंबी तथा जिस के वक्षस्थल से गुदा-स्थान तक मांस लटका हो तथा वह नील वर्ण का हो (पट०-१)। [कचेल=छवा (प्र०)-(संभवतः' < कच]

कचोहा—(सं०) तम्बाकू का एक रोग (द० भाग०)। [मिला०—कच्छ]

कच्चा—(सं०)—(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (सं० उ०)। दे०—गदरा। (२) ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया हुआ कुआँ। पर्या०—कुआँ, कुइयाँ। (वि०)—कोई वस्तु, जो पकी नहीं हो। [<*कुत्स्य (संस्कृ०) किच्च (प्रा०)—(= जिसके निर्माण का कार्य शेष हो), कुत्सित (<कुत्सा)] टि० - कच्चा शब्द की व्युत्पत्ति अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकी है, संस्कृत-वाङ्मय में इसके लिए 'आम', 'अपक्वधान्य', 'अपक्व' आदि शब्द व्यवहृत हैं। हि०श०सा० में 'कषण' (संस्कृ०) से 'कच्चा' की उत्पत्ति लिखी है और 'मराठी व्युत्पत्ति कोष' में 'कच' (ध्वनि-शब्द) से। कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं, जिनसे व्युत्पत्ति की संभावना हो सकती है। [कुत्स्, कत्, (>कषण), कुरत्, कराल्, कुटाल (कहुलाक), कत्थ् (= कामरूप प्रदेश की बालू), कुत्स्य (संस्कृ०), किच्च (प्रा०), कुत्ता

(=कटा हुआ), कल्य (विकसित होनेवाला) <*कल् (विकसने)]

कच्चाबिगहा—(सं०) जमीन की एक नाप, जो किसी स्थान-विशेष में ही प्रचलित हो, पर दूसरे स्थानों में उससे भिन्न हो। भिन्न-भिन्न स्थानों में 'बिगहे' की नाप में अन्तर पाया जाता है। 'बिगहा' की अव्यवस्थित नाप। पक्का बिगहा ३०२५ वर्गगज या २० कट्ठे का होता है। [कच्चा+बिगहा< *विग्रह (?)]

कच्चाबीघा—(सं०) दे०—कच्चा बिगहा।

कच्चू—(सं०) अरुई की जाति का लंबा-मोटा कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (मग०-५, पट०-४)। दे०—अरुई। पर्या०—अरुआ (चंपा०), कनचू (दर०-१)। [मिला०—कच्चू, कच्ची=एक प्रकार का खाद्य कन्द (बी० बि० हि०)]

कच्छड़—(सं०)—(चंपा०)—दे०—कछाड़-१।

कछाड़—(सं०)—(१) नदी या पोखर का किनारा, कछार। दे०—करारा। (२) इस प्रकार पहनी हुई धोती का लुंगी, जिसके नीचे लटके हुए छोर को ऊपर खोंसकर कमर में कसकर बाँध लिया गया हो। (चंपा०, मग०-५, पट०-४)। पर्या०—कच्छड़ (चंपा०)। [कच्छ* > कछा+ड़, कछड़]

कछाड़ा—(सं०)-(पट०-२)। दे०—करारा। [कच्छ* >कछा+ड़ा]

कछार—(सं०) दे०—कछाड़।

कछुआ-डाबर—(सं०) वह अत्यंत उपजाऊ खेत, जो कछुए की उलटी हुई खोपड़ी की तरह गहरा होता है और जिसमें आसपास के चारों ओर से पानी और सड़ी-गली खाद आदि आकर गिरती है। (दर०, मुज०) [कछुआ+डाबर]

कछुआ-ढाल—(सं०) नदी का वह बहाव, जिसमें जल-प्रवाह के कारण रेतीली जमीन की ऊँचाई और नीचाई में फेर-बदल होते रहने से कहीं थोड़ा और कहीं अधिक जल रहा करता है (मग०-५, मुं०-१, पट०-४)। [कछुआ+ढाल, कछुआ< कच्छपक, ढाल< *धवल (सफेद), (सं० व्यु०), अपभ्रंश]

कछुआ-सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जो तरकारी के काम में आती है (दर०-१)। पर्या०—कछुआ सेम (चंपा०), गैंचिया सेम (पट०-४)। [कच्छु+शिम्बि (?)]

कछुहवा—(सं०) कुआँ खोदने में निकलनेवाली छोटी मिट्टी (पट०, पट०-४, गया)। [*कच्छ]

कजई—(सं०) खाने से रोकने के लिए बैल के मुँह पर बाँधी जानेवाली रस्सी की बनी हुई जाली। (द०-पु० मुं०)। पर्या०—कजुई, मुँहबन्द (मग०-५), जाबा (पट०-४), जाब (चंपा०)। [देशी]

कजरगोट—(सं०) एक प्रकार का काला धान (दर०-१)। पर्या०—कजरगौट, कजरपौर, कजरपौरु (द० भाग०)। [कजरी (हि०), <*कज्जलतुल्य (?)]

कजरगौट—(सं०)-(दर०-१)। दे०—कजरगोट।

कजरपरो—(सं०) छीटकर (बावग करके) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान, जिसकी बाल काले रंग की होती है। (द० भाग०)। [कज्जलतुल्य (?)]

कजरपौर—(सं०) महीन तथा सुगंधित धान का एक भेद, जिसकी बाल काले रंग की होती है (मुं०-१)। पर्या०—कारीबाँक (पट०-४)। [कजरी (हि०), कज्जल तुल्य (?)]

कजरा—(सं०)—(१) बड़ा और बलिष्ठ वह बैल, जिसकी आँखों के चारों ओर का स्थान काला हो। (पट०-१, पट०-४)। कहा०—'बैल लीजे कजरा, दाम दीजे अगरा।'—(घाघ) =कजरा बैल लेने के लिए अग्रिम मूल्य देना चाहिए। [कज+रा (प्र०) <कज्जल <कज्जल< कज्जल] (२) धान, गेहूँ और जौ के पौधों में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब डेढ़ इंच के होने पर काट जाता है (द० मुं०, पट०, गया)। दे०—कजरी। [कज्जल, मिला०—कज्जल=एक प्रकार का पक्षी, कज्जल=मयूर (बी० बि० हि०)]

कजरी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, दर०-१)। [कज्जल] (२) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)। दे०—कजला। [कज्जल, मिला०—कज्जल=एक प्रकार की उलप (कुकुरमुत्ता)-जाति की घास (बी० बि० हि०)] (३) धान, गेहूँ और जौ के पौधों में

लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों को करीब छह इंच के होने पर काट जाता है। पर्या०—कजरा (प० मैं०, पट०, गया, पट०-४), कजला (उ०-पु०-मै०), कजरी (पु०-मै०) [कज्जल, मिला०—कज्जल = एक प्रकार का पक्षी, कज्जल = मत्स्य (मो० वि० वि०)] (४) छील कर (काजल करके) खीरा खानेवाला एक प्रकार का घास (द०-मुं०)। [कज्जल] (५) बरसात में गाया जानेवाला एक प्रकार का मौसमी गीत, कजली।

कजला—(सं०)-(१) (उ०-पु० मै०)। दे०—कजरी। (२) एक पशु-खाद्य घास (चंपा०, उ०-पु०-मै०)। पर्या०—कजरी (शाहा०)। [∠ *कज्जल]

कटुई आलू—(सं०) वह आलू, जो काटकर रोपा जाता है (पट०-१, पट०-४)। [कटुई + आलू, < कटत्व = (काटना)]

कटइला—(सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से तेल निकलता है (पट०-१, पट०-४)। [कटेला < *कंटकिल < कंटक]

कटकसार—(सं०) मोटे धान का एक किस्म (मुं०-१)। [कटकशालि]

कटनियाँ—(सं०)-(प०)। दे०—कटनिहार।

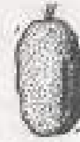
कटनिया—(सं०) अन्न की खड़ी फसल को काटनेवाला मजदूर (द० भाग०, मग०-५)। दे०—कमेहिया। [कटन + इया (बि०-प्र०) < कटन < कर्तन < कृती (छेदने)]

कटनिहार—(सं०) फसल काटनेवाला (सं० उ०, पट०, गया तथा अन्यत्र भी)। पर्या०—दिनिहार (पट०, गया, द०-मुं०), लेवनिहार, कटनियाँ (प०), जन, बनिहार (सारा०)। [कटनि + हार (बि०-प्र०). < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटनी—(सं०)-(१) धान आदि फसल की कटाई (पट०-४, चंपा-१, मुं०-१)। (२) फसल की कटाई का समय। पर्या०—कटिया (उ०-प०), कीनी (द०-प० शाहा०)। [कटनी < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटनीकरल (मुहा०)—(१) धान आदि की कटनी करना। (२) तम्बाकू का पत्ता काटना। दे०—अगर पत्ता तुरना। [कटनी + करल < कर्तन < √कृती (छेदने)]

कटहर—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध फल, कटहल। (२) कटहल का पेड़। पर्या०—कटहल। टि०—कटहल का पेड़ घना होता है। यह बिहार में सर्वत्र पाया जाता है तथा भारतवर्ष के दूसरे भागों में भी मिलता है। इसकी पत्तियाँ तीन-चार अंगुल लंबी, कड़ी, मोटी और श्यामलता लिये हुए हरे रंग की, अंडाकार होती हैं। इसका फल एक-डेढ़ हाथ लंबा और प्रायः इतना ही मोटा होता है। ऊपर का छिलका काफी मोटा होता है


कटहर

तथा ऊपर बहुत-से नुकीले कँगूरे होते हैं। फल के भीतर मोटे-मोटे रेशों की कथरियों के बीच में गुदेदार कोए होते हैं। कोए खाने पर मीठे होते हैं। कोओं के भीतर पतली झिल्लियों से लिपटे हुए बीज होते हैं। इसका फल माघ-फागुन में लगता है तथा जेठ-आषाढ़ में पकता है। कच्चे फल की तरकारी और अचार होते हैं। कटहल नीचे से ऊपर तक फलता है। जड़ और तने में भी फल लगते हैं। इसकी छाल से लसीला दूध निकलता है। पेड़ की लकड़ी नाव तथा चौखट बनाने के काम में आती है। इसकी छाल के बुरादों से पीला रंग निकलता है, जिससे कपड़ा के साधु अपना वस्त्र रँगते हैं। [< *कंटकि फल, पनस (संस्कृ०) फनस (प्रा०), कटहर, कटहल, (हि०, पं०), फणस (मं०), कौंठाल, कौंठाल, (बं०), फणस (मरा०), फनस (गु०)]

कटहरी—(सं०)—(१) एक प्रकार का केला (पट०-१)। (२) छोटा कटहल (शाहा०-१, पट०-४)। [कटहर + ई (= कटहल के समान)]—[कटहर + ई (प्र०) < कट + हल ∠ *कंटकि + फल]

कटहल—(सं०) दे०—कटहर।

कटहुवा—(सं०)-(मग०)। दे०—ऊख नम्बर ४५३। [देशी]

कटही हर—(सं०)-(चंपा०)—दे०—कटही हल।

कटहीहल—(सं०) एक प्रकार का हल, जिसमें लंबी कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकौनी की जाती है (दर०-१)। पर्या०—कटही हर—(चंपा०), बिदह (दर०-१) [कटही + हल, कटही < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृती (छेदने) या कटही < कंटक (= कील)]


कटही हल

कटारी—(सं०) एक थैला, जिसमें बैल पर अन्न ढोनेवाला व्यापारी अपना सामान रखता है (द० भाग०)। पर्या०—ढेंकवाच (द० मुं०), खाल (सा०, चंपा०)। [संभ०—कटारी (?)]

कटिया—(सं०)-(१) (उ०-पू०)। दे०—काटल, कटनी। (२)-(चंपा०)। दे०—कँटिया। [कृति ∠ √कृती (छेदने)]

कटुआ—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका (पट०, गया, भाग०-५, पट०-४)। दे०—भूसा। (२) मँड़ुए के दानों को निकाल लेने पर बची हुई ऊपर की भूसी (उ०-पू० मै०)। दे०—ढोटी। (३) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला अरहर या किसी अन्य दलहन का छिलका अथवा भूसा (पट०)। दे०—भूसा। [< *कुट्टक, √कुट्ट (कूटना, छिलका-रहित करना), छिलका-रहित किया हुआ कुट्टक, कर्तक, कार्तक]

कटुइ—(सं०)-(१) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (द०-प० शाहा०)। दे०—अलकट। (२) गेहूँ के आटे में गुड़ मिलाकर तथा घी में तलकर बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान (मग०-५)। (३) एक प्रकार का आलू, जो काट कर खेतों में रोपा जाता है (मग०-५, अन्यत्र भी)। (४) वह पट्टी, जिसके ऊपर का कलाईवाला अंश काट (निकाल) लिया गया हो (चंपा०)। [< *कृत्ति < √कृती (छेदने), 'कृतिः कृन्तनेऽर्थे वा, स्वच्छेता कृत्तिरीति, मृगचर्मणि, उत्कर्तने'—नि०]

कटुई—(सं०)-(१) जल में रहनेवाला एक प्रकार का झींगुर, जो धान के पौधों को काटता है। (२) गेहूँ, जौ आदि के पौधों को काटनेवाला कीड़ा (शाहा०-१)। [कटु + ई < कटु < काटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृत्, कीट]

कटुआे—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला अरहर या किसी अन्य दलहन का भूसा (द०-पू०)। दे०—भूसा। [मिला०—कुट्टक, कुट्ट, कुट्टक, कर्तक]

कटैया—(सं०)-(१) एक प्रकार का कीड़ा (कीड़ा), जो धान में लगने पर उसकी बाल को पीला बनाकर नष्ट कर देता है (द०-प० शाहा०)। पर्या०—कटोई, कटोइया (पं० द०), हरदा (पट०-४)। [∠ *कर्तकीट] (२) एक प्रकार का कटीला पौधा (दर०-१)। [∠ *कण्टकारिन्]

कटोइया—(सं०)—(पं० द०)। दे०—कटैया। [∠ *कीट, ∠ *कंटकिन्]

कटोई—(सं०)—(पं० द०)। दे०—कटैया। [∠ *कीट, ∠ *कंटकिन्]

कटौनी—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (मुं०-१, पट०-४)। [कटौन + ई, < कटावल (बिहा०) < √कृती ('छेदने'), कर्तन]।

कट्टा—(सं०) पशुओं के खाने के लिए गँड़ासे या मशीन से काटे हुए घास, पुआल, ज्वार आदि के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े (पट०)। पर्या० कुट्टी (द०-माग०), बिचाली (भाग०-५, पट०) लेही। (चंपा०)। दे०—कुट्टी। [< *कर्तित < √कृती ('छेदने'), (दे०) कट्टिम (प्रा०), < *कृत्त (संस्कृ०), कट्ट (प्रा०)]

कट्ठा—(सं०) बीस धूर जमीन की एक नाप, बिस्वा (शाहा० पट०-४)। [∠ *काष्ठ]

कठंजा—(सं०) कई तरह के मिले हुए अनाज। (२) कच्चा अन्न (मुं०-१)। [अस्पष्ट, संभ० < कतिपयान्नजाति, मिला०—सतंजा (चंपा०, पट०-४) < सप्तान्नजात]।

कठकरंज—(सं०) एक काँटेदार झाड़ी, जिसके फल का गूदा दवा के काम में आता है (मुं०-१)। पर्या०—कठकरेजी (भाग०-५, पट०-४)। [< *कटुकरंज, < *कंटकरंज]

कठकरेजा—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकरेजी—(सं०) दे०—कठकरंज।

कठकूआँ—(सं०) लकड़ी के बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुआँ। [कठ + कूआँ < काष्ठकूप]

कठखुरपी—(सं०)-(१) काठ की बनी हुई खुरपा-जैसी चीज जिससे कड़ाह से रस निकाला जाता है। (२) दे०-कठही। (३) कड़ाह की पेंदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औज़ार (उ०-पू० सं०)। दे०-खुरपी। [कठ+खुरपी< काष्ठ खुरप्र (?)]

कठजामुन—(सं०) एक प्रकार का जामुन। यह छोटा होता है तथा इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (शाहा०-१, चंपा०, पट०-४)। [कठ+जामुन < काष्ठ+जम्बू (?)]

कठडुम्मर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसके फल की तरकारी होती है (पट०-१)। [कठ+डुम्मर < काष्ठ (वा कटु)+उदुम्बर]

कठनही—(सं०)-(१) कुएँ से पानी निकालने का काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (गया)। (२) काठ का बना हुआ तश्तरी की तरह का बरतन, जिसमें चटनी आदि जैसी चीजें रखी जाती हैं (भाग०-५)। [कठ+नही (संभ०) < काष्ठ+नाभी, अथवा पनही < पनही]

कठपिरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [मिला०—कटभी, "कटभी स्यात्पुण्यफल मधुरेणुः कटंभरा"—(रा० नि०)]

कठफलेंदा—(सं०) छोटा-छोटा जामुन। यह बरसात में फलता है और इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (भाग०-१)। [कठ+फलेंदा < काष्ठ (वा कटु)+फलेंदा (देशी)]

कठबंधन—(सं०) लकड़ी का खंभा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है। [कठ+बंधन< *काष्ठ बंधन]

कठबाँस—(सं०) पतला और ठोस बाँस (शाहा०-१)। [कठ+बाँस< काष्ठ+वंश]

कठबँसी—(सं०) एक प्रकार का बाँस, जिसकी गाँठ घनी होती है और बाँस छोटा एवं पतला होता है (चंपा०-१)। [कठ+बँसी< काष्ठ+वंश (?)]

कठरंजनी—(सं०)-(गुंजा मुं०-१)। [कंठरंज]

कठरा—(सं०)-(१) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का नाद। यह मवेशियों को दाना खिलाने के काम में आता है। (२) लकड़ी का बना


कठरा

चौड़ा बरतन, जिसमें आटा गूँधा जाता है, अथवा घर का दूसरा काम होता है। (३) स्लेट, चित्र आदि में लगा चौखट तथा ढोलक, डंक आदि का बिना मढ़ा हुआ लकड़ी का बना ढाँचा (भाग०-४)। (४) अनाज रखने के लिए काठ का बरतन (पट०, गया०)। पर्या०—कठौती (सं० द०)। [कठ+रा (प्र०) अथवा < काष्ठपात्र, < कठपात्र]


कठौती

कठरेंगनी—(सं०) खाली जमीन पर फैलनेवाली गोखुर की जाति की एक काँटेदार घास, जिसके पत्तों और डंठलों में काँटे होते हैं। इसके फूल बैंगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं (पू०, मुं०-१, भाग०-५)। दे०—रेंगनी। [कंटकारिका]

कठला—(सं०) दे०—कठरा। [कठ + ला (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठली—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (मुं०-१)। दे०—कठनही। [कठ + ली (प्र०); मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठवत—(सं०)-(१) कुआँ खोदने के समय मिट्टी को भीतर से बाहर निकालने का पात्र (कठौती) (द०-पू० सं०, शाहा०, भाग०-५)। दे०—कलना। (२) चीनी के रस को ठंडा करनेवाला लकड़ी का कड़ाह (सा०)। दे०—कठौत। (३) काठ का बना हुआ गोलाकार बड़ा पात्र। [कठ+वत < काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठही—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली चम्मच-जैसी वस्तु। दे०—कठखुरपी। पर्या०—सैंक या सैंका (पू०, शाहा०), सफई या सफैया (ग०-द०), डोहरा (द०-प० शाहा०), डपटी या डब्बू (द० भाग०)। [कठ + ही (वि० प्र०), मिला०—कटच्छुक=एक प्रकार की कलछी (मो० वि० डि०)]

कढ़ा—(सं०)-(१) कृषि के औजारों की मरम्मत आदि करने के बदले में बढ़ई-लोहार आदि को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—जौरा (चंपा०), घास (मुं०), कमाई (शाहा०, पू० सं०), आँवर (द०-पू० सं०), कमौनी (द०

मुं०)। (२) कट्ठा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लग्गी। [सं०-< *काष्ठा या *कुठि]

कढ़ाधर—(सं०) खेतों को नापनेवाला ग्रामीण। [कठ+धर < *काष्ठधर]

कठार—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (द०-भा०)। दे०—कतार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुआ—(सं०) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—कलना। [कठ+उल+ई (प्र०) < *काष्ठ]

कठेला—(वि०) वह फल, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चंपा०-१)। [मिला०—कठ्ठ, कठिन]

कठौआ—(सं०) लकड़ी का फावड़े-जैसे फलक वाला औज़ार, जो खेत में पानी चढ़ाने के काम में आता है (द० मुं०)। दे०—हथा। [कठ+औआ। मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठ कुद्दाल]

कठौत—(सं०)-(पु०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह, जो रस ठंडा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठौत (पू०), कठवत (सा०), नाद या थाँसौनी (सा०, चंपा०)। [काष्ठामत्र]

कठौती—(सं०)-(१) चीनी के रस को ठंडा करने के काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (ग० द०)। दे०—कठरा। [कठ+औत+ई, < काष्ठामत्र]

कड़हा—(सं०)—(ग० द०)। दे० कँड़हा।

कड़म—(सं०) मेंड़ का डंठल (सं० द०)। पर्या०—पइरू (चंपा०)।

कड़वार—(सं०)—(१) नरम, बड़ी-बड़ी घास, जो घर छाने के काम में आती है। काश की जाति की एक घास। (२) धान के पौधों की राशि (चंपा०-१)। [< कट, कड (= तृण, घुमाल आदि) + वार (= समूह), मिला०—कडंगर = धान का डंठल। कड़ह, कड़बा। (बहा०), कडप (पु०)]

कढ़ाँव—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कढ़ाम।

कढ़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (सा०, भाग०-५)। दे०—गेंडरा। [*कटक (संस्कृ०) > *कड़अ (प्रा०) > कढ़ा]

कढ़ाम—(सं०) दौनी में बैलों को सिलसिलेवार बाँधने की लंबी डोरी (मुं०-१)। पर्या०—कढ़ाँव (चंपा०)। [मिला०—कलंतिका = गर्दन के पीछे का भाग, कण्ठमाल]

कढ़ाह—(सं०) (१) ऊख के रस को उबालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे की बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (बिहा०, भाग०)। दे०—कराह [< *कटाह]


कढ़ाह (१)


कढ़ाह (२)

कढ़ाही—(सं०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—गेंडरा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कढ़ाह + ई < *कटाह]।

कढ़ी—(सं०) (१) हेंगा का लंबा चौरस काठ-फलक (गया)। दे०—समरा। [< *कटक] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़ियाँ (चौतानी) के दोनों छोरों को बाँधने के लिए लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—वाला। [कढ़ा+ई < कटक (संस्कृ०) > कड़अ (प्रा०) > कढ़ा]

कढ़ीर—(सं०) आम के बीज पर दिया जानेवाला पुट। दे०—खाली। [कढ़+ईर < *कर्ष (संस्कृ०) > कड्ढ (प्रा०)]

कतकी—(सं०) वह धान, जो कातिक महीने में होता है (पट०-१)। पर्या०—कतिका (चंपा)। [कातक+ई < कातिक < *कार्त्तिकीय]

कतकी ऊख—(सं०) वह ऊख जो कातिक मास में रोपा जाता है (रो०)। [कतकी + ऊख, कतकी < *कार्त्तिकीय, ऊख < *इक्षु]

कतरवार—(सं०) ऊख की अगौरी/फसल को काटनेवाला (पट०, गया)। दे०—अगौढ़िया। [कतर + वार < कर्तरि + वार < *कर्त्तन + पाल।

पार = अन्त । पारयति (= समाप्त करता है), पार (= आर-पार)]

कतरपारा (सं०)-(द० मुं०)। दे०—अँगेडीहा, कतरपार ।

कतरवहा—(सं०) दे०—कतरवाहु ।

कतरवाहु—(सं०) ऊख के कोल्हू के बैल को हाँकनेवाला । पर्या०—कतरिवाह, कतरवाहा, कतरवहा (द० भाग०), हँकवा (द०-प० शाहा० मुं०), हँकवाहा (पट०-४), हँकवाहु (मुं०-२) । [कतर+वाहु । कतरी = कोल्हू में लगा एक पटरा जिसपर बैठकर बैल को हाँका जाता है । < कतरी < *कर्तरी (= चक्र—हि० श० सा०)+वाह अथवा कर्त (= गर्त) + री]

कतरवाहा—(सं०) दे०—कतरवाहु ।

कतरा—(सं०)-(१) एक पशु-बाधक घास (सा०, मुं०, दर०-१, मुं०-२) । पर्या०—खरमूर (पट०-४) । [मिला०—कतृण (= एक सुगंधित घास, रौहिस) कर्तरीय = एक प्रकार का विषैला पौधा (मो० वि० डि०)] (२) पके हुए धान के बँधे हुए पुल्ले से बाल काट लेने के बाद का बचा हुआ डंठल (मुं०-१, मुं०-२) । [< कर्त्य = काटने योग्य, < *कृत, < *कर्तित < √कृती 'छेदने']

कतरिवाह-(सं०) दे०—कतरवाहु । [कतरि+वाह < कन्त्राक + वाह, कतरी = कोल्हू में लगा एक पटरा, जिस पर बैठकर बैल को हाँका जाता है; कतरि + वाह < *कर्तरी (= चक्र-हि० श० सा०) + वाह अथवा कर्त (= गर्त) + री > कतरी]

कतरी—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू का वह तख्ता, जिसपे बैल जुड़ा रहता है । पर्या०—कातरी या कातर (शाहा०, द०, पु०, मुं०, द० भाग०)। (२) कोल्हू से लगा हुआ वह चौड़ा तख्ता, जो बैल के पीछे रहता है और जिसपर तेली बैठकर बैलों को हाँकता है । (३) दे०—कातरी । [< *कर्तरी = (चक्र—हि० श० सा०) < *कृत्ति < √कृती "छेदने" अथवा कर्त = गर्त + री (हि० प्र०) । (४) धान के पौधे का एक रोग (द०-प० शाहा०, मुं०-२) । मिला०—कर्तरीय = एक प्रकार की विषैली घास (मो० वि० डि०)] । (५) फसलों के कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०-१, मुं०-२, भाग०-१) [*कृत]

कतिका—(सं०)-(१) वह अगहन, जो कातिक में कटती है (सं०प०, मुं०-२, पट०-४) दे०—तेलकी । (२) कातिक में होनेवाला महीन दाने का एक सफेद धान । इसका चावल सफेद होता है (सा०-१, चंपा०-१, मुं०-२, पट०-४) । [कातिक + आ < कातिक < *कार्तिक < *कृत्तिका < √कृती(छेदने) ('छेदने') + अण्] (३) एक प्रकार का धान, जो छींटकर (बावग) बोया जाता है और कातिक में काटा जाता है (गया, मुं०-२, चंपा०, पट०-४) ।

कतिकी —(सं०)-(१) कातिक में बोई जानेवाली चीज (द०भाग०) । (२) कातिक में होनेवाली फसल । मिला०—फाल्गुनी—फाल्गुन में बोई जानेवाली चीज । [कातिक + ई < कातिक < *कार्तिका < *कृत्तिका (नक्षत्र < √कृती-'छेदने') + अण्]

कत्ता—(सं०) डोम-जाति द्वारा बाँस काटने तथा बाँस की चीजें बनाने के काम में आनेवाला लोहे का बना एक कृषि-यार - विशेष (प्रायः सर्वत्र) । [< कर्तृ < कृत्+ तृच्, कर्तरी]

कत्ता

कत्थ—(सं०) खैर के पेड़ से निकाल कर बनाया गया मसाला, जो पान में खाया जाता है । पर्या०—खैर (मुं० २, पट० ४, चंपा० तथा अन्यत्र)। [<*कृत्थ (हि० श० सा०), < कत्थैल्य < *खदिरोत्थ < कत्थ, खदिर (= खैर) + उत्थ (= उत्पन्न) < उत् + √स्था]

कथई—(सं०) कत्थे जैसा रंग ।

कदई—(सं०)-(१) दे०—कादो । पर्या०—कदवा (मुं०-२)। (२) बाढ़ हटने के बाद नदी द्वारा छोड़ी हुई गीली मिट्टी । पर्या०—कदोई, पाँक, पंक, पंकि(मुं०-२)। (३) मिट्टी का कच्चा गारा मिलाया, जिससे दीवाल तैयार करने में ईंटें जोड़ी जाती हैं (भाग०-५) । [<कर्दम]

कदवा करब—(मुहा०) धान की रोपनी के लिए खेत को तैयार करना (दर०-१, मुं०-२) ।

दे०—कादो करब । कदवा + करब ∠ *कर्दम (ई) + √कृ]

कदम—(सं०)—(१) एक प्रसिद्ध फल, जो गोल और केसरयुक्त होता है (दर०, पूर्णि०-१, मुं०-२, पट०-४) [कदम्ब] (२) घोड़े की एक चाल । (३) चलने में दोनों पगों के बीच का अन्तर । [कदम (अ०)]

कदराह-(वि०)—(पट०-४, भाग०-५) । दे०—कादल ।

कदवा —(सं०) पानी भर जाने के बाद पाक-पाल के लिए धान के खेत की जुताई (द०-पु०, मुं०, चंपा०, मुं०-२) । दे०—लेव । [< *कर्दमक]

कदीमा—(सं०)—(पु०-मुं०, दर०-१, मुं०-२) । दे०—कोहड़ा । [(बेती), मिला०—कद्दू, कदू (फा०)]

कदीमा

कदीमी—(सं०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत भूमि प्राप्त है । (प्राचीन प्रयोग) । दे०—मौरूसी । [कदीम = पुराना (फा०)]

कदुआ—(सं०) लता में होनेवाला एक प्रकार का लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी होती है । पर्या०—कद्दू, कदुआ (द०-भाग०), लौका (गया, द०-मुं०, चंपा०, मं०, पट०-४), लौआ (पट०-१), सजिवन (पु०-मुं०), कद्दुआ, लौकी (पट०-१) । [अलाबू (वैदी), कटु तुम्बी, अलाबुक (संस्कृ०) लाउ लाउ (बं०), तुम्बा, भोपळ (मरा०), दुधियू, दुधली, आलडी (गु०), कदू दुधलाकई, कदुड सोरकाय (क०), सोल, सुरदी काय (ते०), कद्दू, कदू (फा०)]

कदुआ

कदोई—(सं०)—(१) दे०—कदई, कादो । (२) कीचड़ । दे०—कादो । [< *कर्दम] (३) वह खेत, जिसका कीचड़ कभी नहीं सूखता और बिना जोते हुए ही जिसमें खेती की जाती है । दे०—चहल । [< *कर्दमिन्]

कद्दू—(सं०)—(द० भाग०) । दे०—कदुआ ।

कधोर—(वि०) कीचड़ मिला हुआ पानी (मुं०-१) पर्या०—किधोर (चंपा०, द० भाग०), किनोर (चंपा०), किदोर, किदौड़ा (पट०-४), कदकइल (चंपा०) [कद + धोर < *कर्द (= कर्दम) + घृ या < *कर्द + उदक]

कन—(सं०)—(१) बँटवारे के लिए खेत की फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण । पर्या०—कूत, कनकूत, कनकूती । [सं०— *कण] टि०—जब किसान के खेत में फसल तैयार हो जाती है तब काटने के समय जमींदार अपने अमीन और शालिस को खेत पर भेजता है । वहाँ किसान, पटवारी-गुमाश्ता के सहायता से अमीन नपवाता है और शालिस खेत के चारों तरफ घूमकर फसल को देखरेख करके तथा अमीन और पटवारी से परामर्श करके खेत की फसल का आनुमानिक परिमाण निर्धारित करता है । यदि यह आनुमानिक परिमाण किसान को स्वीकृत होता है तो खेसरा-बही पर चढ़ा दिया जाता है । बात वहीं समाप्त हो जाती है । किंतु यदि यह अनुमान किसान को मंजूर नहीं होता है तब दूसरे किसान मध्यस्थता के लिए बुलाये जाते हैं और वे परिमाण निर्धारित करते हैं । यदि उनका निर्णय किसी एक दल को भी अमान्य होता है तो पुनः यह मामला जाँच-पड़ताल के लिए भेजा जाता है । इसमें खेत की अच्छी फसल के एक हिस्से को जमींदार की ओर से और उसके बराबर ही घटिया फसल को किसान की ओर से काटकर दौनी करके अनाज अलग-अलग तौला जाता है । फिर दोनों को मिलाकर उसका मूल्य-निर्धारण किया जाता है और खेसरा-बही पर चढ़ाया जाता है । उसके बाद शेष भाग को किसान काटकर तैयार करके अनाज घर पर ले जाने के लिए स्वतंत्र रहता है । किसान को जमींदार की ओर से फसल की कम उपज होने तथा काटने, दौनी करने और तैयार करने के बदले प्रतिमन दो सेर की छूट या छुट्टी दी जाती है । इसके बाद अनाज का परिमाण करके दोनों में अलग-अलग अंशों में बाँट दिया जाता है, किंतु अनाज किसान के घर रह जाता है और हिसाब किया किया जाता है । यदि किसान उस अनाज को

जाल, वर्ष में जमींदार के पास जमा कर देता है तो हिसाब बेबाक होता है, नहीं तो उसके नाम से अगले साल के हिसाब में बाकी पड़ जाता है। (२) भादों में धान के पौधों की जड़ से निकलने वाला नया अंकुर। [<*कण्ण, <*कन्दल (=नया अंकुर)] (३) कानूनी खेत की पैदावार का कूतना (चंपा०-१, मैं०-२)। (४) नाज या भूसे को तौलने के लिए देने पर उसके दूध-घी का बँटवारा करने के लिए किया जानेवाला मूल्यांकन (चंपा०-१)। (५) चावल छाँटने पर उससे निकली हुई धूल की तरह महीन भूसी (चंपा०-१, मैं०-२, पट०-४)। [<*कण्ण]

कनइल—(सं०)-(शाहा०-१, चंपा०, दर०-१)। दे०—कनैल। [कन+इल<*कर्णईकील]

कनई—(सं०)-(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर के भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (पू०) दे०—डौंगी। पर्या०—कौंछी (२) दे०—कादो। (३) दे०—कनवई (मैं०-२, चंपा०)। [∠०कण्णद, ∠०कन्दली]

कनककपूर—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० भाग०, मनेर भी।) [<*कनककपूर]

कनकजीर—(सं०) एक प्रकार का रोपा जानेवाला उत्कृष्ट महीन धान (पू० मैं०, मैं०, दर०, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०-१) [कनक + जीर <*कनकजीरक]

कनकजीरा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (शाहा०, चंपा०-१)। [कनक+जीरा ∠०कनकजीरक]

कनकिल्ली—(सं०) पालो के दोनों छोरों पर बैलों के कंधे के पास पालो में छेद करके लगाई हुई लकड़ी या बाँस की कील (द० भाग०, पट०-४)। दे०—सैला। [कन + किल्ली <*कर्णकील]

कनकुती—(सं०) बँटवारे के लिए फसल का मोटा-मोटी मूल्य-निर्धारण (मैं०-२, चंपा०)। दे०—कन। [कन+कुती<०कण्ण (संस्कृ०) +कुती <कूतना (हि० क्रि०)]

कनकुती बटाई—(सं०) मूल्य-निर्धारण के द्वारा फसल का बँटवारा। पर्या०—दानाबन्दी, औकटू (शाहा०, द०-पू०), दमाव, दमकट्टी (शाहा०, पट०, गया)। [कन+कुती+बटाई ∠ कण्ण (संस्कृ०)+कुती ∠ कूतना (हि० क्रि०)+बटाई ∠ बटटन ∠ √वट]

कनकूत—(सं०) दे०—कन। [कन+कूत<कण्ण (संस्कृ०) + कूत ∠ कूतना (हि० क्रि०)]

कनखी—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (द०-प० शाहा०)। दे०—रौंज। [<कण्ण, कक्षिका, ∠ कण्ण+कक्ष]

कनगोजर—(सं०)-(१) ऊख की आँख (पोर) से निकलनेवाला अंकुर (द०-पू० मैं०)। दे०—कनोजर। पर्या०—थँभुआ (मैं०-२)। [कन+गोजर, कन+खोजा (∠ गोजर)] (२) एक पतले आकार का गोजर की कई पैरोंवाला छोटा विषैला कीड़ा होता है। पर्या०—कनखजूरा। [कन + गोजर। मिला०—कर्ण खजूर]

कनचड़ा—(सं०) एक प्रकार का धान, जो छींट कर (बावग) बोया जाता है (गया, मैं०-२) [देशी]

कनझो—(सं०) बाँध की रक्षा के लिए फालतू पानी को बहाने के किनारे पर का नाला। [देशी, मिला०—कोशमेन। मिला०—कन्थ ∠ कं (जल) + क + (धारण करनेवाला) = मेघ, कन्धर: ∠ कं + धर: = मेघ:]।

कनरखी—(सं०) सामने के ऊपरी भाग की दो मूगरें, जिनके सहारे हेकुल रहती है। [देशी]

कनरा—(सं०)-(पट-४)। दे०—कानर-३।

कनवेई—(सं०) एक आने या छटाँक का सोलहवाँ भाग। दे०—छदाम [<*कण्ण (कनी)]

कनबहू—(सं०) पेंग से निकलनेवाली छोटी मुख्यधा नाली (पट०, गया, पट०-४)। दे०—कनवा। पर्या०—कनवाहा (चंपा०) [∠ *कण्ण+वह, ∠ *केशवह, मिला०-कन्ध,कन्धर (=मेघ)]

कनवाँ—(सं०)-(१) एक आने का सोलहवाँ भाग (पट०-४)। दे०—छदाम। (२) पाँच तोले या एक सेर के सोलहवें भाग के बराबर की तौल, छटाँक। (वि०) पाँच तोले भार की वस्तु (विह० ग्रा० हरि०)। [<कण्ण + वट (=भाग)] (३) धान की फसल की वृद्धि का रोकनेवाली

एक घास (गया)। पर्या०—कान्ना (मैं०, पट०, पू०, चंपा०, मैं०-२), कान्ना (उ० पू०मैं०), केना (प० मैं०), कनना (पट०-४)। [कण्ण]

कनवा—(सं०)-(उ० पू० मैं०) दे०—कनवह। [<*कण्णवह, + <*केशवह]

कनवाहा—(सं०)—(चंपा०) दे०—कनवहू।

कनसन—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुँचाने वाली एक घास (सा०)। पर्या०—कौसी (प० मैं०, पट० गया, द० पू०), कास (शाहा०, उ० वि०) [देशी]

कनसी—(सं०)-(१) ऊख का अंकुर (द० मुं०)। दे०—कोंप। (२) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (द० मुं०)। दे०—छिटकी। (३) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (पट०-४, मग०-५)। दे-कलश, कली। [<*कर्णिशा, <*कण्णाग्र]।

कनसुप—(सं०)—मैं०-२)। दे०—कोंसुप।

कना—(सं०)-ऊख का एक रोग-विशेष, जिसमें ऊख के अन्दर के रेशे लाल हो जाते हैं और उसकी गुड़ का रस और मिठास कम हो जाती है (मग०-५, पट०-४, मैं०, उ० वि०)। [कना>कान<*काण्ड]

कनाइल—(वि०)—(१) कीड़ा लगा हुआ (चंपा०-१)। [कन+आइल (वि० प्र०) <*कण्ण](२) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (सं० प्र०)। दे०—कीना। पर्या०—कनाइल (पट०-४)। [कन+आइल (वि० प्र०) <०कण्ण]

कनाई—(सं०) दे०—कना। [कना+ई (प्र०) <कान <*काण्ड]। लोको०—'ऊख कनाई काहे से, स्वाती पानी पाये से'—घाघ (=स्वाती का पानी पाने से ऊख काना हो जाता है।)

कनाठ—(सं०) बाँस का वह टुकड़ा, जिसके दोनों किनारों पर आँटी के बोझे बाँधकर एक जगह से दूसरी जगह ढोये जाते हैं (प०)। दे०—बिहंगी-बोझा। [देशी, मिला०—स्कन्ध = लकन्ध>, शाखा]

कनाठा—(सं०) एक प्रकार का कीड़ा, जो धान, कपास और तम्बाकू के पौधों में लगता है (द० भाग०)। पर्या०—कनही (द० मुं०), कोरी (द०-प०), खेड़ी (उ०-प०, मैं०), खीरा (चंपा०)। [देशी, मिला०—स्कन्ध+छद]

कनाह—(सं०) कीड़े लगा ऊख का पौधा (मैं०, चंपा०, द०-प०-शाहा०, मैं०-२)। दे०—कीना। [कना+ह <*काण्ड]

कनाहा—(सं०)—(द० मुं०)। दे०—कनाह [<*काण्ड]।

कनिक-(सं०)गेहूँ या जौ का मोटा आटा (चंपा०, मैं०-२, ओझ०)। दे०—आटा। [<*कणिक, <*कण]

कनियाएल—(क्रि०) बोए हुए बीज के अंकुर से पहले-पहल पत्ता निकलना (पट०, गया)। (वि०) पहले-पहल निकले हुए पत्तोंवाला अंकुर। दे०—पनियाएल। [कनिआ+आएल (वि० प्र०) <*कण, <*कणिका]

कनियाल-(सं०) एक प्रकार का धान। [मिला०—कर्णिकार]

कनिल—(सं०) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (द० भाग०)। दे०—बीज। [मिला०—कर्णिल=टुकड़ा करने या काटने की प्रक्रिया (मो० क्रि० हि०)]

कनेटी—(सं०) खूँट को खिल्ली से बाँधनेवाली रस्सी (उ०-प०)। पर्या०—कुँहियाठी (पं० उ०), चोरकिल्ली (चपा०, उ०-प० मैं०)। [कन+एटी, कन <*कर्ण, एटी <ऐंठल (वि०) <*आवेष्टन]

कनेल—(सं०)—(१) बैलगाड़ी के जुए में लगी काठ, लोहे या पीतल की बनी किल्ली, जो बैल के कंधे को बहकने से रोकती है (मुं०-१)। [कन+एल ∠ ०कर्णकील, मिला०—कनैर] (२) एक प्रकार का फूल, जो लाल, पीला, सफेद और अन्य रंगों का भी होता है (दर०-१, पूर्णि-१)। [<*कर्णिकार, <*कनैर]। (३)—(दर०-१, पूर्णि०-१) दे०—कनैल।

कनैल—(सं) (१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने के बाद उसमें से निकला अंकुर या नई पत्ती (द०मैं०)। दे०— डौंगी। (२) जुए के दोनों पल्लों को जोड़ने के लिए बैल के गर्दन के

कनैल

बाहर छिद्र में लगाई गई कील (उ०-प०, पू०, दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—गाईल, कनेल। (३) हल-पालों के दोनों छोरों पर बैलों के कंधे के पास पालों में छेद कर लगाया जानेवाला लकड़ी या बाँस का टुकड़ा। दे०—सैला। पर्या०—कनेल, कनइला (दर०-१, पूर्णि०-१, चंपा०, सा०)। [∠ *कर्णकील, ∠ *कोणकील] (४) दे०—कैबल।

कनोअर—(सं०) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने पर उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (उ०-प० मं०, मैं०-२)। दे०—कोंसी। [कन + खोअर ∠ *कण्ठ; कांड]

कनगोअर—(सं०)-(१) ऊख की आँख (पोर) से निकला हुआ अंकुर (द०-पू० मं०)। [कन+ गोअर, देशी या कला, कांड < कंड (प्रा०) कंडोरा (अप०)] (२) एक प्रकार का विषैला सरीसृप कीड़ा जिसके बहुत-से पैर होते हैं।

कन्ना—(सं०)-(१) अनाज के खेतों में होनेवाली एक पशु-खाद्य घास (द०-भाग०, गया)। दे०—कनवाँ। (२) धान की फसल की वृद्धि रोकने-वाली एक घास (उ०-पू० मं०)। दे०—कनवाँ। [देशी] (३) कन्ने की एक शाखा (नीक), जिसमें पिरनी चलती है (मैं०-२, पट०-४)। दे०—कानी। [∠ *कन्या ∠ *कोण] (४) एक किस्म की घास (मुं०-१)। (५) (वि०) बराबर रोते रहनेवाला (मुं०-१)। [देशी, मिला०—कन्दु, कन्दिक]

कन्नी—(सं०)-(१) गेहूँ या किसी अनाज का पहले-पहल निकला अंकुर (पट०)। दे०—सुइया। उदा०—'कनियाइल आवे हैं' = अंकुर फूट रहा है (पट०)। [∠ *कन्या, ∠ *कनी, ∠ *कणिका] (२) ईंकुल के कन्नों के ऊपर की शाखा, जिसपर ईंकुल का बाल्टा लटकता है। दे०—कान। [< *कन्नी, ∠ *कोण, ∠ *कोणिक] (३) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (पट०-४, माग०-५)। दे०—कनस।

कन्हिया—(सं०) ऊख के कोल्हू के पेट में रहने-वाले जाठ (मोहन) के मुँह के ऊपर का कटा हुआ भाग (उ०-प० मं०)। दे०—सानर। [< *स्कन्ध, < *कन्ध]

कन्ही—(सं०) टरहल, मगला और तंबाकू के पौधों पर लगनेवाला एक कीड़ा (द०-मुं०)। दे०—कनाठा। [देशी, मिला०—किंशि, कृमिकम्]

कन्हेरी—(सं०) वह खेत, जिसमें पानी के आने में विलम्ब हो। [मिला०—कन्हरा (= कोना)]

कन्हैली—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू की कतरी और गुड़ को मिलानेवाला चमड़े का तस्मा (माग०-५)। दे०—नाधा। (२) मवेशियों की पीठ पर की गद्दी के नीचे रखी जानेवाली वस्तु (दर०-१, पूर्णि०-१)। (३) बैलों की पीठ पर की गद्दी। (गं०-उ०, माग०-५, द० मुं०)। पर्या०—खरखा, बकरा (गं० द०-प०), खुरखा (गं० द०-पू०)। [मिला०—स्कन्ध, कन्ध, कन्धरा]

कन्हैया—(वि०) दिखाई पड़नेवाला पुरुष (द०-प० शाहा०)। दे०—पनखना। [< *क + घन (= मेघ, बादल)]

कन्हैली—(सं०) बैल के कंधे पर रखी जानेवाली गद्दी (शाहा०-१)। [कन्हा + पाली (प्रा०) ∠ *स्कन्ध]

कपड़ा—(सं०) एक कीड़ा, जो धान के पौधों में लगता है (चंपा०, मैं०-१)। [देशी, मिला०—कर्पट]

कपाई—(सं०)-(१) मवेशियों का घास खाने का झोला (पट०)। (२) घास ढोने का एक प्रकार का जाल-जैसा बुना हुआ बड़ा बोरा (द० माग०)। दे०—जाला। [मिला०—कार्पद, कर्पटिन् = गँथा हुआ कैदा]

कपाई—(सं०)-(पट०) दे०—कपाइ।

कपारी फोरल—(मुहा०) कपास या किसी दूसरे बीज के अंकुर में दो पत्तों का निकलना (मैं०)। दे०—दीहुलिया। [कपारी + फोरल ∠ *कपाल, ∠ *कर्पट + फोरल (क्रि०) ∠ √स्फुट (विकसने)]

कपास—(सं०)-(१) रुई का पेड़ (म०)। टि०—वस्तुतः कपास रुई है। कपास प्रायः बैसाख में पकती है। इसके कई भेद हैं। (२) फलों में पड़ी हुई बिना काम की हुई रुई (माग०-५)। पर्या०—बाँग (मैं०-२), बाँगा (पू०-मैं०, चंपा०), बाँगी (द० भाग०), कौच रुआ (द०-मुं०)। [< *कर्पास]

कपास फुटल—(मुहा०) कपास का फूटना, कली का खिलना (प०)। पर्या०—बाँगा फुटल (मैं०), बाँगो फुटल (द० भाग०), कोरा (द० मुं०)। [कपास + फुटल < *कर्पास + *स्फुट < √स्फुट]

कपुरिया—(सं०) एक प्रकार का गेहूँ, जिससे कपूर-जैसी गंध आती है (चंपा०, मैं०-२)। [कपूर + इया (तद्० प्र०) < *कर्पूर]

कपुसार—(सं०) एक प्रकार का अगहनी धान, जो नीचखल खेत में उपजता होता है और जिसकी जड़ और फूलनी काली, दुँड़दार तथा चावल उजला एवं महीन होता है (मैं०-२)। [< *कर्पास + शालि]

कपूरनि—(सं०) एक लती-विशेष (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—कपूर]

कपूरनी—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१, पूर्णि०-१)। [देशी, मिला०—कपूर]

कपूरसाह—(सं०) कपूर की तरह गंधवाला धान (पट०-१)। [कपूर + साह < *कर्पूर]

कपूरी—(सं०) पान का एक उत्तम भेद, जिसका पत्ता बड़ा कोमल होता है। यह कम कड़ुआ और खाने में स्वाद-युक्त होता है (मैं०-२, माग०-५)। [< *कर्पूर]

कफ्टा—(सं०) नई अफीम से बहा हुआ रस, जो चिथड़े आदि पर इकट्ठा कर पैदा किया जाता है (सा०, द०-मुं०)। दे०—कफा। [कप्पा (= चिथड़ा) < *कर्पट]

कफा—(सं०) दे०—कफ्टा। पर्या०—काफा (शाहा०), कफ्फा (सा०, द०-मुं०)। [कप्पा (= चिथड़ा) < *कर्पट]

कबज—(सं०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्रक। दे०—रसीद। पर्या०—काबिज (माग०-५)। [< *कब्ज: (अ०) = अधिकार]

कबजाना—(सं०) मालगुजारी की रसीद लेने के लिए प्रति रुपया एक पैसा पटवारी के द्वारा निर्धारित देय (पू०-मैं०)। दे०—रसिदाना। [कब्जा (उर्दू), < *कब्ज: (अ०)]

कबरा—(वि०) दो रंगों का बैल आदि मवेशी, जिसकी आधी देह उजली और आधी काली हो (पट०-१, चंपा०, पट०-४, माग०-५)। पर्या०—चितकबरा (पट०-४, चंपा०, माग०-५)। [कबरा < *कर्बुर]

कबरिया—(सं०) धान के बिहार से बीया उखाड़ने-वाला मनुष्य। (माग०-५) पर्या०—कबरिहा (सा०), मोरकबरा (द०-मुं०, माग०-५)। [< कबारल (= उखाड़ना—क्रि०) (देशी) मिला० √कर्ब गतौ]

कबरिहा—(सं०) बिहार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—कबरिया। [(देशी) दे०—कबारल (क्रि०)]

कबली—(सं०) उजले वर्ण का बड़े दानोंवाला मटर (गं० द०, माग०-५) दे०—कबिली। [काबली < काबुली]

कबाड़ल—(क्रि०) उखाड़ना, भगवाना, नोचना (मुं०-१, मैं०-२, माग०-५) [देशी]

कबारल—(क्रि०) फसल, घास आदि का उखाड़ना। दे०—कबाड़ल।

कबारी—(सं०)—(१) कबाड़नेवाला (२) साग सब्जी बेचनेवाली कुँजड़ों की तरह एक जाति (मुं०-१, मं०-२, माग०-५)। [देशी]

कबाला—(सं०) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा किसी की जमीन आदि संपत्ति दूसरे के अधि-कार में आती है। दे०—बैनामा। कबाला लिखल। (मुहा०) = कबाला लिखना। कबाला लिखावल (मुहा०) = कबाला लिखवाना। [कबाला (अ०)]

कबिली—(सं०)-(१) (गं० उ०) दे०—कबली। पर्या०—कबली (गं० द०), पेचकी (द० पू० मैं०)। (२) चने का एक भेद जो बड़ा और उजला होता है (काबुली, (शाहा०-१)। [काबुली]

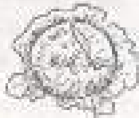
कबुरी—(सं०) दे०—कँवरी।

कबूलियत—(सं०) वह दस्तावेज, जिसे पट्टा लेने-वाला पट्टे की स्वीकृति में लिखकर देनेवाले या पट्टा लिखनेवाले को लिख देता है। पर्या०—करारनामा (पट०-४, माग०-५, सा०-१)। [कबूलियत (स्त्री० उर्दू) < *कबूलियत (अ०) कबूलात, कबूलायत (फा०)]

कमकोढ़ी—(वि०) कामचोर, आलसी। [काम+कोढ़ी< काम+कोढ़ी, काम< कर्म, कोढ़ी< कुष्ठी]

कमची—(सं०) बाँस को चीरकर बनाई गई उसकी पतली पट्टी (चंपा०-१, मैं०-२)। पर्या०—कमाची—(पट०-४, मग०-५)। [कम्बिका (= बाँस की पतली शाखा)। (मौ० वि० हि०)]।

कमरकल्ला—(सं०)—(१) बंधागोभी, जिसमें पत्तों का संपुट होता है; खेत में इसमें फूल ही आता है (मुं०-१)। दे०—करमकल्ला। (२) गोभियों की एक अच्छी उपजाति (मग०-५) [कमर+कल्ला< करम+कल्ला]



कमरकल्ला

कमरख—(सं०) एक प्रकार का फल। इसका मूल मध्यमाकार होता है, पत्ती एक-डेढ़ अंगुल चौड़ी और दो अंगुल लम्बी होती है, जेठ-आषाढ़ में फूलता-फलता है, पका फल खट्टा-मीठा होता है, फल की अचार-चटनी बनाते हैं। यह दवा के काम में भी आता है। इससे एक रंग भी बनता है (बर०-१, पूर्णि०-१, पट०-१, मैं०-२, पट०-४, मग०-५)। [< *कर्मरङ्ग (संस्कृ०) < कम्मरङ्ग (प्रा०) कर्मरक]

कमर-खोलाई—(सं०) पुलिस अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या पुलिस कांस्टेबलों द्वारा ग्राम में प्रवेश करने या शिविर डालने पर माँगा गया पुरस्कार। दे०—सलामी। [कमर+खोलाई]

कमरसावर—(सं०)—(१) लोहार के काम करने का निश्चित स्थान। पर्या०—लोहसारी (शाo, (चंपा०, पट०-४, मग०-५) कमसारी, सरई (द० भाग०) कमरसाल (शा०-१)। (२) बढ़ई के काम करने की जगह। पर्या०—कमरसार (मुं०-१, भाग-१)। [कमर+सावर< कर्मार+शाल, कर्म+शाला]

कमरसार—(सं०) कमारों या बढ़इयों का अड्डा या घर (मुं०-१)। [कमर+सार< *कर्मशाल < कर्मशाला]।

कमरसारी—(सं०) दे०—कमरसावर। [कमर+सार+ई< कर्मार+शाल, कर्मशाला]

कमरसाल—(सं०) लोहारों के काम करने का स्थान, कर्मशाला (शा०-१)। [कमर+साल < *कर्मशाल, < *कर्मारशाल]।

कमरिया—(सं०) मजदूर। पर्या०—जन (मैं०, द०-पू० मैं०, चंपा०, मैं०-२) बनिहार, कमियाँ (पट०, गया, द० मुं०, चंपा०), चाकर (= वैतनिक नौकर)—(सं०), बहिया, परबाहु (अवैतनिक नौकर), रोजहा = रोज की मजदूरी पर काम करनेवाला। हाकिमहुकिम-वह मजदूर, जिससे बिना मजदूरी दिये बलात् काम कराया जाता है। बेगार (गया)। [< *कर्मार, < *कर्मिक]

कमरी—(सं०)—(१) कटहल के फल का छिलका (शाहा०-१, मैं०-२, पट०-४, मग०-५, सर्वत्र)। [कमर+ई (लाघु० प्र०), < अज्ञात] (२) वह बैल, जिसकी कमर झुकी हो (पट०-१, चंपा०, पट०-४, मग०-५), कमर+ई< कमर (फा०); मिला०—कश (संस्कृ०) = नम्र]

कमल—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल। यह पानी में होता है तथा करीब-करीब संसार के सभी भागों में पाया जाता है। यह अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग का होता है। कहीं-कहीं पीले रंग का भी होता है। इसका छत्ता गोल-गोल बड़ी थाली के आकार का होता है, जिसे 'पुरइन' कहते हैं (दर०-१, पूर्णि०, मैं०-२, चंपा०, पट०-४, मग०-५, अन्यत्र भी)। [संस्कृ०]



कमल

कमलगट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट०-४, मग०-५, चंपा०, सार०, अन्यत्र भी)। [कमल+गट्टा, गट्टा< गट्ठा < ग्रन्थ (संस्कृ०) गट्ठा, गा० > गुल्ला, गट्ठा (प्रा०) गट्टा (हि०)]

कमलपट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट०-१)। [कमल+पट्टा, गट्टा (हि०)]

कमला परसाद—(सं०) पौधा खानेवाला एक प्रकार का घास (गया)। [कमला+परसाद < *कमला+प्रसाद (?)]

कमसरे—(सं०) ऊँची जोतों के काश्तकारों के लिए भूमि-कर में सुविधा (पू० मैं०)। दे०—माफी।

पर्या०—जागीर (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [देशी]

कमाइल—(क्रि०)—(१) काम करना, (२) जोतना-कोड़ना आदि कृषि-कार्य करना, (३) कच्चे चमड़े को सिद्ध करना, (४) किसी खेत को जोत-कोड़ कर तैयार करना (चंपा०-१, मैं०-२)। (वि०) कमाई हुई मिट्टी, खेत, चमड़ा, आदि। पर्या०—कमायल (भोज०, शाह०)। [कमाइल कर्मन्]

कमाई—(सं०)—(१) किसी तरह के काम करने के बदले बढ़ई, चमार आदि को दी जानेवाली मजदूरी। (२) नये कोल्हू बनाने के बदले बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (द०-पू० मैं०)। दे०—खान, मविर। (वि०) कमाया हुआ, अर्जित। (३) कृषि-साधनों की मरम्मत करने आदि के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, पू० मैं०, पट०-४)। दे०—बढ़ा। (४) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (प०, पट०-४)। दे०—अगवाड़। [< *कर्मन्]

कमाउन—(सं०) दे०—कमौनी।

कमाची—(सं०) दे०—कमची।

कमायल—(क्रि०) दे०—कमाइल।

कमार—(सं०)—(१) लोहा-लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—लुहार। (२) लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—बढ़ई। [< *कर्मार]

कमावट—(सं०) खुरपी से घास-पात निकालने की प्रक्रिया (दर०-१, पूर्णि०-१)। पर्या०—सोहनी (चंपा०), निकौनी (पट०-४, मैं०-२, मग०-५)। [काम< *कर्मन्]।

कमावल—(क्रि०) दे०—कमाइल।

कमासुत—(वि०)—(१) काम करनेवाला, (२) अधिक परिश्रम से काम करनेवाला (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) [कमा+सुत< कमाना (हि० क्रि०)+सुत]

कमियई—(सं०) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०, पट०-४, मग०-५)। [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्]

कमियई—(सं०) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, मग०-५)। दे०—अगवड़। पर्या०—कमियाँ [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्]

कमियाँ—(सं०)—(१) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द०-मुं०)। दे०—अगवड़। (२) वह परम्परागत नौकर या दास, जो अपने जमींदार स्वामी की इच्छा के बिना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है और नहीं कोई दूसरा काम कर सकता है (गया०, पट०, द० मुं० पट०-४, मग०-५) दे०—नफर। [< *कर्मन्]

कमियौटी—(सं०)-(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (गया)। (२) हलवाहे को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी। (गया, पट०-४, मग०-५)। दे०—हरवर। [< *कर्मन्]

कमी—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि-कर की छूट (पट०) दे०—माफी। [फा०]

कमीना—(सं०)—(१) अधिक मेहनत से काम करनेवाला। (२) छोटी जाति के काश्तकार (शाहा०)। दे०—राइ आदि। (वि०)—(३) बदमाश, बुरे आचरण का व्यक्ति। [< कमीन (फा०)]

कमौनी—(सं०) मजदूरी। [< कमाइल (क्रि०) < * कर्मन्]

कमुआ—(सं०) एक प्रकार का पिलला कीड़ा, जो पौधों में लगता है (पट०)। दे०—कमला। [देशी]

कमेड़ा—(वि०) काफी काम करनेवाला मनुष्य (चंपा०-१)। [< *कर्मठ < *कर्मन्]

कमौनी—(सं०)—(१) छिछली कोड़ाई; खुरपी, कुदाल आदि से हल्के-हल्के कोड़ना (चंपा०, मैं०, मैं०-२, मग०-५)। दे०—खुरपियाना। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (गं० उ०)। दे०—सोहनी। पर्या० —कमाउन (दर०-१, पूर्णि०-१), कमौन (दर०-१)। [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन्] (२) कृषि, साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बढ़ई को मिलनेवाली मजदूरी (द० मुं०, चंपा०)। दे०—खन। [कमाना (हि० क्रि०), कमाइल (बिहा०) < *कर्मन्]।

कमोच—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का काला धान (उ०च०)। [संभ०—कमोच <*कुमुद]

कमोदी—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का उत्तम सुगन्धित धान। [संभ०—कमोच <कुमुद]

कमोरा—(सं०) कोल्हू की कतरी और नीहन के खंभे के ऊपर की ओर घूमनेवाले टेढ़े भाग से लगा हुआ बाँस या लकड़ी का टुकड़ा। दे०—खेरचाँड़ी। [देशी]

कमौनी—(सं०)—(१) खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की-हल्की कोड़ाई। छिछली कोड़ाई (द० भाग०)। दे०—खुरपियाना। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत से की जानेवाली घास आदि की सफाई (द० भाग०, द० मुं०)। दे०—सोहनी। [कमाना (हिं०), कमानाठ (बिहा०) <*कर्मन्]

कम्मा—(सं०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है। पर्या०—कमुआ (पट०)। [देशी]

कयरवा—(सं०) केले की तरह का लंबा-लंबा घास (पट०-१, पट०-४, मग०-५) पर्या०—सुगवा, केलवा (पट०-४), केरवा (मग०-५), केरवा (मं०-२, चंपा०), केरवा (चंपा०)। [कयर+वा (प्रा०) <कयरा <कयल <*कदल <कदली]

कयरा—(सं०) केला। केले का पौधा, (पट०-१) पर्या०—केरा (पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०, अन्य०)। [कयरा <कयल <*कदल]

कयरा के कंद—(सं०) केले की जड़ (पट०-१)। [कयरा+के+कंद]

करँगा—(सं०) काले दानोंवाला एक प्रकार का धान (द०-च० शाहा०, सा०)। पर्या०—करंगी, करहा (चंपा०, मं०-२)। [मिला०—कड़ू =एक प्रकार की ईख (मो० वि० हि०), कडंगर—मृत, ठंठा]

करँगी—(सं०) (द०-प० शाहा०, सा०)। दे०—करंगा।

कर—(सं०)—(१) मूँज का वह भाग, जिससे रस्सियाँ बाँटी जाती हैं (चंपा०-१)। (२) मालगुजारी, जैसे—जलकर, फलकर आदि (चंपा०-१)। (३) पालकी कचकट (चंपा०-१)। [<*कर]

करइला—(सं०) एक प्रकार की लता और उसमें उत्पन्न होनेवाली तरकारी। (पट०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, अन्य०)। [<*कारवेल्ल]

करइला

करइली—(सं०) छोटा करेला (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [करइला+ई (प्र०) <कारवेल्ल]

करकंधा—(वि०) वह गाय या बैल, जिसके कंधे पर एक काला धब्बा होता है। पर्या०—करिकंधा (शाहा०)। करकन्हा (भाग०)। [कर+कंधा, कर <काल: कंधा <स्कंध, कालस्कंध, यथा—कालकंठ]

करकजौंघी—(सं०) बैलों का एक रोग। इसमें चलते-चलते बैल के पैर ऐंठ जाते हैं (गा०-१, चंपा०, मं०-२)। पर्या०—करजंघिल (पट०-४, मग०-५)[करक+जौंघी. <करकत (बिहा०), करकना (हिं०) +जौंघी]

करकट—(सं०) दुहते समय पैर चलानेवाली गाय या भैंस। पर्या०—जबराहु (मं०)। [मिला०—करकोट=एक प्रकार का नाग, हाथ की एक विशेष मुद्रा]

करका—(सं०) काली मिट्टी। (वि०) काला [कर+का (प्र०) <*करल+बलिष्ठा करल (मरा०)]

करकी माँटि—(सं०) काली मिट्टी (दर०-१)। [करकी+माँटि <*कालक+मृत्तिका]

करकुत—(सं०) कई की पंक्ती। [मिला०-काकरेज]

करखा—(सं०) दे०—करिखा। [<*कालक]

करखी—(सं०)—(शाहा०)। दे०—करिखा। [<*कालक]

करखी—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—करिखा। [<*कालक]

करडा—(सं०)—(चंपा०, मं०-२), दे०—करंगा।

करज—(सं०)—(१) निश्चित अवधि के लिए वादा करके किसी से द्रव्य लेने की प्रक्रिया। दे०—करजा। (२) उधार। [कर्ज (अ०)]

करजखखा—(वि०)—(शाहा०), दे०—करजखौक। [करज+खउखा]

करजखोर—(वि०) कर्ज लेकर निर्वाह करनेवाला (पट०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०, भाग०-१)। दे०—रिनिहा, करजखौक। [करज+खोर <कर्ज (अ०) + खुर् (फा०)]

करजखौक—(वि०) कर्ज लेकर जीवन-निर्वाह करनेवाला (पट०, मं०-२, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। दे०—रिनिहा। [करज+खौक, खौक <खाना (हि०), खायल (बिहा०)]

करजवाम—(सं०) दे०—करजा। [करज+वाम =कर्ज, दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं]

करजंघिल—(सं०)—(पट०-४, मग०-५)। दे०—करकजौंघी।

करजा—(सं०)—(१) पशु खरीदने या कुआँ आदि बनाने के लिए दी जानेवाली सरकारी धनराशि, ऋण। पर्या०—तकावी। (२) निश्चित अवधि के लिए सूद पर उधार लिया जानेवाला द्रव्य। पर्या०—करज (सं०द०), करजवाम, पैंचा। [<*कर्ज—(अ०)]

करती मूरी—(सं०) दुहने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गौ या भैंस के सामने रखी गई घास या भूसे से भरी बछड़े या पाड़े की खाल (खाल) दे०—खलावन। [करती+मूरी; मूरी <मुंड <*मुंड; करती <*कृत्त या कृत्य (?)]

करदुम्म—(सं०) वह बैल, जिसकी देह उजली और पूँछ काली हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [करदू+दुम्म <कार (बिहा०)+दुम्म (फा०)]

करवीर—(सं०) एक प्रकार का पीला फूल, जिसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं और पौधा मूल से ही शाखावाली झाड़ी की तरह होता है (दर०-१, पूर्णि०-१) [<*करवीर]

करमकलवा—(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी या पत्ती-साग की जाति की एक तरकारी (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—बंधागोभी। [करम+कल्ला <करम (अ०) +कल्ला (हि०)]

करमा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा काला धान। वह नीची जमीन में रोपा जाता है। (चंपा०, मं०-२)। [मिला०—कलम, कलंब]

करमिया—(सं०) एक प्रकार का उजला शकरकंद। दे०—देसी। [मिला०—कलम्बी]

करमी—(सं०) जल या दलदल में होनेवाली एक लता, जिसके फूल छोटे एवं उजले-बैंगनी रंग के होते हैं, इसका साग होता है तथा यह पशु-खाद्य भी है (द० भाग०, पट-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—करमीलत, करेम, (द०-प० शाहा०), कर्मी (दर०-१)। [<*कलम्ब, <कलम्बी]

करमीलत—(सं०) दे०—करमी। [करमी+लत <कलम्बीलता]

करमोचा—(सं०) वह वस्तु, जो दूरी कीलों न हो (कालकर खम्ह)—(चंपा-१, पट०-४, मग-५)। [कर+मोचा, मोचा <मोचल (बिहा०) = (विलोमार्थक०<√मिह (सीचना) या <√मच (=बंधन) (?)]

करहथा—(सं०) छोटे पत्तों वाला मीठा धान (च०, मं०-२)। [करहु (१)]

करल—(क्रि०) करना, काम करना। मुहा०—खेती करल =खेती करना।

करवानी—(सं०) दे० कोड़वानी।

करसी—(सं०)—(१) गोबर के स्वतः सूखे हुए टुकड़े, जिनका जलावन होता है (मं०-२, चंपा० पट०-४मग०-५, भाग०)। पर्या०—अमारी (द० मुं०, भाग०, गया; मग०-५, पट०-४)। (२) (पु०)। दे०—खादर। (३) मकई की कोढ़ (गा-१)। [<*करीष]

करहनी—(सं०)—(१) छींट कर बोये जानेवाले लकगोड़िया धान का एक प्रधान भेद, जिसकी बाल काली होती है (पट०, पट०-४, मग०-५)। दे०—लकगोड़िया। (२) छींट कर बोया (बावग) जानेवाला काली बालीवाला उत्कृष्ट धान (द० मुं०, गया)। (३) छोटे काले दानोंवाले धान का एक प्रकार (द०-प० शाहा०, सा०)। [कर+हनी <कालक+धान्य]

करहनी धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो पतला, काला और महीन होता है (पट० १)। [कर+हनी+धान <कार*काल+धान्य]

करहा—(१)—(सं०) बड़े जलकौन या खेत से

खेत तक जानेवाले जल-प्रवाह का मार्ग या नाली (पट०, शाह०, शाहा०)। दे०—धैन। (२) धैन से निकलनेवाली नाली। [< *कर्ष् = नहर, गड्ढा (अड्डर), तालाब, खाल ("कर्ष् : पुमान् कर्षणनी त्रिया कुल्यैइह्वलयो:।" (मेदि०)] (३) सींचने के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प०, पट०, गया)। दे०—आरा। (४) नाली के किनारे को घेरनेवाली उठी हुई मेड़ (शाहा०, पट०, गया)। दे०—मेंड़ [< *कर्ष् = नदी, नहर, ताल] (५) कोल्हू के सामने बना हुआ ओड़ का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस नीचे के बरतन में गिरता है। (बं० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—नाली।

कराई, कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रंग का छोटा और बीच में उजली-सी पतली रेखा लिये होता है। इसकी फली काल सिकली होती है (पु० मैं०)। दे०—उरिद। [< *कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय = (बं) = उड़द] टि०—पूर्वी मैथिली अथवा द० भाग० और द० पु० में उड़द को 'कराई' या 'कलाई' कहते हैं तथा बंगला में भी 'कलाय' ही कहते हैं, किंतु संस्कृत में 'कलाय' का अर्थ मटर होता है।

कराम—(सं०) यह बड़ी मोटी और ...प्रकार की बनी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (पु०मैं०)। दे०—मेंडा। पर्या०—कढ़ाम (दर०-१, पूर्णि०-१, मैं०-२) कढ़ाँव (चंपा०)। [देशी]

करार—(सं०)-(१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, द०मुं०)। [मिला०—करातत = अनंत मूल, सारिवा] (२) काफी मजबूत जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी रहती है (पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। दे०—केवाल [मिला०—...(संस्कृ०) = केवाल मिट्टी, करात = कड़ा]

करारा—(सं०) नदी का बड़ा ऊँचा किनारा। पर्या०—अरारा, अरार, करारि, कछाड़, कछाड़ा, ढाह (उ०) काँगनिया (उ०-पु० मैं०)। [< *करात = ऊँचा। कट (कारना हि०) + आरा = (संस्कृ०) किनारा]-(हि० श० सा०)]

करायल—(वि०) करना किया या ठे०। कराना, काम कराना।

कराह—(सं०) ऊख के रस को उबालने का बरतन (सर्व०)। पर्या०—कड़ाह, कराहा। (२) नमक बनाने अथवा नील आदि के रस उबालने के लिए प्रयुक्त लोहे का बड़ा बर्तन। पर्या०—कड़ाह, कराहा, कराही। [< *कटाह]

कराह के घर—(सं०) चीनी बनाने का घर। दे०—चूल्हा के घर।

कराह घर—(सं०) नील उबालने का घर। [कराह + घर < *कटाहगृह]

कराहा—(सं०)। दे०—कराह। [< *कटाह]

कराही—(सं०)—(१) (पट०-४, मग०-५, मैं०२, चंपा०, शाह०) [कराह + ई] (२) दे०—कराह (अल्पा० स्त्री० प्र०) < कटाह]।

करिंगवाह—(सं०) करीन चलानेवाला (पु०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करीन, डोनवाह। [करिंग + वाह, मिला०—कलिंज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिंज = बाँस का एक पात्र-विशेष कलिंजो वंश कप्पी, (पा० स०म०); कालिन्दी = एक पात्र-विशेष—(मो० वि० हि०)]

करिअंबा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०, पूर्णि०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। [करि + अंबा < करि < कारी < *काल; अंब < *आम्र]

करिआकाकोर—(सं०) एक अगहनी लंबा काला धान, जिसके दाने महीन और चावल सफेद तथा सुगंध-युक्त होते हैं (सा०-१)। [करिया + काकोर, करिया < *कालक]

करिकंबा—(वि०)—(शाहा०)। दे०—करकंबा। [करि-कंबा < *काल+कम्पा, कालक टलन्]

करिखा—(सं०) कालिख। करिखाह हाँडी करिखाइ हँड़िया = दुष्ट आँखों से फसल को बचाने के लिए खेत में रखी जानेवाली हाँडी। पर्या०—करखा, करखी (शाहा०), कारिख (गया), करखो (द०भाग०)। [कलिख (देशी), कालिख (हि०) कालक (संस्कृ०)]

करिवनाह—(सं०) दे०—करिनवाह।

करिनवाह-(सं०)-(पु०, पट०-४, चंपा०, मग०-५)।

करियवा—(वि०)—(१) काले वर्ण का पशु। दे०—कारी। (२) काले रंग का आम। [करिय + वा (वि० प्र०) वा < वत् < मान् < मतुप्, वा < वर्ण; करिय < कारी < काली]

करिया—(वि०) दे०—कारी। [करिया < कारी < काली]

करिया, कारी—(सं०) काली उड़द (शाहा०, द० पु० मैं०)। दे०—डंगा। [करिया < कारी < काली]

करिहस—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०-१)। [देशी]

करींग, करीन—(सं०) लकड़ी, टिन या लोहे की बनी हुई एक नलिका जो बीच में गहरी ऊपर खुली हुई तथा लंबी होती है और जिससे सिंचाई का काम होता है। इसकी लंबाई सात से लेकर नौ हाथ तक तथा चौड़ाई करीब एक बेढ़ फुट होती है (पु०, चंपा०, उ० बिहा०, मग०-५, पट०-४, मैं०-२, द०मुं०-१)। दे०—दोन।

करींग

करीनवाह—करीन चलानेवाला। [मिला०—कलिंज (देशी) = छोटी लकड़ी, कलिंज = बाँस का पात्र विशेष "कलिंजो वंशकरंडे" (पा० स० म०), कालिंदी (संस्कृत) = एक पात्र विशेष (मो० वि० हि०)]

करीक—(सं०) दे०—करींग।

करीन, करींग—(सं०)—(पु०, दर०-१)। दे०—करींग।

करींगवाह—करींग चलानेवाला।

करअइनी—(सं०) (१)—एक प्रकार का कीड़ा (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—करुकीट, एक प्रकार का मच्छड़ (मो० वि० हि०)]। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध पेड़ जिसकी दातून बनायी जाती है, फली तीखी होती है और नजर आदि से बचाने के लिए बच्चों के गले में तावीज की तरह पहनाई जाती है। [< *करंज (संस्कृ०), करंज, करंजवा, कहोजनी, डिठौरी (हि०), डहर करंज (बं०), कर जाते (मरा०), करमुनी (गु०), कंज (सिं०), पंग (त०) पोंगल (मल०)]

कढ़ुआ—(वि०)-(द० भाग०)। दे०—कारी। [कल + उआ (वि० प्र०) < काल, कालक]

कढ़ुआ तेलिया—(सं०) वह बैल, जिसकी पूँछ काली और अन्य अंग दूसरे किसी रंग के हों (पट०-१, मग०-५, पट०-४) [कढ़ुआ + तेलिया]

कढ़वार—(सं०) घास को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका गया टेढ़ा पतला लोहा। (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। पर्या०-कढ़वारा(प०) कढ़वारी (पट०, चंपा०, प० (मैं०), सुरा (द०-प० शाहा०), जोंक (पट०), जोंकी, चोकी (द०-पु० मैं०), नोंकी (उ०-पु० मैं०), करवार (शाह०)। [देशी], मिला०—कटकंक (= तराजू के डंडे के दोनों ओर की मुड़ी किनारी, मुड़े हुए हाथ को मुद्रा, करवार (हि०, देशी०)]

कढ़वार

कढ़वारा—(सं०)—(प०)। दे०—कढ़वार।

कढ़वारी—(सं०)—(पट०, गया, प०-मैं०)। दे०—कढ़वार।

करकरा—(सं०) एक प्रकार का खट्टा फल, जिससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं (दर०-१)। दे०—करौंदा। [< *करमर्द]

करवा—(सं०) वह बैल, जिसके पुट्ठे, गर्दन और पूँछ चमकदार हों (पट०-१)। [कल + वा (प्र०) < कल < *काल]

करेयवा सीम—(सं०) तरकारी के काम में आनेवाली मटर की छीमी की तरह फलनेवाली सेम (पट०-१)। [करियवा + सीम, करिय + वा (प्र०), करिय + वा < करिय + वा < कालिक; सीम < शिम्बि]

करैल-(सं०)-(दर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—करैला।

करैल—(सं०)—(१) (उ० पु० मैं०)। दे०—करैला [< *कारवेल्ल] (२) कुछ नीली-काली मिट्टी (प०)। [मिला०—करात (= केवाल मिट्टी; करात (=) कड़ा, ऊँचा)]

करैला—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की कड़वी तरकारी। इस लता की पत्तियाँ पाँच

नुकीली फाँकों में बटी होती हैं, इसमें लंबे-लंबे आकार के फल लगते हैं। छिलके पर लंबे-लंबे छोटे-बड़े दाने उभरे रहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक बैसाखी, जो फाल्गुन में क्यारी में रोपा जाता है और ज़मीन पर फैलकर फलता है। इसका फल कुछ पीला होता है। दूसरा बरसाती, जो बरसात में रोपा जाता है और झाड़ पर चढ़ता है। बारहों-मास फलता-फूलता है। कहीं-कहीं जंगली करेला भी मिलता है, जो छोटा तथा ज़्यादा कड़वा होता है। पर्या०—करैलो (शाहा०, द० भाग०), करैला (उ०-पू० मैं०, बर०-१, पूर्णि०-१)। करेल (बर०-२, पूर्णि०-१)। [<*कारवेल्ल, (संस्कृ०), कारवल्ल (प्रा०), करेला (हिं० पं०) करेली (मैं०), करला (बँ०), कलरा (ओ०), करेली (गु०, मरा०) करेली (सिं०), करविल्ल (सिंहा०), करेल्लु (कान०)]

करैली—(सं०)—(शाहा०, द० भाग०, पट०-४, मग०-५)। दे०—करैला। [<*कारवेल्ल]

करौंदा—(सं०) दे०—करौना।

करौना—(सं०) करौंदा, एक प्रकार का फल, जो छोटा, चिकना और स्वाद में खट्टा होता है। यह एक कँटीली झाड़ी में होता है (चंपा०-१, सम्य०)। पर्या०—करौंदा, करौंदा-(पट०-४)। करवना—(बर०-२)। [करमर्द (संस्कृ०), करमद्द (प्रा०), करौंदा, करौंदा, करौंद, करौना (हिं०) करमचा, करमिया (बँ०), करवंद (मरा०), करमदा, करमर्दे (गु०), करिजिगे (क०), कलर्वदे, वाक्का (ते०), करवंदा (मरा०)]

कलंबक लेंबू—(सं०) एक प्रकार का नींबू जो कुछ लंबा होता है (पट०-१) [कलंबक+लेंबू <कलंब (=शाक भाग)+निंबू]

कल—(सं०)-(१) वह यंत्र, जिससे ऊख पेरा जाता है। मिल। दे०—कोल्हू। (२) मशीन, (३) शांति, आराम। [कल्य (संस्कृ०) = बीज, दुरुस्त, ठीक, कल्ल (पा० प्रा०), कल (हिं०), कल (बँ०, कश्मी०, पं०), कल (ओ०, पं०, सि०) कल्प = स्वस्थ, कुशल।]

कलऊ—(सं०) दोपहर का भोजन (चंपा०-१)। पर्या०—कलउआ (मग०-५, भाग०-१) [कल+उ <कलेउ <कलेवा <*कल्यवर्त]

कलउआ—(सं०)-(मग०-५, भाग०-१)। दे०—कलऊ।

कलटरी—(सं०) भूमि पर निर्धारित राजकोष कर (पट०, गया, पट०-४, मग०-५) दे०—मालगुजारी। [कलटर+ई (प्र०) <*कॉलेक्टर (अं०)]

कलम—(सं०)—(१) रोपने के लिए प्रस्तुत धान के नये-नये बीज के पौधे (पट०, गया, शाहा०)। पर्या०—बेल (सम्य०)। (२) आम अथवा किसी दूसरे पौधे का दूसरे के साथ मिलाकर पैदा किया गया उत्कृष्ट पौधा। पर्या०—कलमी। (३) लेखनी। [<*कलम]

कलम, कलमी—(सं०) नील आदि की दूसरी या तीसरी फसल, जो दूसरे वर्ष में उत्पन्न होती है। [<*कलम]

कलमकाठी—(सं०) मोटे और लंबे अगहनी धान का एक किस्म। इसका चावल सफेद होता है। (मुं०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—सिरहुटी। (पट०-४)। [कलम+काठी]

कलमदान—(सं०) उजले रंग का एक उत्कृष्ट धान (कल०-१)। [कलम+दान <*कलम+धान्य]

कलमबाग—(सं०) कलमी आमों का बगीचा।

कलमी, कलम—(सं०)। दे०—कलम।

कलमी आम—(सं०) गुण और आकार के अनुसार आमों की एक मुख्य जाति, जिसमें मालदह, बंबइया, कपूरी आदि भेद होते हैं। यह आम के दो पौधों के योग से होता है। (बर०-१, पूर्णि-१, चंपा०, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, सम्य०)। [कलमी+आम; कलमी< कलम, आम <आम्र]

कलमी साग—(सं०) एक प्रकार का पानी वाला साग, जिसके ऊपर का भाग तोड़कर भाजी बनाई जाती है और वह पौधा बढ़ता जाता है। [कलमी+साग]

कलसा—(सं०)-(१) पेड़ की टहनी से निकला हुआ नया कल्ला (चंपा०-१) पर्या०—फुनगी, कली, कनखी (पट०-४, मग०-५)। [मिला०-कन्दल = नया अंकुर]। (२) पानी रखने

अथवा निकालने के लिए पीतल, ताँबा, मिट्टी आदि का बना बरतन। पर्या०—कलसा, कलसी। (३) घर, पूजा आदि पर प्रयुक्त कलश, जिसकी थंभों से प्रतिष्ठा करके उसी पर देवताओं की पूजा होती है। [कलश (संस्कृ०), कलस (पा०, प्रा०) कलश, कलस (हिं०, ओ०), कलश (असा०), कलशोटा (बँ०), कलसियो (गु०) कलश (मरा०)]

कलसा—(सं०) दे०—कलसा—१।

कलसी—(सं०) दे०—कलसा—२।

कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटे रंग का छोटा और बीच में सफेदी की पतली रेखा लिये होता है, इसकी पकी हुई दाल चिकनी होती है (पू० मैं०)। दे०—उरिद। पर्या०—कलाय (दर०-१)। [<*कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय बँ०) = उड़द]

कलाएल—(वि०) फसल की बाल का दूर होना (उ०-पू०)। दे०—[illegible]। पर्या०—बाहुलापन (पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कल्प (संस्कृ०), कला (हिं०)]

कलेउ—(सं०) दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त]

कलेवा—(सं०) प्रातःकाल का भोजन। पर्या०—कलेऊ, कली (मैं०), नाश्ता (पट०), कौआ (गया), ब्याईक (द० मुं०), कलौआ (द० भाग०)। दि०—'कलऊ', 'कलउआ', 'कलेऊ', 'कली', 'कलेवा' और 'कलौआ' शब्द 'कल्य' से संबद्ध हैं, जिसका अर्थ है—प्रातःकालीन भोजन, जलपान अथवा प्रातः काल। [<*कल्यवर्त = प्रातःकालीन भोजन]

कलोर—(सं०)-(१) [illegible] बाछी (प०, भाग०)। (२) [illegible] (शाहा०-१, द० चंपा०-१)। दे०—[illegible]। [<*कल्यवर्त]

कलौंजी—(सं०) एक सफेद अगहनी धान, जिसका दाना महीन और चावल साफ होता है पट०-१, मग०-५)। [मिला० कालजन् = एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०)]

कली—(सं०)—दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त]

कलौआ, कलोवा—(सं०)—द० भाग०, मुं०-१)। दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त]

कवछु या सेम—(सं०)—(उ० बिहा०)। दे०—कवाछ।

कवाछ—(सं०)—(१) सेम की जाति की एक फली। पर्या०—केवाछ, भूपसेम (गया), कटहुआ सेम (उ० बिहा०), कवाछि (पट०-४)। (२) एक प्रकार का जंगली पौधा। इसमें फल लगता है। इस फल के रोएँ के शरीर में स्पर्श करने से जोरों की खुजलाहट शुरू होती है तथा उस स्थान पर खुजलाकर उस उँगली से शरीर के दूसरे अंग को स्पर्श करने पर वहाँ भी खुजलाहट मालूम होने लगती है। [कपिकच्छु (संस्कृ०); कवाछु, कवाच, कौंच, कौंछ, केवाछ, केवाछु, किवाछ, किवाच (हिं०), आलकुशी, आलकुशी, शुकशिम्बी (बँ०), कुहिली, कवाच कुहिली, कुहिलीर बीज, कपाउ कुहिली, काच कुहिली, कवच (मरा०), नायकुरुणी, नसुकुनगुरी (क०); भुसगुंडी, पिल्ली अडुगु, दुलगुंडी (ते०); कवच्च, कौंच, कटछ, कमुच्च (गु०); पूनाइक का ली, पूनैकली (ता०); कौंच, केवांच (पं०); दूली (मं०)]

कवाछु—(सं०)—(शाहा०-१)। दे०—कवाछ। [<*कपिकच्छु]

कवाहल—(वि०) तंग होना (मुं० ५)।

कसइलिया—(सं०) कसैली की तरह छोटा-छोटा फलनेवाला आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [कसइली+आ (प्र०) < कसैली< कषायिका]

कसमिरा—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिससे रस्सी आदि बनाने के लिए रेशे-जैसी चीज निकाली जाती है (उ०-पू० मैं०, मग०-५)। दे०—सन। [देशी; मिला० = कश्मीरज]

कसर—(सं०) तौलने के बाद तराजू में अतिरिक्त (पाली की पूर्ति में) अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (द०, मैं०-२)। दे०—चहुआ। [कसर (अ०) = [illegible], घाटा, हानि]

कसाई—(सं०) पशुओं का वध करनेवाला मनुष्य। दि०—किसान लोग क्रोध में निर्दयी कार्यकारी पशुओं को यों ही गाली देते हैं—'जाहु कसैया लू'टा'—(तुम कसाई के खूँट

पर जाओ, अर्थात् आकर काटे जाओ)।
[कतर्ई, कतरात (अ०); मिला०—√कत (हिलाना)]

कसैया—(सं०) दे०—कसाई।

कसौंजी—(सं०)—(१) खेतों पर उपजाई जानेवाली ईषद् श्वेत-रक्त, एक मोटा अगहनी धान, जिसका चावल उजला और सुगंधित होता है। (२) चकवड़-जैसा पौधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रक्त होती हैं। [मिला०—कसौंजी < कासमर्द (संस्कृ०)= चकवड़-जैसा एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियाँ ईषद् हरित-रक्त होती हैं। संभवतः यह धान भी ईषद् श्वेत-रक्त होने के कारण 'कसौंजा' कहलाता है।]

कसौंहा—(सं०) एक प्रकार का मोटा अगहनी धान (बर०, पूर्णि०-१)। दे०—कसौंजी। पर्या०—जड़हन (पट०-४)।

कस्तूरा—(सं०) एक प्रकार का पौधा। यह तीन-चार हाथ ऊँचा होता है तथा इसके फल कँटीदार होते हैं। जानवरों के 'कोरहा' रोग में इसका डंठल गले में बाँधा जाता है (पट०-१, मग०-५)। पर्या०—फरहद (पट०-४, मग०-५) [देशी]

कहरनी—(सं०) एक प्रकार का धान (बर०, पूर्णि०-१, पट०-४)। [देशी]

कहार—(सं०) गाँवों में बसनेवाली एक जाति, जो खेती-बारी या नौकरी-चाकरी करती है। [कहार < कहार (वैदि), कहार (बरा०, हि०, मं०), कादार (बँ), कहाल (को०), कहास (सि०)]

कहेरिया—(सं०) वह बैल, जिसका रूप-रंग चीते की तरह हो (पट०-१)। पर्या०—बगचलवा (मं०)[कहेरि + या < केहरी < *केसरी]

काँकड़ि—(सं०) एक प्रसिद्ध लंबा फल, ककड़ी (बर०, पूर्णि०-१)। [*कर्कटी]

काँकरि—(सं०) दे०—ककड़ी। [*कर्कटी]

काँगी—(सं०) (१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपरी भाग को काट लेने के बाद उसमें से निकला हुआ अंकुर या नई पत्ती (द० मं०, मग०-५, चंपा०, मं०-२, पट०-४, भाग०-१)। दे०—बौंगी। (२) मकई से निकलनेवाले बाल का अंकुर (सा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२, चंपा०-१, भाग०-१)। [< *कणाग्र < कणतांकुर]

काँच—(वि०)-(बर०-१, पूर्णि०-१)। दे०—कच्चा।

काँजीहाउस—(सं०) वह घिरा स्थान या बाड़ा, जहाँ दूसरे की फसल आदि चरनेवाले मवेशी बाँधे जाते हैं, मवेशियों का जेल। दे०—कनगहा। [कांजन (= कान्ह) + हाउस (अं०)]

काँट—(सं०)—(१) एक प्रकार का कँटीला पौधा (चंपा०-१, मं०-२)। (२) किसी पौधे या फल आदि का नोकीला कड़ा भाग, जो गड़ता है। पर्या०—कँटा, काँटा (पट०-४, मग०-५, मं०-२)। [< *कंटक]

काँटा—(सं०)-(१) तौल करने का बड़ा तराजू। जिसमें अन्न तौलने का यंत्र (बिहू०, रां०, हरि०, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—रातल (रां०), रातल (भोज०, मग०)। (२) एक कँटीला पौधा (पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)। दे०—कंटा, काँट। [< *कंटक]

काँटाघर—(सं०) चीनी की मिल में वह घर, जिसमें ऊख तौलने का काँटा रहता है (बिहू०, रां०)। पर्या०—रातलघर (मं०)। [काँटा + घर]

काँड़—(सं०)-(१) चारे के लिए काटे गये अनेक के डंठल की एक राशि (द०-पू० मं०)। दे०—गाँज। (२) खलिहान में राशिकृत फसल के बोझों का ढेर (चंपा०, पू०)। दे०—गाँज। (३) वह रस्सी, जिसमें दौनी के लिए बैल बाँधे जाते हैं (चंपा०, गया)। दे०—मेंजा। (४) मवेशी को दवा पिलाने का बाँस का चोंगा (मुं०-१)। [काण्ड, दंडाकांड]। (५) चूहे का बिल (चंपा०-१, मग०-५, मं०-२)। [काण्ड = जोड़, मंडल, पुंज, काण्डिन् = = बिल (मो० वि० वि०)]

काँड़ना—(क्रि०)—(१) धान के कटे पौधों का पुंज बनाना (मुं०-१)। (२) काँड़ से दवा पिलाना (मुं०-१)। [*काण्ड = पुंज]

काँड़ल—(क्रि०) लात से रौंदना (चंपा०-१)। [< *कंडन < √कंडि]

काँढ़ा—(सं०) कोल्हू की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (द०-प० मं०)। दे०—मेंढ़ा। [< *कटक]

काँड़ा, काँड़—(सं०)—(१)-(चंपा०, गया)। दे०—मंडा, काँड़ा। (२) मूँज का डंठल, जो घर छाने और टट्टी बाँधने के काम में आता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। (३) काल के कटे हुए पौधों का पुंज या ढाल (मुं०-१) (४) गोड़ाई। ढेर का एक आयुधक (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [< *काण्ड < *कटक]।

काँड़ी—(सं०)—(१) पशुओं को दवा आदि पिलाने के लिए बनी बाँस की नली (चंपा०, शाहा०, पट०-४, मग०-५, मं०-२, भाग०-१)। पर्या०—ढरका (उ०चंपा०, शाहा०)। [काँड़ + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)। [< *काण्ड, < *दंडाकांड] (२) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है (द०-प० शाहा०, भाग०)। दे०—ओखरी। (३) चूहे के बिल का मुख्य द्वार के अतिरिक्त एक गुप्त द्वार, जिससे होकर, वहाँ धोखा पड़ने पर, निकल भागे (चंपा०)। (४) हाथी के पैर का एक रोग। इसमें हाथी के पैर में छेद हो जाता है (चंपा०)। [काण्ड, मिला०—कांडाकाल(= बेंत या सीक की काली)]

काँड़ी

काँपी—(सं०) कोल्हू के बैल के जुआठ (कधुर) पर का उठा का नाड़ा (पट०-४)। [कम्पा; कम्पन, स्कन्ध]

काँसी—(सं०) दे०—काशी।

काँसा—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुँचानेवाली एक प्रकार की घास (द० मं०, पट०, गया, द०-पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कन-सन। [काँस + ई (स्वा० प्र०) < *काश]

काउन—(सं०)—दे० काऊन।

काउर—(सं०) धान की दौनी में भूसा निकाल लेने के बाद बचा हुआ उसका महीन अंश (चंपा०-१)। [देशी]

काऊन—(सं०) बाजरे की जाति का, सूक्ष्म दानोंवाला एक अनाज (द० मुं०)। दे०—टँगुनी। पर्या०—काकन (बर०, पूर्णि०-१), कौकनी (बर०, पूर्णि०-१)। [कङ्गु]

काकुद—(सं०) चारा काटने का एक औजार (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [देशी]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छिलका पतला होता है (बर०, पूर्णि०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मं०-२)। पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१)। [कागज + ई (प्र०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट०-१)। दे०—कागजी। [कागजी + लेम्बो]

काग-बदन—(सं०) वह बैल, जिसका मुँह काला और शरीर उजला हो (पट०-१, पट०-४)। [काग + बदन < काक + वदन]

काछ—(सं०) दलदल जमीन (भा०, मग०-५)। दे०—सील। पर्या०—कछुई माटी (पट०-४, मग०-५) [< *कच्छ]

काछल—(क्रि०)-(१) खेती की फसल में से मलीन या उठाना या बटोर करना (द० प०, द०-प० मं०)। दे०—उठावल। (२) किसी तरल पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पतली वस्तु से निकालना। [कक्ष]

काछल—(वि०) वह मवेशी, जो काम करते-करते थक जाता है या बैठ जाता है। सुस्त होता है तथा काम से जी चुराता है (चंपा०-१)। पर्या०—कोढ़िया, कदरा (पट०-४, मग०-५)। [< *कक्ष]

काटल—(क्रि०)—(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का पत्ता काटना। दे०—पताकुच। (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना। (३) फसल काटना। पर्या०—लौनी करल (द०-प० शाहा०); कोलल (क्रि०)= फसल काटना (द०-प०); गेंड़ा करल (प०, पट०, गया, चंपा०, द० मुं०); पूर काटल (द० भाग०); पतीर पारल—ऊख काटने की क्रिया (द० भाग०); कटनी, कटिया, लौनी—फसल की कटाई। कटनी = फसल के कटने का समय। [काटना (हि०) < √कृती (छेदने)]

काढ़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। पर्या०—काड़ी (स्त्री०) (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। दे०—काढ़ा। [< *कटाह; "कटाह: कूर्मकर्परे ।" आपस्तम्ब-नियमात् [illegible] (मेदि०)]

काढ़ी—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काढ़ा। [काढ़ा + ई (प्र०), काढ़ा < *कटाह]

काड़—(सं०)—(१) हरिस में पानी बाँधने के लिए हरिस के नीचे की ओर का कटा हुआ अंश। दे०—बेड़ा। (२) दे०—काढ़। [काढ़ < *कर्षं < √कृष्]

काड़ा—(सं०) (१) कतरी के अंत में एक पतवाड़ से बँधी हुई रस्सी, जो बैल के जुआठ (पखुर) से होकर फिर कतरी के एक छेद से बाँधी जाती है। (२) दे०—बेड़ा। (३) बँधे हुए पानी के निकास के लिए काटी गई नाली। पर्या०—कनमोरी (मुं०-१)। [< *कर्षं < स० कर्ष् < √कृष्]

कातर—(सं०) ऊख के कोल्हू का वह समतल तख्ता, जिसपर बैल हाँकनेवाला बैठता है। पहले चौड़ा तख्ता होता था, किन्तु आजकल बीम-जैसी गोल लम्बी लकड़ी लगी रहती है। दे०—कतरि। [कत + तर < स० कात्र + तरु, तर् = काटनेवाला (हिं० श० सा०)]

कातर—(सं०)—(शाहा०, द०-पू० मैं०, द० भाग०, प्र.अ०)। दे०—कतरी। [कत + तर < *कातृतर, त्र् = काटनेवाला (हिं० श० सा०)]

कातरि—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू का वह समतल तख्ता, जिसपर बैल हाँकनेवाला बैठता है। आजकल बीम-जैसी गोल लम्बी लकड़ी लगी रहती है। पर्या०—कातर, कतरी। (२) (शाहा०, द०-पू०मैं०, द० भाग०)। दे०—कतरी। [कत + तरि < *कातृतल]

कातिक—(सं०) कार्तिक, भारतीय वर्ष का आठवाँ और शरद्-ऋतु का अंतिम महीना (अक्टूबर के अंत का और नवम्बर के आदि का प्रायः ३० दिन)। इस मास की पूर्णिमा को प्रायः कृत्तिका नक्षत्र हुआ करता है, अतः कार्तिक नाम पड़ा। [*कार्त्तिक < कृत्तिका < कृति < √कृती (छेदने) + कन् (प्र०)]

कादी—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादी।

कादो—(सं०)-(१) धान रोपने के लिए खेत को पानी से भरकर इस प्रकार जोतने की क्रिया, जिससे घास-पात न रहने पावे, जमीन खूब गीली तथा मुलायम हो जाय एवं पौधे आसानी से रोपे जा सकें (उ०-प०, मैं०)। दे०—लेव। (२) वह कीचड़, जिसमें धान की कसाव होती है। पर्या०—कदोई, कदई। (३) कीचड़ (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-५)। पर्या०—कादो, कानो (भोज०)। [< स० कर्दम]

कादो करब—(मुहा०) धान की रोपाई के लिए खेत को तैयार करना। पर्या०—कदुआ करब, लेव करब (पट०), कसाढ़ करब (चंपा०)। [कादो + करब < कर्दम + < √कृ]

कान—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कान्ह। [< स० कांड, < स० कर्ण, < स० स्कन्ध]

कान, काना—(सं०) बेंकुल के आगे के ऊपर की शाखा, जिसपर बेंकुल लटकता है। पर्या०—काना, कानी, कन्ना, कन्नी, कुकाठी, ढेंकानी (चंपा०, द०-पू०)। [< स० काण्ड, < स० कर्ण, < स० स्कन्ध]

कानर—(सं०)-(१) वह गहरा स्थान या जल-स्थान, जहाँ करीब आदि से पहले पहल पानी गिराया जाता है (द०-पू० मैं०)। (२) वह कच्चा कुआँ, जिसकी बाँध की पट्टी या तलों को पत्तों से बने पेरे से बाँध दिया जाता है, जिससे कि मिट्टी नीचे गिरने न पावे। यह 'पेरा' 'डोभ' कहलाता है (भाग०-५)। (३) खेत में अथवा नदी के किनारे नदी के पानी से सम्बद्ध खोदा गया खोदा कुआँ (पट०-४)। [< *कन्नर (?) स्कन्ध]

काना—(सं०)—(१)—(चम्पा०, मैं०, द० मुं०, चंपा०-१)। दे०—कनवा। [देशी] (२)—(मैं०, पट०, पू०)। दे०—कनवी। (३) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (पट०)। दे०—ढोला। (४) दे०—कान। (५) कनहा—(वि०) वह फल जो कीड़ा से सड़ा हो (मुं०-१)। [< स० कर्ण, कण, स्कन्ध]

कानी, कन्ना—(सं०)-(१) कुएँ के ऊपर लगी लाठी की एक शाखा (मोक), जिसपर घिरनी चलती है। (२) बीरन, पेड़-पौधों की नई शाखा (मुं०-१, पट०-४, भाग०-५)। मुहा०—कानी निकलब या फुटब—नई कोंपल निकलना, नई शाखा निकलना। [< स० काण्ड, < स० स्कन्ध]

कानी, कन्नी—(सं०)—(पट०-४, भाग०-५, मैं०-१)। दे०—कान। [< *कण्णड्, < स० स्कन्ध]

कानी हाउस—(सं०) दे०—कांजी हाउस, कइघरा।

कानू—(सं०)—(१) कोल्हू के लिए ऊख के गँडेरों के टुकड़े काटनेवाला व्यक्ति (द० मैं० शा०)। टि०—ऊख को काटकर पेरने की प्रक्रिया पहले थी। लोहे के कोल्हू का प्रचलन होने पर आजकल सीधे ऊख कोल्हू में लगाया जाता है। पर्या०—पछुवाह (चंपा०), गेंड़िकाटा (प०), गँगरवाह (प०), ढोनवह (कहीं-कहीं), ढोनिकहा (द०-प० मैं०), मजूरा (उ०-प० मैं०), जन (उ०-पू० मैं०)। (२) एक विशेष जाति, जो भूँजा भूनने का व्यवसाय करती है। पर्या०—कनुअन, कनुनियाँ, कानुन (स्त्री०)। [< *कान्दविक < *कन्दु]

कानो—(सं०) कीड़ा लगा हुआ ऊख का पौधा (द० भाग०)। दे०—ढोला।

कानो—(सं०)—(भोज०)। दे०—कादो। [कादो, कर्दम]

कानो-किचकिच—(सं०) किसी पोखरे के तल की पंकिल जमीन (प०)। दे०—हरी। [कानो + किचकिच, < कादो + कीचड़ (हिं०) < *कर्दम + कच्छ]

कान्ह—(सं०)—(१) ऊख के कोल्हू के पेट में रहनेवाले मोहल (जाठ) के मुँह के ऊपर का बढ़ा हुआ भाग। पर्या०—कंधा (मं० उ०, पट०), कनिहया (उ०-प० मैं०), पेंआ (द०-पू० मैं०), कान या कोंगरा (शाहा०), मोहलपक्खा (गया), ढेबा (द० मुं०)। (२) कोल्हू के जाठ (मोहल) के ऊपर का बढ़ा हुआ भाग। कन्धा। [< *काण्ड, < *स्कन्ध] टि०—आजकल ऊख पेरने के लिए लोहे के कोल्हू के प्रचलन के बाद तेल के कोल्हू की तरह उस कोल्हू में जाठ आदि नहीं होते हैं, बल्कि सभी पुर्जे लोहे के होते हैं।

कान्ही—(सं०)-(१) ऊख के रोपने में प्रयुक्त दो हलों में से पिछले हल से चारों ओर से बँधा हुआ घास का बंडल, जो हल से किये गये कराह (सिराउर) को विस्तृत करता है (प०)। पर्या०—काँधी, कान्ही के हर। (२) पोखर या नदी का ऊँचा किनारा (चंपा०-१)। [< *स्कन्ध, < *काण्ड]

कान्ही के हर—(सं०)—(प०)। दे०—कान्ही। [कान्ही + के + हर]

काबिल लगान—(वि०) वह जमीन, जिसकी मालगुजारी लगती है, लगान लगने के योग्य (शा०-१)। [काबिल + लगान]

काबिस—(सं०) लाल मिट्टी (द० प० शाहा०, भाग०)। दे०—कलकी मिट्टी। पर्या०—काबिस (चंपा०, मैं०-२)। [< *कपिश]

कामत—(सं०)—(१) घर से दूर की जमीन की देखभाल और व्यवस्था के लिए उसी स्थान पर बनाई गई छावनी, जहाँ किसान या उसका प्रतिनिधि, माल-मवेशी और खलिहान आदि होते हैं। एक तरह की जिरात या जागीर की जमीन (शा०-१)। [तुल०—< 'कमान'- (नेपा०), < कमाना (हिं०) ?]

कामती—(सं०) खेत खलिहान में मजदूर से काम करानेवाला हकदार (द० मुं०)। [कमाना (हिं०) < स० कर्मन्]

कामदार—(सं०) मिल में नियुक्त वह कर्मचारी, जो मिल की ओर से गाँवों में घूम-घूमकर कृषकों को विशेष ऊख का प्रचार-प्रसार, उसके बुन, गड़ी का प्रकार, कोड़नी सिंचाई और खाद डालने आदि का ढंग सिखलाया करता है (चौ०, भाग०-५)। [काम (हिं०) + दार (फा० प्र०)]

कारपरदाज—(वि०)-(१) सरकारी मालगुजारी वसूल कर राजकोष में जमा करनेवाला। दे०—अमलदार। (२) अदालत में जाकर अपना या किसी दूसरे का मुकदमा देखनेवाला व्यक्ति (भाग०-५, सम्भव भी)। [कार + परदाज (फा०); मिलाओ—कार < कार्य]

कारागोरहा—(सं०) छींटकर (बावग) बोया जानेवाला निकृष्ट प्रकार का काला धान (पट०)। दे०—कलकोरिया। [करा + गोरहा, करा < काला; गोरहा (संथा०) < ?]

कारी, करिया—(वि०)—(१) काली जमीन (शाहा०, द०-पू० मैं०)। दे०—डंगा। (वि०) काला, काले वर्ण का अनाज, पशु आदि। [करी < कालो < *काल]

कारीबांक—(सं०)—(१) एक उत्कृष्ट कोटि का धान, जो काले रंग का होता है और जिससे विशेष प्रकार की सुगंध निकलती है (पट०-१, पट०-४,* भाग०)। (२) पौधा जानेवाला

एक प्रकार का धान (द० मुं०)। [काली + बाँक < काली < काल; बाँक < बंक < वक्र]

कालक—(सं०) एक प्रकार की घास (दर०, पूर्णि०-१, भाग०)। [देशी]

काला—(सं०) काली वस्तु (गया)। दे०—ढंग। (वि०) काले वर्ण की वस्तु। [< *कालक]

कालाकंद—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। पर्या०—कलाकंद (भाग०-५)। [काला + कंद < *कालाकंद (?)]

कालागीर—(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन-चैत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है (द० पू० मुं०)। दे०—अगहन-गीर। [देशी (?), मिला०—कालगिरि]

कालापहाड़ आम—(सं०) एक प्रकार का आम। यह बड़ा और काला होता है (पट०-१, चंपा०)। [काला + पहाड़ + आम]

काश्तकार—(सं०) दे०—असामी। [काश्त + कार (फा०); मिला०—कर (संस्कृ०) < √कृ]

काश्तकारी—(सं०) वह जमीन, जिसकी लगान जमींदार को देकर उसपर स्वत्व प्राप्त किया गया हो (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१, चंपा०)। [काश्त + कार + ई (प्र०) (फा०)]

कास—(सं०)—(१)—(शाहा०, उ० बि०)। दे०—कसगर। (२) शरद् ऋतु में फूलनेवाली एक प्रकार की कुश की जाति की घास। [काश, कास]

कासचराई—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (मुं०, पट०, पू०, मग०-५)। दे०—चरचरी। [कास + चराई]

कासनी—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका उपयोग औषधों में होता है। [कासनी (फा०)]

काहचराई—(सं०)-(मुं०, पट०, पू०)। दे०—चरचरी। [काह (फा०) + चराई (हि०) < चारण; काह < कास (संस्कृ०)]

काहू—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका बीज औषधों में प्रयुक्त होता है (पट०, गया, मग०-५)। [फा०]

किआली—(सं०)—(१) गाड़ीवालों के द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला आवागमन-शुल्क (उ० पू० मुं०, चंपा०)। (२) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर। पर्या०—कैयाली, बरदवाना (पट०)। टि०—कभी-कभी, गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ-जहाँ रात बिताते थे, वहाँ-वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था। [(देशी); मिला०—किराट = बनिया (मो० वि० वि०)]

किचराइल—(क्रि०)—(१) आकाश में यत्र-तत्र मेघ का नजर आना (चंपा०-१, पट०-४)। (२) आँख से कीचड़ निकलना (चंपा०-१)। [किचड़ + आइल (प्र०) < कीचड़ (हि०)]

किछार—(सं०) नदी या पोखरे का किनारा (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [किछार < कछार < *कच्छ]

किता—(सं०)—(१) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग (पट०, पट०-४, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१)। दे०—चक। (२) भू स्वामी का गाँव में बिखरा हुआ खेतों का प्रत्येक टुकड़ा। दे०—चकला। [कता (अ०)]

किनल—(क्रि०) खरीदना। दे०—कीनना। [क्रयण < क्री (= क्रीणाति), किणति (पा०), किणइ (प्रा०), किनना (हि०), किनु (बं०), किना (अ०), किनिय (ओ०), कानुन (कश्मी०), किनेल (रोमा०)]

किनावल—(क्रि०) किनल क्रिया का प्रेरणार्थक रूप; खरीदवाना।

किनार—(सं०) नदी आदि का किनारा।

कियारा—(सं०) ऊख के खेत में बनी हुई क्यारी (पू० मुं०)। दे०—हाताबाला। [< *केदार]

कियारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े। पर्या०—पहुरी (चंपा०), गोंढारी (पट०, द०-पू०), गोंढारी (गया)। (२) खेत पटाने के लिए खेत में बनी हुई नाली (बिहा०, भाग०)। पर्या०—केयारी (द० भाग०)। [< *केदार]



कियारी

कियाल—(सं०) अनाज को तौल-तौल कर बेचनेवाला (मुं०-१)। [मिला०—किराट (शा० क०) = बनिया। मिला०—काकिनी—"काकिनी पणपादं तु मानमर्धं कराटकं"—(बौध०)]

कियाली—(सं०)—(१) गाड़ीवालों द्वारा प्रति लदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यातायात-शुल्क (उ० पू० मुं०)। (२) अनाज आदि तौलने का काम या उसकी मजदूरी (द० मुं०-१)। (३) अन्न-विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर। पर्या०—कैयाली, बरदवाना (पट०)। टि०—कभी-कभी गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ रात बिताते थे, वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था। [(देशी), मिला०—किराट (शा० क०) = बनिया, काकिनी—"काकिनी पणपादंऽपि मानमर्धं कराटकं"—(बौध०)]

किराइल—(वि०) कीड़ा लगा हुआ (शा०-१)। पर्या०—खराब, घिनुआइल, घुनाइल। [किर + आइल (प्र०) < *कीट]

किराइल—(क्रि०)—(१) कीड़ा लगना (चंपा०-१)। [किरा + इल (प्र०) < कीट]

किराना—(सं०) पसारहट्ट की वस्तुएँ, फुटकर विक्रय-पदार्थ (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [< *क्रयणं]

किराया—(सं०)—(१) जमींदार की ओर से अन्नविक्रेता की माप पर निर्धारित कर (गया)। दे०—कौड़ी। (२) किसी वस्तु या मकान आदि का भाड़ा। [अ०]

किरौना—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि पर प्रहार करता है (द० प० शाहा०)। दे०—कीड़ों का नाम। [किर + औना (प्र०, देशी) < *कीट]

किरौयाँ—(सं०) एक प्रकार का अन्न (दर०, पूर्णि०-१)। [देशी]

किर्री—(सं०) मकई, मटर आदि का अधपका फलना। पर्या०—खखड़ी (मुं०-१, भाग०-५, भाग०-१), कुर्री, ढोढी (पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। [(देशी), मिला०—किलक (संस्कृ०)]

किल्ला—(सं०)—(१) (द०-पू० मुं०)। दे०—अखोड़ा। (२) पानी पटाने के काम में आनेवाले लाठे के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसके सहारे किरुड़ी आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, द०-पू० पट०-४, मग०-५)। (३) मवेशियों को बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना छोटा खंभ (खूँटा), जो जमीन में गड़ा रहता है। दे०—खूँटा। (४) जाँता के दोनों पाटों के बीच के छेद में लगा खूँटा। (५) कुम्हार के चाक की धुरी (पू०, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। दे०—कील।



किल्ला

[< *कील, < *कीलक (संस्कृ०), कीला (पा०, प्रा०), कील, किल्ली (हि०), किली (बं०), कील (पं०), कीला (सि०), कीलिबा (ओ० क्रि०) = कील ठोंकना; कील, कीरो, कीरी (सि०), कीलना, कीलणी (पं०), किल्लु, किल्ली (म०), कीली (गु०), किल्ली, कील (मरा०), कलुम (कश्मी०), किलो (रोमा०)]

किल्ली—(सं०)-(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिसमें मोड़ रस्सी में बाँधा जाता है। पर्या०—गुल्ली। [कील, कीलक] (२) जुए में आर-पार लगी हुई लकड़ी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। पर्या०—शुल्ली, सैलकल्ली, गुल्ली (द० भाग०)। (३) एक तरह, जो अपनी जगह पर 'कातड़ी' को बने रहता है। दे०—करकिल्ला। [कील, कीलक, कीला]

किसान अरपन—(सं०) कृष्ण की पूजा के निमित्त अर्पित कर-मुक्त भूमि। दे०—संकल्प। [किसान + अरपन < कृष्णार्पण]

किसमिस—(सं०) एक प्रकार का सूखा और मीठा मेवा, जो अंगूर को सुखाकर बनाया जाता है। यह कंधार, बलूचिस्तान, पाकिस्तान के पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और अफगानिस्तान के इलाके में होता है। [किशमिश (फा०)]

किसमिसिया (सं०) वह रंग, जिसका रंग किशमिश की तरह हो (पट० १)। [किसमिस + इया (प्र०) < किशमिश]

किसान—(सं०) कृषि-कार्य करनेवाला, खेती-बारी करनेवाला। [कृषाण, कृषाणु (शायक); किसान (हि०, बं०), किसान (मरा०), किसान (गं०); मिला०—चास (बिहा०)<कर्ष ६]

किसानी—(सं०) किसान का काम।

किसुनपख—(सं०) भादमास के पन्द्रह दिनों का एककालिक परिमाण, जिसमें चंद्रमा की कला घटती रहती है, कृष्णपक्ष। दे०—पख। [किसुन+पख, पच्छ <*कृष्ण-पक्ष]

किसुनपच्छ—(सं०) दे०—किसुनपख।

किसुनभोग—(सं०) एक प्रकार का आम, जो बड़ा, कुछ गोलाकार और गूदेदार होता है (पट०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१)। [किसुन+भोग<*कृष्ण भोग]

किसोरी—(सं०) एक जंगली फल, जिसकी तरकारी होती है (पट०-१)। पर्या०—केसौरी (मग०-५)। [देशी, मिला०—किसोर (?)]

किस्त—(सं०) निश्चित मुनाफे के साथ निश्चित समय पर दिये जानेवाले कर्ज का कुछ निश्चित अंश। पर्या०—किस्तबंदी। [किस्त-(अ०)]

किस्तबंदी—(सं०)—दे०—किस्त। [किस्त+बंदी <किस्त (अ०)+बंदी (फा०); मिला०—बंद <बंध (संस्कृ०)]

कीच—(सं०)—(१) किसी पोखरे के तल की गीली जमीन (शाहा०)। दे०—... । (२) जल के नीचे की अथवा जल सूख जाने पर की गीली मिट्टी। (३) गीली मिट्टी, कादो, पंक। [कीच <कीच् <कीचड़ (हि०) <*कच्छ]

कीजल—(वि०) कचोरना (सा०-१, चंपा०-१, ह० मुं०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२, भाग०-१)। दे०—किचला। (वि०) कचोरा हुआ। [...<√कृ]

कीरी—(सं०) कृषि का एक भेद (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कीरि (ह० भाग०)। [<*कीट <*किरि (संस्कृ०), कीट, कीटक (पा०), कीड, कीडअ (प्रा०), कीड़ा, कीड़ी (हि०, बं०, ग०), कीड़ो कीडी (गु०), कीड़ा, किरा (बं०), कीड़ (मरा०), किरो (नें०, कुमा०), कीरो (सिं०), किरी (गोमा०)]

कीरो—(सं०)—(ह० भाग०)। दे०—कीरी। [<*कीट, <*किरि]

कील—(सं०) धुरी के अंत में पहिये के बाद लगी हुई कील, जो पहिया को गिरने से बचाती है (शाहा०)। दे०—धुरकिल्ली। [<*कील, <*कीलक]

कीला—(सं०) चाक की धुरी। पर्या०—बिरला (चं०, दर०-४, मग०-५), खूँटी या खुड़ (पु०), सिल्ला (ह० भाग०)। [<*कील, <*कीलक]

कुँआ—(सं०) जल की प्राप्ति के लिए खोदा हुआ गोलाकार गहरा गड्ढा, जिसमें जल रहता है (चंपा०-१)। [कूप]

कुँजड़ा—(सं०) तरकारी बेचनेवाले मुसलमानों की एक जाति (पट-४, मग०-५, मुं०-२, चंपा०, भाग०-१)। पर्या०-कुंजड़ा (दर०-१, पूर्णि०-१)। [कुँज+ड़ा (प्र०) <*कुञ्ज=निकुञ्ज, <*कुञ्ज <*कुञ्जिका=गुंजा, कोमल-जाति का शाक (मो० वि० वि०)। कान्ती (मरा०), कछियो (गु०); <कच्छ; मिला०—कुँज (फा०)]



कुँजड़ा

कुँड़—(सं०) ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (पु०)। दे०—... । [कुण्ड]

कुँड़मुंदन—(सं०) सावन के अंतिम दिन का एक उत्सव, जिसमें किसान खेतों में से थोड़ा-सा बचाकर बीज लाकर एक कूँड़ में डाल देता है, तत्पश्चात् अनेक प्रकार का भोजन तैयार कराता है और सभी लोगों के साथ मिलकर खाता-पीता है। पर्या०—कुँड़मूनन, हर-सोधन (चंपा०)। [कुँड़+मुँदन <कुंड+मुद्रण]

कुँड़मूनन—(सं०)-दे०—कुँड़मुँदन। [कुँड़+मूनन <कुंड+मुद्रण]

कुँड़ा—(सं०)—(१) वह बरतन, जिसमें ऊख का रस चूता है (शाहा०, च०-मुं०, पट०, पट०-४)। दे०—कोहा। (२) चावल की महीन चूनी। [कुण्ड]

कुँड़ी—(सं०) चावल की महीन चूनी। [कुण्ड]

कुँड़िया घास (१) (सं०)—कूएँ के चारों ओर वाली भूमि (ह० भाग०)। पर्या०—मोटवाही (च०)। [कुँड़िया+घास; कुँड़िया <*कुंड, घास (देशी)]

कुँड़ियाठी—(सं०) (गं० प्र०)। दे०—कनेठी। [कुँड़िया+ठी, आठी (प्र०); यथा-गुजआठी= गूँजने की सीकी का बंडल अथवा गुच्छी। आठा ठी, आठी <*आवेष्ट, ग्रंथि]

कुँवी—(सं०)—दे० कूँड़।

कुँड़ी—(सं०) (१)—ईकुल (काठ) में लगा हुआ, पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र। दे०—कूँड़। (२) हेंगा खींचने के लिए रस्सी की जगह पर काम में लाई जानेवाली लोहे की लम्बी (ह० मुं०)। पर्या०—बँधजोती (ह० भाग०), कटौआ। (३) किवाड़ के दोनों पट्टों को बंद करने के लिए सिकड़ी लगाने के निमित्त चौखट में जड़ी कील। [(देशी) मिला०—कुँड़ी (हि०), <*कुण्ड]

कुंद—(सं०) चंपा की जाति का एक फूल, कुन्द (दर०-१, मग०-५)। [<*कुन्द]

कुँदरी—(सं०) तरकारी के काम में आनेवाली एक फली (मुं०-१, पट०-१, पट०-४ मग०-५, मुं०-२, चंपा०, भाग०-१)। [कुन्दुरु]

कुआँ—(सं०) गहरा खोदा हुआ गोलाकार (कच्चा या पक्का) गड्ढा, जिससे पानी निकाला जाता है। (बिहा०, शाह०)। दे०—कुँआ। [कूप]

कुआर—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ तथा शरद् ऋतु का पहला महीना। (अधिकतर सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५ दिन)। दे०—आश्विन। [कुमार (?)]

कुआरी—(सं०) आश्विन में काटा जानेवाला एक धान। पर्या०—धसली (पट-४, मग०-५)। [कुआर+ई (प्र०) <कुमार (?)]

कुइयाँ—(सं०) दे०—कनवा। [कु+इयाँ (अल्पा० स्त्री०) <कुआँ+इयाँ <*कूप]।

कुकरौंधा—(सं०)—(१) एक पशु-खाद्य घास। इसका दवा में भी प्रयोग होता है (पट०-४, भाग०-५, मुं०-२)। [कुकुर+औंधा <*कुक्कुर]

कुकाठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर रख चारा काटा जाता है (पट०)। दे०—निसुहा। पर्या०—कुकाठी (पट०-४)। [कु+काठ <काष्ठ]

कुकाठी—(सं०)—(पट०-४)। दे०—कुकाठ। [कुकाठ+ई (प्र०)-(देशी) या <कुकाष्ठ (?)]

कुकुरी—(सं०) कपास में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (सा०, मुं०)। [(देशी), मिला०—कुकुर=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० वि०)]

कुकुरौना—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा०-१)। दे०—कुकरौंधा [कुकुरौना <कुकुरौंधा <*कुक्कुरन्द]

कुकुन्ना—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (ह०-पू० शाहा०)। [(देशी), कु+कुन्ना <कुना (?)]

कुकुही—(सं०) ईख के जनाव को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (उ०-पू०)। [<*कुक्कुटी]

कुच्चा—(सं०) कच्चे बाँस को कूच कर बनाया हुआ औजार या झाड़ू (पट०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, ह० भाग०)। [कूच्चा (बिहा०), कूच्चा (हि०) <√कुच् (?)]

कुटकटना—(सं०) लकड़ी का कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (भाग०-५)। दे०—ठेहा। [कुट+कटना <कुट <कुट्टी; कटना <काटना (बिहा०) <काटना (हि०)]

कुटका—(सं०)—(१) भारतीय फसल (मकई आदि) का डंठल (सं० प्र०)। दे०—डांठ। (२) विभिन्न जड़ी-बूटियाँ, जिनसे प्रसूता के लिए पौष्टिक औषधि बनाई जाती है। (दर०)। [कुटक= डंठल, सदास—(मो० वि० वि०)]

कुटकी—(सं०) अरहर के पौधे की डाँठ का छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१, मुं०-२)। [कुटक+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) <कुटक]

कुटकुर—(सं०) सूखी हुई जमीन (शाहा०-१)। [देशी]

कुटरी—(सं०)—(ह० भाग०)। दे०—कुट्टी। [√कुट्ट या <*कुत्त <√कृती (छेदने)]

कुटिया—(सं०)—(१) धान, जनरा की डंठल आदि का कटा हुआ पशुओं का महीन चारा (ह० भाग०)। दे०—कुट्टी। [कुट्टी <कुट्टित <√कुट्ट, कट्ट, या <*कुत्त <√कृती (छेदने)] (२) बार-पात की बनी झोंपड़ी, साधुओं का मठ। [कुट+इया (प्र०) <कुटी]

कुटियावल—(वि०) घास-पात काटकर कुट्टी

बनाना (मुं०-१, भाग०-१)। [कुटिया+आवल < कुट्टी < √कुट्ट, या < *कुत्त < √कुती (छेदने)]

कुट्टी—(सं०) चारा या फसल की डंठल आदि का काटा हुआ पशुओं का महीन चारा। पर्या०—कुटिया, कुतरी (द० भाग०), कट्टा (पट०), लेरी (चम्पा०)। [< √कुट्ट या < *कुत्त < √कृती (छेदने)]

कुठाँव—(सं०) दौनी करने के बाद ओसाने के लिए रखे हुए भूसा और अनाज मिले हुए अन्न की राशि (पट०, द०-प० बिहा०)। दे०—सिल्ली। [देशी, मिला०—कूट = अन्न की राशि]

कुड़ँखिया—* (सं०) ऊख या तेल के कोल्हू में लगी जाठ के ऊपर घूमनेवाले ढेंढ़ भाग और कतरी से लगा हुआ बाँस का टुकड़ा। दे०—बंसखोंटी। [< *कुंड, < *कुंडल (संस्कृ०), कुंडी (हि०)]

कुड़—(सं०) एक प्रकार का धान (चम्पा०-१)। [(देशी), मिला०—कूड़ (हि०) < कूट = अन्न की राशि, कुट = औषधि]

कुड़दहिना—(सं०)—(१) हेंगा में दाएँ ओर से बहनेवाला बैल। दे०—दंबोर। [कुड़ + दहिना; कुड़ (प्रा०), कूट (संस्कृ०) = हाथी कोल्हू के जोतने की रस्सी। कुडव, कूट (संस्कृ०), हल, जिस हरीष का हल। दहिना < दक्षिण] (२) मेंह के पास घूमनेवाला समूह का सबसे छोटा और दुर्बल बैल (गया)। दे०—मेंहिकी बैल। पर्या०—मेंही (चम्पा०)। [कुड़ + दहिना, मिला०—कंडेल = रस्सी का बना गोला, पैर, कुड़ (प्रा०), कूट (संस्कृ०) = हाथी कोल्हू के जोतने की रस्सी (पा० स० म०); दहिना < दक्षिण]

कुड़हरि—(सं०) कुल्हाड़ी (पट०, मुंगेर०-१)। पर्या०—टेकारी (मुं०-२, चम्पा, पट०-४), टैंगारी, टंगुली (भाग०-५, चम्पा०)। [< *कुठार]

कुढ़ि—(सं०) लकड़ी का बना पानी पटाने का एक साधन (पट०-१)। [कुंड]

कुढ़ी—(सं०) दे०—कुदारी।

कुड़ी—(सं०) अन्न आदि की रखी हुई छोटी-छोटी राशि या ढेर। पर्या०—कुरी (पट०-४), कुढ़ी (चम्पा०, मुं०-२, पट०-४)। [< *कूट (संस्कृ०), कूड़ (हि०)]

कुत—(सं०) कूतने की प्रक्रिया।

कुतना—(क्रि०)—(१) खेत की फसल के परिमाण करना और मूल्य का निर्णय करना, कूतना (पट०-१)। पर्या०—कन करना। (२) किसी वस्तु का मूल्यांकन करना। [मिला०—√कुत् = फैलाना (मो० वि० डि०), कुत्त (प्रा०) = मिलाया। कूतना (हि०), कुत (कुमा०) या कूत् (सं०) = जमीन की लगान। कुत (भो०) = किराये पर देना]

कुदुरुम—(सं०) सन की जाति का एक पौधा, जिसकी छाल के रेशे से बोरा आदि बनाने के लिए सुतली बनाई जाती है। इसके फूल कुसुम की तरह होते हैं। दे०—पटुआ। [(देशी), मिला०—कुन्दर = एक प्रकार की घास, कुन्दलिका = एक पौधा (मो० वि० डि०)]

कुदरम—(सं०) एक छोटा-सा पौधा, जिसके फल की चटनी होती है (पट०-१)। [देशी]

कुदरुम—(सं०)—(द० भाग०) दे०—कुदुरुम, पटुआ। [(देशी), मिला०—कुन्दर = एक प्रकार की घास, कुन्दलिका = एक पौधा (मो० वि० डि०), कुदरुम (संता०)]

कुदार—(सं०) फावड़ा, कुदाल, मिट्टी कोड़ने का एक हथियार (मुं०, भाग०)। दे०—कुदारी, कोदा। [< *कुद्दाल, < *कुदार, < *कुद्दालक, * < कुदाल < कु + √दल + अ (< घञ्)]

कुदारी—(सं०)—(१) जमीन कोड़ने के लिए लोहे का बना चौड़ा और तेज धार का एक औजार, जिसमें लकड़ी या बाँस की बेंट लगी रहती है। पर्या०—कोदारि या कोदारी, कोदार (चम्पा०), कुदाली (ग० द०), कुदाल और कुदार, ठेंठी कोदार (द० भाग०, चम्पा०) [< *कुद्दाल, < *कुदार, < *कुद्दालक, कोद्दाल (संस्कृ०), कुद्दालो, कोद्दालो (पा०), कुद्दाल, कोद्दालिका (प्रा०), कुदाल (हि०),



कुदारी

कोदाल (बं०, असा०), कोदाल (भा०), कोदारि (मि०), कोदालो (गु०), कुदाल, कुदाला (बं०), कुदल (मरा०), कोदाळि (का०) < कुद्दाल (१), कुद्दि (संता०)] (२) धन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल (द०-पू० मुं०)। दे०—सुदरी। [देशी]

कुदाल, कुदार—(सं०) दे०—कुदारी। [< *कुद्दाल, < *कुद्दालक]

कुदाली—(सं०)—(मं०-द०)। दे०—कुदारी।

कुदुरुम—(सं०)—(शाहा०-१)। दे०—कुदरम। [देशी]

कुन्नी—(सं०) अन्न का छोटा ढेर (द० मुं०, पट०-४, भाग०-५)।—लगाना (मुहा०) = छोटा-छोटा हिस्सा लगाना, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में किसी चीज को बाँटना। [मिला०—कूट = राशि, कुट्य = कुड्य = दीवाल]

कुन्दरी—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिसका फल व्यंजन में प्रयुक्त होता है। [< *कुन्दुरु]

कुब्बी—(सं०) (१)—(द० भाग०)। दे०—कन्नी। (२) निष्फल बीज (द० भाग०) मिला०—घुनी। [कु + बी < कुबीज]

कुमुदनी—(सं०) एक प्रसिद्ध जलीय फूल, कुमुद (वर०-१, पट०-४, भाग०-५)। [कुमुद, कुमुदिनी]

कुमुदसार—(सं०) महीन धान का एक भेद (मुं०-१)। [< कुमुदशालि]

कुम्हड़—(सं०) कोहड़े की जाति का एक स्वेताभ फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि के बनाने में होता है (पू०)। दे०—भतुआ। पर्या०—सजकुम्हड़ (मुं०-२), खोलकोहड़ा (चम्पा०, भाग-१)। [< *कुष्मांड]

कुम्हिलाइल—(क्रि०) किसी फल-फूल का धूप में पड़ने या पेड़ से टूटने के बाद कुछ-कुछ मुरझने लगना (चम्पा०-१)। [कुम्हिल + आइल (प्र०) < कुम्हिलल, कुम्हलाना (हि०) < कुम्हलाना (हि० श० सा०), < *कुम्मिलन = एक प्रकार का विषकीट; मिला०—कुम्भांड = बच्चों का एक रोग, जो कूष्मांड प्रेतों के कारण होता है या जिसमें बच्चे सूख जाते हैं। कुम्हाउलु (बं०), कुमलवा (नेपा०), कुमावणु (सि०), कुमाकुणु, कुमालिजणु (सिं०), कोमायो (मरा०)]

कुम्हेस—(सं०)—(द०-पू० मुं०)। दे०—कुहा। [मिला०—कुहेसा, कैसेलिका, कुहेसा]

कुरकुट—(सं०) कुदाल का मूठा (चम्पा०-१)। [< *कुकूल]

कुरखेत—(सं०) (१) जोता हुआ वह खेत, जिसमें कुछ दिनों से हल नहीं चलाया गया हो (चम्पा०)। (२) बंजीखारी। [कुर + खेत < *कुरुक्षेत्र < *कुल्य क्षेत्र < * कुल क्षेत्र]

कुरताली—(सं०)—(१) किसान और दूसरे छोटे किसान के बीच बटाई पर की गई खेती की फसल का निश्चित परिमाण में विभाजन (द० भाग०, मुं०-१)। [कुरत + आली < कुरत + आर्य < *कुरतार्य अथवा * कुरतालिक या कुरतार्य, कुरतालिक] (२) फसल के आधे-आधे या ९/७ के बँटवारे की शर्त पर जमीन जोतना। बटवंटैया पर जमीन को जोतवाने के लिए लेना (मुं०-१)।

कुरताली करना—(मुहा०) कुरताली की शर्त पर दूसरे किसान का खेत लेकर खेती करना।

कुरथी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो चौड़ा लाल होता है और कड़ा बना होता है। [< *कुलत्थ, < *कुलत्थिका (संस्कृ०), कुलत्थ कुलत्था (पा०, प्रा०), कुरथी, कुलथी (हि०), कुर्ति (बं०), कुलत्था (ब०) = जंगली कुर्थी। कुलथ (ग०), कुलथी (पं०, सि०)]

कुरथौली—(सं०) साधारण काश्तकारों के नीचे एक छोटा रैयत। दे०—सिकमी। [दे०—कुरताली]

कुरदन—(सं०)—(१) (पट०)। दे०—ओखरी। (२) मिट्टी का बना ओखर (पट०-४, भाग०-५)। [(देशी), मिला०—कुरड, कुंडल = घड़ा—जैसा पात्र। कुरंड = कोटर (पा० स० म०), कुट = पात्र, किसी वस्तु]

कुराव—(सं०) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (द०-पू०)। दे०—खील।

[(बैसो०), मिला०-कुशाय (हि०), कुशा (सा०) =अकर्ण, भूमिविजय (पा० श० म०), मिला०—कुर्डि (संता०) =वह पाती जमीन, जिसमें जंगल काटकर बिना जोते बीज बोया जाता है]

कुर्की—(सं०) कर्जदार या अपराधी की जायदाद की, ऋण या जुरमाने की वसूली के लिए, सरकार द्वारा की जानेवाली जब्ती (शा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कुर्क (अ०)]

कुलहर—(सं०)—(१) अगली वर्षा में बोने के लिए माघ महीने में की जानेवाली जमीन की जोत (द०-प० शाहा०)। दे०—माघड़ जोतब। (२) वह जमीन, जो एक बरसात से दूसरी बरसात तक केवल जोती ही जाती है तथा दूसरी बरसात में उसमें धान का बीज बोया जाता है (द०-प०)। दे०—दोसरा चौमास। [देशी]

कुलिया—(सं०) वह बैल, जिसका एक पैर दूसरे पैर से टकराता है (पट०-२)। [देशी]

कुल्हाड़ी—(सं०)—(बिहा०)। दे०—कुल्हारी।

कुल्हारी—(सं०) लकड़ी फाड़ने तथा पेड़ काटने के काम में आनेवाला बसुला से कुछ लंबा एक प्रकार का हथियार। दे०—टंगा। पर्या०—कुल्हाड़ी (बिहा०)। [कुल्हारा+ई (अल्पा० प्र०), कुल्हारा< *कुठारक (संस्कृ०), कुठार (पा०), कुल्हाड़ा (हि०), लहान कुल्हाड़ (मरा०), कुल्हाड़ी (गुज०)]

कुश—(सं०) एक प्रकार की पवित्र घास (बिहा०, भाग०)। [कुश (संस्कृ०), कुस (पा०, प्रा०) कुस, कुसा (हि०), कसा (बं०) कुस (संता०)]

कुसबटना—(सं०) रोपे जानेवाले धान में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (द०-प०)। पर्या०—कुसियाना (बं०)। [देशी, <कुश-वर्तन (?)]

कुसही—(सं०) छोटे दानोंवाला काला मटर (पट०, गया, द०-पू०, पट०-४, मग०-५)। दे०—कबरी। पर्या०—जेसवरिया (पट०-४)। [देशी (?), मिला०—कोश, कौशिक= पील कर]

कुसही केराव—(सं०) एक साथ सरसों को और केराव का मिश्रण (पट०, द०-पू०, पट०-१)। दे०—को केराई। [कुसही+केराव, कुसही < *कोश, < *कौशिक (संस्कृ०), कोसिय (प्रा०), केराव< *कलाय]

कुसाथ—(सं०) वह बैल या भैंस, जिसका मुँह चौड़ा हो (पट०-१)। [देशी]

कुसियाना—(सं०)—(बं०)। दे०—कुसबटना। [देशी]

कुसिया मटर—(सं०) छोटे दाने का मटर, केराव (मुं०-१, भाग०-५)। [कुसिया+मटर< कुसिया< कुशिक< कौशिक, मटर< मठ< मठ्ठ (देशी) < *मृष्ट (?)]

कुसियार—(सं०) वंशाकार एक प्रसिद्ध पौधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती है, ईख (उ०-पू० मुं०, मुं०-२)। दे०—ऊख। [< *कोशकार]

कुसिहार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो छोटा और कड़ा होता है। [< *कोशकार]

कुसुम—(सं०) बर्रे (कुसुंभ) का पीला फूल, जिससे रंग बनाये जाते हैं (सं० उ०, मुं०-२, भाग०-५, चंपा०, पट०-४)। पर्या०—बर्रे (पट०-४), कोसुम (मं० उ०) फूल (बं०)। टि०—कुसुम से निम्नलिखित रंग बनाये जाते हैं—१. असमानी = हलका नीला रंग; २. काली=तेज बैंगनी रंग; ३. काला= काला रंग; ४. काहि सबुजा=गाढ़ा हरा रंग; ५. केसरिया=हलका लाल-पीला रंग; ६. गुलाब, गुलाबी=गुलाबी रंग; ७. नंबई=नारंगी रंग; ८. नारंगी=नारंगी—पीला रंग; ९. नैतनी=नील के साथ मिला हुआ रंग; १०. फलसाही=बेर के रंग का रंग; ११. बादामी, बंदामी=बादामी रंग; १२. बैंगनी=बैंगनी रंग; १३. माशी= नितांत गाढ़ा हरा रंग; १४. लाल=लाल रंग; १५. लीला=गाढ़ा नीला रंग; १६. सबुजा=हरा रंग; १७. सुरमई= सुरमा-जैसा काला रंग; १८. सुगग=गाढ़ा

लाल रंग। १९—सीमहुला=सुगहुला पीला रंग। यद्यपि पूर्वोक्त रंग केवल कुसुम से नहीं बनते हैं, किंतु इसका आधार अवश्य रहता है। गाढ़े रंग के बनाने में नील का सम्मिश्रण रहता है। कुसुम के विषय में एक पहेली नीचे दी जाती है— "बाप रहल पेट, पूत गेल बरियात"। (जब कि बाप (कुसुम का बीज) पेट (बीज-कोष) में रह रहा था, उसी समय पूत (कुसुम फूल,) बरातों के रंग के रूप में, बारात चला गया [कुसुम, कुसुम्भ (संस्कृ०), कुसुंभ (पा०, प्रा०), कुसुम, (अव०), कुसुंभ, कुसुम, कुसुंभ (हि०), कुसुंभ, कसुंभा (बं०), कुसंबी (सि०), कुसुंबो (गु०), कुसुंब, कुसुंबा (मरा०)]

कुहरा—(सं०) कोस, कुहेसा (चंपा०-१)। पर्या०—कुहा (पट०-४)। [कुहेडा या कुहेला]

कुहस्सा—(सं०) सबेरे का कुहरा (नीहार)—(द० भाग०)। दे०—कुहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय या कुहेशय< कुह (कुहर)+आशय, शय]

कुहा—(सं०)—(पट०-४)। दे०—कुहरा।

कुहेस—(सं०)—(प०, उ०-पू०, मुं०, द०-पू० मुं०, मुं०-२)। दे०—कुहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय, कुहेशय< कुहा+आशय, शय]

कुहेसा—(सं०)—(प०, पट०-४)। दे०—कुहा।

कूँचा—(सं०)—(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए व्यवहृत ताड़ या खजूर के डंठल की जड़ को कूँचकर बनाई गई झाड़ू या कूँची। दे०— सिरहथ। (२) नारियल की सींक, खजूर के डंठल और पत्तियों एवं ताड़ की पत्तियों की सींकों आदि से बनी झाड़ू। (३) दे०—कुच्चा। [कूर्च, कूर्चक (संस्कृ०), कुच्च (प्रा०), कूँचा (हि०), कूँचे (ने०), कूँची, कूँची (बं०), कूच्च (उ०), कुचिया (म०), कूँचो, कूँची (सि०), कूँचो, कूँचड़ो (गु०), कूँच (मरा०), कोसरा (सिंहा०), कूच (रोमा०)=दाढ़ी]

कूँची—(सं०) छोटा कूँचा (द०-प० शाहा०)। दे०—सिरहथ और कूँचा। [कूँचा+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)]

कूँड़—(सं०)—(१) भोजन और अन्न रखने का मिट्टी का बड़ा बर्तन (प०, पट०)। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए लोहे का बना गोल बर्तन। दे०—डोल। (३) *ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (पू०)। दे०—खान। टि०—पहले कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था, किंतु आजकल तो लोहे का होता है। इसलिए, वैसा खोखला भाग नहीं होता है। (४) ढेकुल में बना हुआ पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र (बिहा०, भाग०)। पर्या०—कूँड़ी, कुंडी। [कुंड, कुंडक, कुंडी, कुंडिका (संस्कृ०) कुंडिका, कुंड पा०, प्रा०) कूंडीन, (दर०) कोंड (कश्म०)=हंडा, कुंडी (बं०), कुंडी (ओ०), कुंडी (हि०), कुंडी (पं०, उ०), कुंडो (ने०), कुंडी (गु०, मरा०), कुंडिया, कुंडी, कुन्द (सिंहा०)]

कूँड़

कूँड़ा—(सं०) (१) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन (प०उ०)। पर्या०—कूँड़ी (द० भाग०)। (२) दही मथने का मिट्टी का बर्तन, जो हाँड़ी में मिट्टी लगाकर बनाया जाता है (चंपा०)। [कुंड, कुंडक]।

कूँड़ी—(सं०)—(१) उबाले हुए रस को रखने का बर्तन (द० भाग०)। दे०—मट्की। (२)—(द० भा०)। दे०—कूँड़ा। [कूँड़+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) < *कुंड] (३) दे०—(चंपा०-१)। [कूट (संस्कृ०), कूड(प्रा०)] (४) दे०—कूँड़। [< कुंड]

कूर्या—(सं०) पेयजल निकालने के लिए खोदा गया बहुत गहरा और साधारणतः गोल कच्चा गड्ढा, जो ईंट-पत्थर के बिना ही बनाया जाता है। [कूप, (संस्कृ०), कूप(पा०), कूव, कुव्वा(प्रा०), कुँआ, (हि०), कूआ (बं०) कुआ (ओ०), कूआ, खूह (पं०), कुवा (ने०), कुवो (गु०), कुवा (मरा०), खूह (दर०)। पं० खूह, (सं० कं०) खुह (कश्म०), खूहर (द० पहा०), खूँहू (सि०) शब्दों का मूल समवत अफगान शब्द कसुनु (रोमा०) है, जिसका अर्थ है—छेद, गड्ढा। इसी प्रकार खोह (हि०, पं०, बिहा०), खो (गु०) भी है।

किन्तु वस्तुतः पा० काकूपे = कूआँ, मगहुल, कनो (पु०), कुंप (सि०), खड्डा (नं०) की व्युत्पत्ति में समानता है (नेपा०)]

कूचल—(क्रि०) कूटना, पीसना, पीटना (मुं०-१, पट-४, मग०-५, चंपा०)। [कुच+ल (प्र०), मिला०—√कुच्, √कुंच् (संस्कृ०), कुंचि (प्रा०) = टेढ़ा कूचना (हि०), कुचान (बं०), कुचेइबा (ओ०), कुचिनु (नं०)]

कूचा—(सं०)—(गया, द० मुं०)। दे०—कूँचा और सिरहुल। [< कूर्चक (संस्कृ०), कुच्चन (प्रा०)]

कूट—(सं०)—(१) पुआल का छोटा टुकड़ा, जो भूसा के समान होता है (चंपा०-१)। (२) मोटी लुगदी से बना कागज का एक मोटा भेद (विहा०)। [कूट = दृढ़, कुटिल, कुटित = दबा हुआ, मुड़ा हुआ।]

कूटी—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कूट।

कूटना—(क्रि०) किसी चीज को ढेंकी या ओखल में कूटना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। (वि०) कूटा हुआ (चंपा०-१)। [√कुट्ट (संस्कृ०), कुट्ट (पा०, प्रा०), कूटना (हि०), कुटनु (नं०), कुटिब (अस०), कुटा (बं०), कुटिवा (ओ०), कुट्टणा (पं०), कुट्टणु (सं०), कुटणु (सि०), कुटणो (मरा०), कुटवुँ (गु०), कुटेल (रोमा०), कुट (बर०), कोटक्का (सिंहा०)। मूल धातु और निर्देश से मत है इस धातु का मूल द्राविड़ है। मिला०—कुटो (कन्न०) = ठोकर देना। कुट्टु (त०, कन्न०), कोट्टु (त०, दे०—नेपा०)]

कूड़ा—(सं०) खाद, कूड़ाकर (पु०, शा०, चंपा०)। दे०—घाघर। [कूट (संस्कृ०), कूड़ (प्रा०)]

कूड़ा-कुरकुट—(सं०)—(पु०, शा०, चंपा०)। दे०—कूड़ा और घाघर। [कूड़ा + कुरकुट < कूट + कुरकुट (दे० – कुकुट = चूर्ण)]

कूड़ा—(सं०)—(१) छोटी मड़ई (पट०, गया)। दे०—गीढ़िया। (२) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी (गया)। दे०—मड़ई। [कूट, कुटना, कुटज]

कून—(सं०) दे०—कन। [कूनना (हि०), मिला०—√कृत् = कंपना-कँपाना (मो० वि०, हि०) दे०—कनवा]

कूप—(सं०) दे०—कूआँ। [कूप]

कूर—(सं०)—(१) सूखी घास, कूड़ाकर, गोबर आदि का ढेर (उ०-पु० बं०, शाहा०)। [कूट] (२) नदी का किनारा (चंपा०-१)। पर्या०—कोर (बं०-२)। [कूल]

कूरी—(सं०) चीजों की छोटी-छोटी ढेरी (बं०-२, मुं०-१)। दे०—कुरी। [कूर + ई (स्वार्थ० स्त्री० प्र०) < *कूट]

कूरो—(सं०) जमीन, खेत आदि की सीमा बदलने की एक नाप (पु० बं०)। दे०—विगहा। [देशी]

कूहा—(सं०) सबेरे का कुहरा। पर्या०—कुहेस, कुहेसा (प०), कुहस्सा (द० भाग०), कुहेस (उ०-पू० बं०, द०-पू० बं०), कुमहेस। [कुहेला, कुहेसा, मिला०—कुहाशय, कुहिशय < कुह (= कुहर) + आशय, शय, कोहक, कोहरा (हि०), कोहारा (बं०), कोक-गोवा (अस०), कुहुड़ी (ओ०), कुहुर (पं०), कोहीर (ग०), कोहड़ें (मरा०), कोहरो (नं०)]

केँचवाँ—(सं०) तंबाकू के पत्ते में बिल बनाकर रहनेवाला एक कीड़ा विशेष (गं० उ०, बं०-२)। दे०—कारका। [देशी]।

केँकरोट—(सं०)—(१) दे०—केँकरोटिया। [< कर्क रोहित (२) (गया)। दे०—गैंबट। केँकट + ओट] (?)

केँकरोल—(सं०) केकड़े के द्वारा ऊपर फेंकी हुई मिट्टी का बनी मिट्टीवाली जमीन (गं०उ०)। केँकुरल—दे०—केकुरल।

केँड़ी—(सं०)—(१) हाथ की सफाई के कारण कम तौलना (भाग०-१)। (२) मेड़ की बिलाई (चंपा०-१)। (देशी), मिला०—[कूट = छल, विजय]

केँपो—(सं०) कीचड़, काँदो (मुं०-१)। [केँपो < काँप < पंक—वर्ण—विपर्यय]

केँवाछ—(सं०) दे०—कवाछ। [कपिकच्छु]

केआरी—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—कियारी। [केदार]

केआल—(सं०) अन्न तौलनेवाला पुरुष (पट०, द०-पू०)। दे०—हरवा। [(देशी) (?), मिला०—किराट = बनिया (सं० म०), कायिनी (मो) = एक माप, अन्नस्थ]

केआली—(सं०)—(१) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क (प्रति मन सेर-भर)—(द०-पू०)। दे०—कुटवाई। (२)-(उ० पू० बं०)। दे०—विआली। [केआल + ई (दे०—कियाली, केवाली)]

केओट (सं०) मल्लाहों की एक शाखा (गं० उ०)।

केओहीन—(सं) (१) एक प्रकार की घास (दर०-१)। (२) नदी में नाचनेवाली देवताओं (चंपा०)। ( ) केवट (जाति-विशेष) की स्त्री। [मिला०—केवर्त, कैवर्ति मुस्तक = एक घास (मो० वि० डि०)]

केकुरल-(क्रि०)-(१)पाला आदि के कारण मवेशी या किसी व्यक्ति का सिकुड़ जाना (चंपा०-१)। (२) पाला और एक रोग-विशेष के कारण पौधों का सिकुड़ना।

(वि०)सिकुड़ा हुआ। पर्या०—केँकुरल, केकुरल। [केकुर + ल (क्रि० प्र०) < केकुरो < *कर्क टक]

केड़वारी-(सं०) फलों का नया बगीचा (शाहा०)। दे०—गछुली। [केड़ + वारि, केड़ < केदली, कदली अथवा केदार + वाटिका > वारि]

केतकारि (सं०) आश्विन, कार्तिक और अगहन का महीना (दर०-१)। [(देशी), मिला०—कार्त्ति-कादि (?)]

केतकी-(सं०)-(१) एक प्रकारका घास (दर०-१)। (२) केवड़ा का फूल। [केतकी]

केतरवार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने-वाला (पट०, गया)। दे०—अँवेरीहा। [केतर + पार < केतारी + पार < कान्तार + पार। पार = अंत, पारयति = समाप्त करता है, पार (= उत्-पाट)]

केतार—(सं०) एक प्रकार का ऊख, जो पतला और लंबा हुआ करता है तथा कार्तिक में पेरना होता है (गया, द०-पू०, मग०-५)। पर्या०—केतारा (पट०), केतारी (शा०), केतारी (शाहा०), रौंढ़ा (द०पू०)। [कान्तार]

केतारा—(सं०)—(पट०)। दे०—केतार।

केतारी—(सं०)—(बं०, पट०, गया, द०-पू० विहा०, पट०-४ मग०-५, भाग०-१)। दे०—ऊख। [केतार + ई < कान्तार]।

केतारी

केन देहरी—(सं०) धनरोपनी के बाद में खेत के एक कोने में विशेष रीति के साथ एक मुट्ठी मोरी (धान्य-बीज) के रोपने की एक रीति, पर्या०—पचाटी (पट०-४, मग०-५), गाय लगाबल (चंपा०)। [देशी, केन + देहरी < कोण + देहली]

केनगाड़—(सं०) चीनी-मिल की ओर से ट्रक पर लादकर लाये जानेवाले ऊख पर बैठा हुआ वह कर्मचारी, जो रास्ते में उस ऊख की रखवाली करता है, ताकि कोई उसमें से ऊख ले न ले। [केन + गाड < केन + गार्ड (अं०)]

केना—(सं०)—(१) अगात के खेत में होनेवाला एक पशु-खाद्य घास (प०, गया, पट०-४, मग०-५, बं०-२)। दे०—कनवा। [देशी, मिला०—कना]

केना—(सं०) (प०-बं०, प०)। दे०—कनवाँ। [देशी, मिला०—कना]।

केनौंदा—(सं०) एक झाड़, जिसके फल की चटनी बनती है। पर्या०—करौंदा (मुं०-१, मग०-५)। [करमर्दक]

केमाम—(सं०) गुड़ (शक्कर) अथवा (कत्था) के रस को उबालकर गाढ़ा करके बनाया गया पदार्थ (गया)। दे०—कड़ा। [किमाम < किवाम (अ०)]

केरवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१, पट०-४, गया०-५)। [केरा + वा < केला < कदली]

केरवी—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर०-१)। [केरवी < केला < कदली]

केरा—(सं०)-(१) लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली धान्य की एक छोटी राशि [जितनी दोनों भुजाओं (पाँजा) के बीच में आती है]। दे०—अरघन। [(देशी), मिला०—कर + (बाल) अथवा – अंकमाल > अँकवार अथवा कोल, क्रोड़ (= पाँजा)]

केरा—(सं०) केला, एक प्रसिद्ध फल। (विहा०, शाह०)। [कदली] (संस्कृ०), कयली, कयलि (प्रा०), केरो, केरा (नं०), केलो (कुमा०), कला (बं०, अस०), केला (हि०, प०), केलो = केला, केलिंगी = पौधा (सि०), केल (गु०) = केले का पौधा, केलु (मु०) = केला, केल, केळी, केळें (मरा०), केंगल, कोटल (सिं०)]

इन सभी पर्यायों का (संस्कृ०, प्रा०) के 'कदली' और (प्रा०) के 'कयली', 'कअली' शब्द से स्पष्ट संबंध नहीं दीखता है। केवल हि०, बँ०, असा०, पं०, मरा० और संभवतः कुमा० के पर्यायों का ही संबंध इनसे मिलता-सा है, किन्तु गु० के पर्याय का कोई संबंध नहीं है। बँ० को छोड़-कर ऊपर के पर्याय और गु० के पर्याय प्रा० के केली, केलो से संबद्ध हैं और ये दोनों संस्कृत के कदली से व्युत्पन्न नहीं हैं। जे० प्राइलुस्की (J. Przyluski—MSL XXII, P.206) के मतानुसार 'कदली' शब्द आग्नेय-एशियाटिक से उधार लिया हुआ है, जिसमें 'ली' के पहले पूर्वसर्ग (prefixes) 'क' और 'द' लगते हैं। इनमें 'ली' प्रत्यय प्रतीत होता है। क्या प्रा० का 'केली' आग्नेय-एशियाटिक 'कलि' से व्युत्पन्न हो सकता है? डब्लू० गाइगर (इटि० सिंह० पृ०–२७) के अनुसार 'केसेल'–(सिंह०) का 'स' आनुनासिक है, किंतु यह मत उचित नहीं दीखता। यह शब्द वस्तुतः किसी दूसरे मूल शब्द का व्युत्पन्न रूप हो सकता है —नेपा० ।]

केराओ—(सं०) मटर। [कलाय]

केरावल—(०) दे०—किराना।

केराव—(सं०) छोटे दानों का मटर (बिहा०, भाग०)। दे०—मटर। [कलाय (संस्कृ०), कलाय (प्रा०), कलाइ (बँ०, असा०)]

केरावल—(क्रि०)—खड़ी फसलवाले खेत से घास-पात निराना, निकौनी करना (मुं०-१, भाग०-५)। [केरा+आवल (प्र०) < *किर (यथा-किरति) < √कृ (बिखेरे)]

केरौनी—(सं०) (१) छिछली कोड़ाई; खुरपी या कुदाल आदि से की जानेवाली हल्की कोड़ाई (चंपा०, मुं०)। दे०—खुरपियाना। पर्या०—किरौनी (भाग०-५)। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (गं० उ०, द० भाग०, द० मुं०)। दे०—सोहनी। [केर+औनी < *किरण < √कृ (बिखेरे)]

केलासार—(सं०) अच्छी किस्म का एक मोटा अगहनी धान (मुं०-१)। [केला+सार < *कदली+शालि]

केल्हौनी-(सं०)-(१)-(द० भाग०)। दे०—केरौनी और खुरपियाना। (२)-(द० भाग०, द० मुं०)। दे०—केरौनी और सोहनी। [केल्हौनी < केरौनी < केराना < *किरण < √कृ (बिखेरे)]

केवई—(सं०) एक प्रकार की मछली (चंपा०-१, शा०-१)। पर्या०—कवइ (चंपा०, मुं०-२)। [*√कविक, *√कविका]

केवलहा—(सं०) छोटे दानोंवाला काला गेहूँ (गया)। दे०—कनकार। [देशी, संभ०—केवल+हा (प्र०) < केवाल (बिहा०)=काली चिकनी मिट्टी]

केवाल—(सं०) काफी मजबूत काली जमीन, जिसमें ८५ प्रतिशत मिट्टी का अंश रहता है। पर्या०—करार (द०-पू०)। [केवाल, कसाल] कहा०—'बभन के बेटी बड़ केवाल के खेती'=ब्राह्मण माँ-बाप की बेटी और केवाल जमीन की खेती अवश्य फलदायक होती है (शाह०-४)।

केवाला—(सं०)-(१) कर्ज के भुगतान में या नकद रुपया लेकर जमीन बेचने की प्रक्रिया (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-५, मुं०-२, भाग०-१)। केवाला देवल (मुहा०)=कबाला देना। केवाला लिखल (मुहा०)=किसी के नाम से अपनी सम्पत्ति लिख देना। केवाला लिखावल (मुहा०)=किसी से केवाला लिखाना। [कबाला-(अ०)] (२) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा सम्पत्ति दूसरे के अधिकार में दी जाती है।

केवाली—(सं०)—(शा०)। दे०—केराव। [केवाल+ई < केवाल (मिट्टी)]

केवाही—(सं०)—(शाह०)। दे०—केराव। [मिला०—केवाली]

केसर—(सं०) कश्मीर की घाटियों में होनेवाले एक प्रसिद्ध फूल का रेशा, जो पीलापन लिये, लाल रंग का, सुगंधित एवं बहुमूल्य होता है और भोजन की वस्तुओं या पूजा-सामग्री के लिए व्यवहृत होता है। [केसर]

केसरिया—(सं०)—दे०—कुसुम। [केसर+इया (प्र०) < *केसर]

केसी—(सं०) भुट्टे के ऊपर के केशों का गुच्छा। दे०—भुआ। [< केशिक]

केसौर—(सं०)—(१) लम्बे दानोंवाले धान का एक उत्तम प्रकार (मुं०-१, मुं०-२)। (२) शकरकंद की जाति का एक मीठा कंद, जो कच्चा खाया जाता है। (३) ज्वार में होनेवाला एक छोटा कंद, जो मोथे की तरह होता है और कच्चा ही खाया जाता है।


केसौर

[क+सौर < केतकी+शालि या केसर+शालि]

केहुनी—(सं०)-(१) दोनों भुजाओं के अंदर बार-बार आनेवाली फसल का परिमाण (पू० मुं०)। दे०—दोजा। (२) कोहुनी, हाथ और बाँह के बीच की संधि। [< कफोणिका=केहुनी]

कैथ—(सं०) छोटे बेल-जैसा एक प्रकार का खट्टा फल (शाह०-१, पट०-४)। [कपित्थ (संस्कृ०), कइत्थ (प्रा०)]


कैंता

कैंत—(सं०) एक प्रकार का सर्प-जैसा लंबा धारीवाला लंबा फल, जिसकी तरकारी बनती है (शा०)। दे०—चिचिंडा। [संभ०—< *श्वेत < श्वेतराजि (संस्कृ०), कैता (संथा०)]

कैंता—(सं०)—(पू० मुं०, मुं०-१) दे०—कैंत और चिचिंडा।

कैड़क—(सं०) जमींदारों और किसानों के बीच का एक प्रकार का हिसाब, जो कागज की एक चिट पर लिखकर खंडक में रख लिया जाता है। यह बही में नहीं लिखा जाता है। दे०—खसलक [देशी,—संभ० < कायपत्र < कायपत्र (अ०)]

कैरियार—(सं०)—(शाह०)। दे०—कोरार। [कैरि+यार < केतर+वाट, कदली+वाट, कन्दली+वाट]

कैरी—(सं०) कटहल के कोवे का ऊपरी भाग, जिसमें कोया छिपा रहता है (पट०-१)। पर्या०—भोथी (स०प०) [देशी, संभ०— < *कदली]

कैल—(वि०) पीलापन-युक्त भूरा (पट०-१, पूर्णि०-१, मुं०-१)। पर्या०—कैंसा कइल (चंपा)। [कपिल (संस्कृ०), कविल (प्रा०)]

कैला—(वि०)—दे०—कैल।

कैलाएल—(क्रि०)—फसल की बाल की पूरा (अन्न के रूप में) होने की अवस्था को प्राप्त करना। (वि०) पकती हुई फसल। दे०—दुधसाएल। [कैला+एल (क्रि० प्र०) < *कपिल]

कैला गैल—(क्रि०)—(पट०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—कैलाएल और दुधसाएल। [कैला+गैल < कपिल; गैल < गयल < गच्छत < √गम्]।

कैलिया—(सं०) दे०—कोढली। [संभ०< कपिल]

कोंकडुरा—(सं०)(१) केंकड़े का बिल (चंपा०-१) (२) केकड़े के बिल के ऊपर की मिट्टी। [कोंकड़ + उरा < *कर्कट+कुल]

कोंकड़ा—(सं०) केकड़ा, एक जलीय जन्तु, जिसके आठ पैर और दो डंक होते हैं। यह आगे-पीछे समान गति से चल सकता है। यह धान के खेत से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है। [< कर्कटक]

कोंकडियाइल—(क्रि०) रोग या पाले से किसी पौधे के पत्तों का सिकुड़ना या संकुचित हो जाना (चंपा०-१, भाग०-५, मुं०-२)। पर्या०—केंकुरियाएल (पट०-४)। [कोंकड़िया+आइल < *कोंकड़ा < *कर्कटक]

कोंच—(सं०) महुआ के फूल का छत्ता (पट०-४, भाग०-५, चंपा०-१)। दे०—छत्ता। [< कुञ्च, कुञ्ज, गुच्छ]

कोंड़िला—(सं०)-(१) एक पशुखाद्य घास (चंपा०, उ० मुं०)। (२) ज्वार में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से बिनाई का बीज बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुष्ठ (संस्कृ०), कूठ (हि०)]

कोंपड़—(सं०)—(१) पशुओं का एक रोग, जिसमें सींग की जड़ में दर्द उभरती है। दे०—पाला। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ नया कोमल अंकुर (चंपा०-१, मुं०-२)। [कोंपड़ < कोंपल < कोमल—(हि० श० सा०), < कुड्मल (संस्कृ०) < कुंपल (प्रा०), कोंपल (हि०) कोंपली (गु०), कोंपिला (मे०), कोम्ब या कोम्ब (मरा०)]

कोंपल—(सं०) बाँस की जड़ का नया अंकुर (शा०-१,

मग०-५, पट०-४) । [कोंपल < कोमल—(हि० श० सा०), < कुड्मल (संस्कृ०)]

कोंहड़ा—(सं०) कद्दू की जाति का एक गोल फल, जो रंग में हरा या पीला होता है तथा जिसकी तरकारी मीठी होती है । पर्या०—कोम्हड़ा (उ० मैं०), कदीमा (पू० मैं०, मैं०-२) । [< क, ष्माण्डक, (संस्कृ०), कुम्भण्ड (प्रा०), कुम्भिण्डी (जै०); कुम्हड़ा (बं०) कुम्हड़ा (हि०), कोमड़ (सिंह०) (ड < ण्ड) । कूष्माण्ड कोहण्ड, (प्रा०), कोहली (देशी)—मिला०—कुम्भाण्डा (संस्कृ०), कोंहड़ा, कोंहर (हि०), कोहलु (गु०), कोल्हाला (मरा०), कोहोलें, कोहळें, कोहलें (मरा०)]

कोंहरमट्टी—(सं०) कुम्हार द्वारा काम में लाई जानेवाली मिट्टी (शा०-१) । [कोंहर+मट्टी < कुम्हार (हि०) + मिट्टी < कुम्भकार+मृत्ति]

कोआ—(सं०) (१) कटहल के फल का बीज-कोष, जिसे लोग खाते हैं (चंपा०-१, पट०-१, पट०-४, मग-०५) । (२) रेशम के कीड़े का घर (चंपा०-१) (३) आँख का कोआ (कोना)—(चंपा०-१) । (४) ताड़ के फल के बीज-कोष से निकलनेवाला एक श्वेत भाग । [कोशक < बीजकोशक (संस्कृ०), कोसा, कोस (हि०)]

कोइन—(सं०)—(१) महुए की गिरी (बीज), जिससे तेल निकाला जाता है (सं० उ०, श०, चंपा०-,१ पट०-४, मग०-५) । (२) महुए का फल । पर्या०—गढुआ (मैं०-२), कोइनी (द०-पू० मैं०, भाग०), कोइन्दा (द०-प० शाहा), कोयन (मुं०-१), कोयंड (उ० प०) कोइना (भाग०) । [को+इन < *कोशिन्]

कोइनी—(सं०)—(द०-पू० मैं०, भाग०) । दे०—कोइन । [को+इनी < *कोशिन्]

कोइन्दा—(सं०)—(द०-प० शाहा०) । दे०—कोइन । [को+इंदा < कोशा+इन्द < कोशिन्]

कोइया—(सं०) अनाज के भंडार को भीषण हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का काला, काला कीड़ा । [देशी]

कोइरी—(सं०) हिंदुओं की एक जाति, जो साग-पात की खेती करके अपनी जीविका चलाती है । पर्या०—कोयरि (दर०-१) । [कोइर+ई, कोयर (हि०) = साग पात; < कोंपल < *कुड्मल]

कोइल—(सं०)—(१) आम के बीज का गूदा या गिरी, जिसकी रोटी भी कहीं-कहीं पकाई जाती है । (मुं०-१) । [देशी]
(२) अनाज की वह बाल, जिसमें दाना या सारा रोआँ न पका हो (पट०, गया) । दे०—मराएल । [कपिल] (३) एक पक्षीविशेष, जिसका रंग काला होता है तथा बोली बड़ी मीठी होती है । पर्या०-कोयल (चंपा०) । [कोकिल]

कोइलखी—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली कटिदार एक घास । पर्या०—गोखुआ (प० मैं०, चंपा०, पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२), गोरखुल (प०), कांसी (सहर०) । [(देशी), संस०—कोकिलाक्ष]

कोइलपत—(सं०) पोठ लगने के कारण दाग लगा हुआ आम (पट०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, चंपा०-१) । [कोइल+पत < कोकिल+पत्र (=चिह्न)—(?)]

कोइला—(सं०)-(१) फसल के पुष्ट होने की अवस्था । (२) लकड़ी अथवा पत्थर का कोयला, जो जलाने के काम आता है । [कोइल+आ < * कोकिलक, कपिलक]

कोइलाइल—(क्रि०) किसी आम या फल का पुष्ट होना (शाहा०-१) । [कोइल+आइल (प्र०) < कोइला, कइला < कपिल]

कोइला माता—(सं०) कुएँ को सुरक्षित रखनेवाली कल्पित देवी । [कोइला+माता । संभः—< कमला माता, कोकिला (देवी)—(बी० वि० हि०)]

कोइली—(सं०) चावल में लगनेवाला विचित्र प्रकार का कीड़ा । पर्या०—कोइया, कैलिया । [(देशी) संभ०—< कपिल]

कोकटि—(सं०) एक प्रकार की लाल कपास, जो बारी में पकती है । इसकी खेती तिरहुत में होती है तथा इसके सूत बड़े महीन और सुन्दर होते हैं । पर्या०—भरैया । [देशी]

कोकड़ा—(सं०)—(शाहा०) । दे०—कोकड़ा । [कोकड़ा < फोकड़ा < *कर्कटक]

कोचला—(सं०) लता में होनेवाला एक प्रकार का कड़वा फल । इसका फल हरा होता है, किंतु पकने पर लाल हो जाता है । पर्या०—तितकोच (भाग०-१) ।

कोचला के साग—(सं०) एक प्रकार का साग । [कोचला के+साग]

कोचिआइल—(क्रि०)-(१) महुए के पेड़ में फूल के गुच्छों का होना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) ।

कोचिआवल—(क्रि०) साड़ी या धोती की चुनना (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) । [कोचि+आवल (प्र०) < कोचि < *कुच्च, कुञ्चो < √कुच्]

कोठला—(सं०) दे०—कोठिला, कोठी ।

कोठिआ ईंटा—(सं०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्ताकार ईंट (द०-पू० मैं०) । दे०—कसी । [कोठिआ+ईंटा < कोष्ठ+इष्टक]

कोठिवारी—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि-कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क (चंपा०, मैं०) । दे०—कोलरना । [कोठिआ < कोठी < (संभ०) *कोष्ठ]

कोठियौ—(सं०) वर्षा से बचाने के लिए घास-सहित कटी हुई फसल का लगाया हुआ ढेर (सा०) पर्या०—पुँज, पुँजौर (द० प०, पट०, गया, द०-पू०) । [कोठियौ < कोठिया < कोठी < कोष्ठक]

कोठिला—(सं०)-(१) बाँस की चट्टी आदि से बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुआँ (प०) । पर्या०—गड़ौआँ (पट०) । [कोठि+ला (प्र० < कोठी < कोष्ठ] (२) दे०—कोठी । [कोठि+ला (स्वा० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठिली—(सं०)—दे०—कोठी । [कोठी+ली (स्वा० प्र०) < *कोष्ठ]

कोठी—(सं०)-(१) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी-कभी प्रयुक्त बाँस की खाँचियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ०-प०, भाग०) । पर्या०—कोंल (उ०-प०, मग०-५), पौड़ (उ०-प०, पट०, शाहा०), खोल (द०-पू०), गिढी (कहीं-कहीं द०) । (२) मिट्टी या ईंट का बना हुआ एक प्रकार का गोल या चौकोर घेरा, जिसमें अन्न रखा जाता है । (बिहा०, भाग०) । पर्या०—कोठिला, कोठिली । (३) चना, भूसा आदि के रखने के लिए खुली हवा में पुआल, चट्टी, या खढ़ का बना हुआ एक प्रकार का घेरा । दे०—बखार । (४) बाँस के पौधों का एक समूह (चंपा०, भाग०) । [कोठ+ई (प्र०) < *कोष्ठ]

कोड़ देल—(मुहा०)—खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालना (द०-प०, उ०-प० मैं०, मैं०-२) । दे०—भर खुरपी कोड़ल । [कोड़+देल < कोड़ल (बिहा०) कोड़ना (हि०) < √कड् (खोदने), अथवा √कुद् (खेलने) । (संभ०) < कु+दल < √द (अवदारणे) से नामधातु प्रत्यय के साथ व्युत्पन्न होकर बना हो ।]

कोड़न—(सं०)-(१)—(द० भाग०, मैं०-२) । दे०—कोड़नी । (२) एक फुट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टाँगुनी आदि की खोत या कुदाल आदि से की गई कोड़नी (गया, चंपा०, मैं० २) । दे०—खिदाइ ।

कोड़नी—(सं०)-(१) कोड़ाई, कोड़ने की प्रक्रिया । दे०—कोड़ल । (२) अनाज के खेत की छिछली कोड़ाई करके की गई घास आदि की सफाई । (३) मकई आदि के पौधों के उग जाने पर, जड़ के आसपास की मिट्टी को धीरे-धीरे कुदाल से कोड़कर हल्की कर देने की प्रक्रिया (मुं०-१, मैं०-२) । पर्या०—समसी (चंपा०, मैं०), निकौनी (पट०, गया, द०-मुं०), छेउनी (द०-प० शाहा०), कोड़न, खाड़ (द० भाग०) । (४) एक फुट ऊँचे जनेरे, बाजरे, टाँगुनी आदि की कुदाल से की गई कोड़ाई ।

कोड़ल—(क्रि०) कोड़ना, कोड़ना (दर०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२) पर्या०—पारल, तामल (चंपा०, मैं०), छेउल (द०-प० शाहा०),

[कोड्डल (अ०), कोड़ना (हि०), मिला०—√कुट् (छेदने), √कुड् (संकल्पे)। (संभ०)—कु+दल< √दृ (अवदारणे) से व्यु० प्रा० प्र० (?) व्युत्पन्न हुआ हो)]

कोड़ल—(वि०) कुदाल से कोडी हुई जमीन (चंपा०-१)। [कोड़+ल (वि० प्र०)]

कोड़ा—(सं०)-(१) ऊख की दूसरी निराई (पट०) पर्या०—दोसर पटावन (शाहाब), दोसरी पटावन (द० भाग०)। कोड़नी (पट०-४, भग०-५)। [देशी, (संभ०)< कोड्डल (बिहा०), कोड़ना (हि०)] (२) (चंपा०-१) दे०—कोरा। [कवल=बालों का गुच्छा]। (३) आग तापने के लिए बने भूर का ढेर (चंपा०-१)। पर्या०—घूर (मै०-२, चंपा०), घुरौरा (पट०-४, भग०-५)।

कोड़ार—(सं०)-(१) वह खेत, जिसमें साग-भाजी बोई जाती है (चंपा०-शाहा०-१)। दे०—कोरार। (२) वह खेत, जो बार-बार कुदाल से कोड़ा जाता है (शाहा०-१)। (३) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। (४) वह जमीन, जिसमें फुलवारी में लगाये जानेवाले पौधे पैदा होते हैं (पट०, ग०)। पर्या०—कोरियार (पट०, गया), कोरौंड़ (द० मै०), कैरियार (शाहा०), बारी (मै०), आतिहानी (द० मुं०)। [कोड़ा+आर, कोड़ा< कोड्ड अथवा कोड्डल (बिहा०), आर (हि०) अथवा< केदार या कालसूद, गोलसूद अथवा (संभ०)< वडार (=चौका) ?]

कोड़ी—(सं०) दे०—कोरी।

कोढ़—(सं०)-(१) सामा (श्यामाक) के चावल को दूध में पकाकर बनाया गया एक प्रकार का भोज्य पदार्थ (दर०-१)। पर्या०—कोढ़ा (मै०-२)। (२) एक प्रकार का भीषण चर्मरोग। [मिला०—कुष्ठ]

कोढ़ा—(सं०)—(१) मकई की बड़ी बाल (मुं०-१)। (२) सोने-चाँदी के आभूषण को गूँथने के लिए उसके ऊपर बना हुआ छेद (मुं०-१, पट०-४, भग०-५, मै०-२)। [मिला०—कुंडल]

कोढ़ि—(सं०)—(१) हल या गाड़ी में चलनेवाला मोटा और आलसी बैल, जो कार्य करते समय अधिकतर बैठ जाया करता है। पर्या०—बकचा।

कोढ़ी—'कोढ़ि बरद के फेंकरि बहुत'= कोढ़िया बैल ज्यादा हुँकता और उपद्रव करता है। (२) कोढ़-रोग-ग्रस्त [कोढ़ि< कोढ़ी< कुष्ठिन्]

कोढ़िया हल—(वि०) वह पौधा, जिसमें कली आ गई हो (चंपा०-१)। (क्रि०)—किसी पौधे में कली लगना (चंपा०-१, भग०-५, पट०-४)। [मिला०—कुड़=डाली आदि का अग्र भाग। कोरक< (वि०)-कोरकित, कुड्मल]

कोढ़िया—(सं०) दे०—कोढ़ी। [मिला०—कोढ़=एक प्रकार का घुन। कुड़=एक प्रकार का रंग]

कोढ़िला—(सं०) धान के खेत में उगनेवाली एक घास (उ० मै०, दर०-१)। इस घास के डंठल से सिकाई के लिए मौर और इसी प्रकार की दूसरी चीजें बनाई जाती हैं। दे०—लेंढई। [(संभ०)—< *कुड, कुड्डल अथवा कूट]

कोढ़ी—(सं०)-(१) ताड़ का वह पेड़, जिससे रस निकाला जाता है (द०-पू० मै०, मै०-२)। पर्या०—बहिरा (द०-पू० मै०), चाँभी सिसवा (द०-प० मै०), अनाडू (द०-प० मै०)। (२) वह हलकी जमीन, जो अपनी उर्वराशक्ति खो चुकी हो। दे०—ऊसर। (३) (सं० ब०) दे०—गढ़ा, कोढ़ि। (४) कली। [कोढ़ी (हि०) ... कुष्ठिन् (आ० प्रयो०)]

कोतनयना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें लाल और भीतर कोटर में धँसी हुई हों (पट०-१)। [कोत+नयन+आ (प्र०), कोत< कोट< कोटर+नयन]

कोदई—(सं०) (शाहा० चंपा०)। दे०—कोदो। [कोदो+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)< कोद्रव]

कोदवा धान—(सं०) कोदो की तरह होनेवाला एक मोटा धान (पट०-१, भग०-५, पट०-४)। [कोदवा+धान< कोद्रवक+धान्य]।

कोदार—(सं०)-(१) फावड़ा, कुदाल। मिट्टी कोड़ने का लोहे का बना एक औजार (द० भाग०, चंपा०, द०मुं०)। दे०—कोरा। [कुदार, कुद्दाल, कुद्दाल] (२) (चंपा०) दे०—कुदारी।

कोदारि—(सं०)—(सं०-४) दे०—कुदारी।

कोदारी—(सं०)-दे०—कुदारी।

कोदो—(सं०)—(१) सावाँ की जाति का एक

अनाज इस अन्न की विशेषता यह है कि भूसी-सहित रखने पर यह पचासों वर्ष तक सुरक्षित रहता है। पर्या०—कोदई=कोदो कोदो (शाहा०)। (२) एक प्रकार की मकई फसल (पट०-४)। [कोद्रव (संस्कृ०), कोद्दव, कुद्दव (प्रा०), कोदों (हि०, कुमा०, बं०), कोदो, कोदा, कोद्रा (बं०), कोद्राँशी (सिं०), कोद्रो (गु०), कोद्रु (मरा०), कोद्रुव (काश०)]

कोन—(सं०—(द० मुं०, शाह०)। दे०—कोनिया जोत। [कोण (सं०) (?)]

कोनसिया—(सं०)-(१) (चंपा०, द०-प० मै०)। दे०—कोनिया जोत। [कोन+सिया< *कोणसृत< *कोणसृतिका (< सीता=जोत की रेखा)] (२)—दे०—कोनिया घर।

कोनसी—(सं०)—(द० मुं०)। दे०—कोनिया जोत। [दे०—कोनसिया]

कोनाकोनी—(सं०,—(प०)। दे०—कोनिया जोत। [कोना+कोनी (सम०) < *कोणाकोणि, (यथा-दण्डादण्डि, मुष्टीमुष्टि आदि)]

कोनासी—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कोना। [कोना+सी (प्र०) अथवा (संभ०) कोणसृतिका]

कोनाह—(वि०) दे०—कोनाहा। [कोना+ह (प्र०) < कोना< *कोण]

कोनाहा—(वि०) वह वस्तु, जिसमें कोना निकला हो, कोना बना हुआ (मुं०-१, पट०-४, भग०-५ मै०-२, चंपा०, सार०-१)। पर्या०—कोनाह। [कोना+हा (प्र०) < कोण]

कोनिया—(सं०) बाँस की फट्टी की तीलियों का बना लटकने का साधन जिसके तीन ओर गोल मेंड़ बनी होती है। (उ० पू० मै०, दर०-१)। दे०—सहरा। (वि०)—कोनेवाला, कोने की ओर (मुं० १)। [कोन+इया (प्र०) < कोण, कोणिक]

कोनिया घर—(सं०) वह घर, जो किसी कोने में स्थित हो। [कोन+इया (प्र०)+घर< कोण, < *कोणिक घर< गृह]

कोनिया जोत—(सं०) एक कोने से दूसरे कोने तक की जुताई की रीति। पर्या०—कोन, कोनसी (द० मुं०), कोनसिया (चंपा०, द०-पू० मै०), कोनी (गया), कोना कोनी (प०)। [कोनिया+जोत कोनिया< *कोण,

जोत< जोत्त (बिहा०) जोतना (हि०)< योजन< √युज् (योगे)]

कोनी—(सं०)—(गया)। दे०—कोनिया जोत। [कोन+ई (प्र०) < कोण, कोणिक]

कोपड़—(सं०)-(चंपा)। दे०—कोरड़। [कोमल (?), कुड्मल]

कोबी—(सं०)-(१) एक प्रकार की तरकारी का छोटा पौधा, जिसके बीच में बड़ा भरा हुआ फूल होता है। (२) औषध के लिए प्रयुक्त एक वनस्पति-विशेष। [कोबी< गो< गोजिह्वा (संस्कृ०) गोभी, गोभी (हि०), दाकिरशक, दाशशाक गोजिया (बं०), पानी, मुसपती (मरा०) गोपालगी, मुलपत्ता, जिभी (गु०), मेडुनालुक चेट्टु, मरिलिक चेट्टु (तं०) याउन (कॉ०), पथुना गहो (क०) कलम कज़ी (फा०, मलीप०-केबेज अं०), पुर्त०-कोउवे।]

कोम्हड़—(सं०)—(उ० मै०)। दे०—कोहड़ा। [कुष्माण्ड]

कोयन—(सं०)—(द० मुं०)। दे०—कोइन।

कोयरि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—कोइरी।

कोयला—(सं०) भट्ठे या इंजन में जलाया जानेवाला लकड़ी का अंगारा या खान से निकला ईंधन-विशेष। [कोकिलक (संस्कृ०), कोइला (प्रा०)]

कोयला फर्नेस—(सं०) कोयले से जलाया जानेवाला बड़ा चूल्हा, जो बड़ी-बड़ी मिलों और फैक्टरियों में रहता है। ऐसे चूल्हों का उपयोग शक्ति-चालित तैयार करने के निमित्त बड़े-बड़े पीपों को गर्म करने के लिए होता है (बिहा०)। [कोयला+फर्नेस< कोयला (हि०)+फर्नेस (अं०), कोयला < कोकिलक]

कोरंजा—(सं०)-(१) वह मजदूर, जिसे मजदूरी में प्रधानतः नकद रुपये ही दिये जाते हैं (द० पू०)। (२) भोज-बाजारों में दही-चूड़ा-पूड़ी आदि का पक्का भोजन। इसके विपरीत कच्चे भोजन को 'भतवान' कहते हैं। [देशी), मिला०—कोरंजा< कौर+अनाज=वह अन्न जो मजदूरी में दिया जाए (हि० श० सा०)]

कोरई—(सं०)-(१)-(शाहा०)। दे०—कोरो। (२) (चंपा)—दे०—कोरो-३

कोरट—(सं०) वह स्टेट, जिसकी देखभाल का

कार्य सरकार की ओर से होता है (शा०-१, पट०-४, चंपा०, मग०-५)। [कोर्ट, कोर्ट ऑफ वार्ड्स (अं०)]

कोरवास—(सं०) धान की पंक्तियों के आधार-स्तम्भ के बीच का अवकाश (उ०-पु० बि०) [कोर+वास, मिला०—कोर (हि०)=पंक्ति, श्रेणी, कतार। कोर=कोर, अंगों की संधि]।

कोरहँड़—(सं०)-(१) (द० बि०)। दे०—कोरार [(देशी) (संभ०) कोरा+मूड़, अथवा फाल+मूड़, गोर+मूड़]। (२) कांटे आदि के गड़ जाने से पैर के तलवे में हो गया घाव। पर्या०—कोरांटी।

कोरांटी—(सं०)—दे०—कोरहँड़ (२)।

कोरा—(सं०) घोड़ा हाँकने का चाबुक। पर्या०—कोड़ा, चाबुक। [कस्स (संस्कृ०)=बालों का गुच्छा]।

कोराइ—(सं०)-(१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद छानकर निकाला गया छिलका, मोटा अंश (पट०, बि० प०)। विशेषकर दलहन दलने के बाद निकली ऊपर की भूसी (पट०)। दे०—चोकर। (२) चावल या चिउरा कूटने पर उससे निकली वह महीन भूसी, जिसमें अन्न के ऊपर का महीन अंश मिला रहता है (चंपा०-१)। [(देशी)—मिला०—कडंगर, कंडन < √कड् (भेदने), कोंडा (मरा०)]

कोराई—(सं०) दे०—कोराय।

कोराना—(सं०) वेतन के बदले नौकर को दिया जानेवाला अनाज (प० मुं०)। दे०—दानी। [कोर+आना—कोरा+अनाज (हि० श० सा०)]

कोराबाल—(सं०) काफी बालू जमा हो जाने के कारण बेकार जमीन (शा०)। पर्या०—बलान (द० प० बि०)। [कोरा+बाल<कोरा+बालू< केवल]

कोराव—(सं०) दलहन का छिलका (भूसी), जो पशुओं का पुष्ट भोजन है (मुं०-१)। पर्या०—कोराइ (पट०, चंपा०, मग०-५, औरंग०)। [(देशी) मिला०—कडंगर, कोड्य< √कड् (भेदने)]

कोरार—(सं०)-(१) दे०—कोड़ार, गोईंड़, गोड़। [कोर+आर, कोर< कोण; आर (हि०) अथवा केदार (संस्कृ०), या फाल+मूड़, गोर+मूड़>गोरट, गोईंट]

कोरियार—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—कोड़ार। [मिला०—दैदार्य अथवा कदारिक]

कोरी, कोड़ी—(सं०) धान की २० पंक्तियों अथवा किसी भी दूसरी वस्तु की एक राशि। बीस का समूह (मं० द०, पट०-८, मग०-५, चंपा०, बे०-२)। पान के पत्तों के कुछ परिमाण निम्न-लिखित हैं—बीडंया—पान की पचास पत्तियों की एक राशि (मं० द०)। आधा ढोली—पान की १०० पत्तियों की एक राशि। एक ढोली—पान की २०० पत्तियों की एक राशि।

मं० द० और शाहा० में निम्नांकित परिमाण हैं—

७ ढोली=१ कनवां।
१४ ढोली=१ अधवा।
२८ ढोली=१ पौआ या पावा।
४ पौआ=१ सेली।
१०८ढोली=१ सेली (मं० द०)।

[(देशी), मिला०—कपर्दिन् (संस्कृ०), स्कोर (अं०)]

कोरीकदरा—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (पट०, गया)। दे०—पगुरी करना। [कोरी+कदरा; कोरी< कवल (< कवलो+√कृ)]

कोरो (सं०)-(१) धान की पंक्तियों का प्रधान अवलंब (बे०, चंपा०, मग०-५)। पर्या०—कोरइ (शाहा०), दुकही (द०, पु०, भा०)। (२) धान के बाल में ऊपर दिये गये छप्पर का आधार-स्तम्भ। पर्या०—खाँभा (पट०, गया), खम्ह। (द० मुं०)। (३) घर में लगे छप्पर का आधार-स्तम्भ। यह लकड़ी या बाँस का होता है तथा कड़ी के रूप में काम में आता है (बिहा०, भाग०)। [देशी, मिला०—कूटम, कूट्य]

कोलदारा—(सं०) कोयला ढालने या हटकाने की लोहे की छड़, जिसका एक छोर टेढ़ा और दूसरा छोर हाथ में पकड़ने लायक बना होता है। (बिहा०)। दे०—अँकुड़ा। पर्या०—अँकुड़ा (हरि०)। [कोल (सं०) या कोयला (हि०)+दारा (< दारना-हि०)]

कोलबाँसी—(सं०) (१) आम का दागदार टिकोला (चंपा०-१)। (२) आम के टिकोले की कोमल गुठली (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)

(३) वह आम, जो चोट खाकर काला पड़ गया हो (शाहा०-१)। [कोल+बाँसी< *कुल्माष, < *कल्माष]

कोलवा—(वि०) कोने वाला, तंग जगह में पड़ने-वाला (मुं०-१) पर्या०—कोलक घर= कोनिया घर (मुं०-१), कोला (मग०-५) [कोल+वा (प्र०)< कोल]

कोलवाड़—(सं०) जमीन का छोटा टुकड़ा, जो घर के पास हो (उ०-प०)। दे०—कोला। [कोल+वाड़ (प्र०)< कोण]

कोलसार—(सं०)-(१) दे०—गुड़ौर। (२) (पट०, गया, पु०)। दे०—कोल्हुआर। [कोल+सार, कोल< कोल्हू< कुलाहक (=लोढ़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला)+सार< शाला]

कोलसार, कोल्हसार—(सं०) वह स्थान, जहाँ ऊख पेरकर गुड़ बनाने के लिए कोल्हू बैठाया जाता है (मुं०-१, पट०-४, भा०-५)। [कोल+सार< कोल्हू+सार< शाला, कोल्हू-मिला०—कुलाहक=लोढ़नेवाला, आवर्त्त की तरह घूमनेवाला]

कोलसुप—(सं०)-(१) अनेक प्रकार के अन्नों को फटकने, ऐंचने और चालने के लिए प्रयुक्त एक साधन, जो बाँस की कमाचियों या मूँज की सींकों का बना होता है। दे०—सूप। (२) अनाज फटकने के लिए प्रयुक्त एक साधन। पर्या०—डगरा (उ०-प० बि०, चंपा०), सूप। [कोल+सुप, कोल (देशी) या कोल< क्रोड, सुप< शूर्प]

कोलसुप

कोलहुकद्द—(सं०) ऊख के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को मिलनेवाला पुरस्कार (पट०)। दे०—पचरावन। [कोलहु+कद्द< कोल्हू+कद्द< कादल (बिहा०) < कर्ष< √कृष्]

कोलहु पचरानी—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—कोल्हू पद और पचरावन। [कोलहु+पचरानी, कोलहु< कोल्हू, पचरानी< पच्चड़ (बिहा०), (हि०) < पच्चलिका (संस्कृ०)=हल का एक दाना, टुकड़ा]

कोलासी—(सं०) दे०—कोलबाँसी।

कोला—(सं०)-(१) जमीन का वह छोटा अंश, जो घर के पास हो तथा साग-भाजी उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता हो (शाहा०, द०-पु०, पट०-४, मग०-५)। पर्या०—कोली, कोलवाड़ (उ०-प०), बारी (चंपा०, बे०), खोंड़, बगैंड़ (शा०, पट०) (वस्तुतः इसका अर्थ है ध्वस्त घर), पेवारी (गया), गरुकी (बेग० साम द० भाग०), कोनासी (बेग० शाहा०)। (२) दे०—कोलवा। (३) चारों ओर डरेर (मेड़) से घेरकर बनाया गया खेत (चंपा०-१)। [कोल=गली, तंग रास्ता, तंग जमीन का एक टुकड़ा]

कोलिपेली असामी—(सं०) साधारण काश्तकारों के स्तर से नीचे का एक छोटा रैयत (पु० बे०)। दे०—सिकमी। [कोलिपेली+असामी]

कोलिया—(सं०) चारों ओर मेंड़ से घिरा हुआ खेत का छोटा टुकड़ा (शाहा०-१, चंपा०, बे०-२)। [कोल]

कोली—(सं०)-(उ०-प०)। दे०—कोला।

कोलहू—(सं०) ऊख या तेल पेरने का यंत्र (बिहा०, भाग०)। पर्या०—कोल्हू, कल। दे०—कोल्हू। [< कुलाहक]

कोल्हकर—(सं०)-(द० मुं०)। दे०—कोल्हकद और पचरावन। [कोल्ह+कर< कोल्हू+कर]

कोल्हुआड़—(सं०) वह स्थान, जहाँ कोल्हू गाड़ा जाता है (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [कोल्हू+आड़ <कोल्हू+वाट <कुलाहक+वाट]

कोल्हुआर—(सं०)-(१) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान। पर्या०—गोसौर (द०-प० शाहा०), कोलसार (पट०, गया, पु०), कोल्हुआड़ (चंपा०-१)। (२) दे०—गुड़ौर। [कोल्हू+आर <कोल्हू+आड़ <कुलाहक+वाट]

कोल्हू—(सं०)-(१) ऊख पेरने की कल, जो आज-कल लोहे की बनी होती है और इसमें तीन बेलन लगे रहते हैं। पहले यह लकड़ी अथवा पत्थर का, आजकल के तेल के कोल्हू की तरह, बना होता था और इसमें ऊख डालकर पिसा जाता था।

कोल्हू

ऊपर कोल्हू का मोहल बना रहता था, जिससे ऊख का टुकड़ा पेरा जाता था। (२) तेल पेरने की, लकड़ी की बनी कल। मिला०—कुठ्ठाडंडक (संस्कृ०), कोल्हुओ (देशी), कोल्हू (हि०), कोलू (पं०)]

कोल्हू

कोसिला—(सं०) पारिवारिक संपत्ति के अतिरिक्त कन्या को मिलनेवाली व्यक्तिगत संपत्ति (चंपा०-१, पट०-४, मग०-५)। [(संस०)< कुसुल कोश]

कोस—(सं०) ३५२० गज या दो मील की दूरी की एक नाप। (जगह के अनुसार इसकी दूरी में अंतर होता है।) [कोश]

कोसला—(सं०) गुप्त धन। पर्या०—पौसकी, कुल्ही, धरोहर (म०-१, मुं०-२, भाग०-१)। [कोसला< कुसूल, कोश]

कोसा—(सं०)-(१) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (द०-भा० मुं०, भाग०, मुं०-२)। दे०—कोइया। (२) आम के फल में होनेवाली गुठली (चंपा० १)। (३) आम के बीज का गूदा (गिरी), जिसकी रोटी भी पकाई जाती है (मुं०-१)। [कोश (संस्कृ०), कोस (पा०, प्रा०) कोसा (हि०)। कोसी (बं०) = बीजकोश, कोसा, कोसी (बं०) अनाज की बाली या भुट्टे आदि के ऊपर रेशे का गुच्छा]

कोसी—(सं०) एक साथ उपजाए जौ और मटर का मिश्रण (द० भाग०)। दे०—जौ-केराई। [(देशी), कोसिला]

कोहुम—(सं०)—(द०-ग०)। दे०—कुसुम। [कुसुम्भ]

कोहँड़ा—(सं०)—(शाहा०-१, चंपा०)। दे०—कुम्हड़ा। [कुष्माण्ड]

कोहा—(सं०)-(१) अन्न रखने का मिट्टी का बर्तन। पर्या०—कटिया (उ०-पू०, द०-प० मुं०), करवा (भाग०)। (२) दही जमाने का मिट्टी का बर्तन, जिसकी पेंदी में बाहर से अतिरिक्त मिट्टी लगा दी जाती है। (३) कटोरे के आकार का मिट्टी का एक पात्र (चंपा०, शाह०) [कोह = पात्र—'कोहोऽस्त्री कुडमलो पात्रे भिन्ने खड्गपिधानके'—(मेदि०). कोहा (भाग०) = दही का जलपात्र। कोह (पू०) = कमाई का बना बाल्टी-जैसा पात्र]

कौकरी—(सं०) चर्चेड़ा या खेखसा-नामक फल, जिसकी तरकारी बनती है (मुं०-२)। दे०—चर्चेड़ा। [कर्कोटा]

कौंरी—(सं०) खाना के बायाँ की ओर (पट०-१) [(देशी), मिला०—कौनी< कोण]

कौआ-कमान—(सं०) (द०-प० शाहा०)। दे०—कौआ लुकान। [कौआ + कमान (देशी); कौआ < काक, काकोल। कमान (फ़ैसी)]

कौआठोल—(सं०) पूस के अनुसार धान का एक भेद (दर०-१)। [कौआ + ठोल; कौआ < काक, < काकोल]

कौआरा—(सं०) एक पत्र-काय घास (पू० मुं०) [(देशी), मिला०—कावार = एक कर्णीय घास (मो० वि० वि०)]

कौआलुकान—(सं०) लगभग डाढ़ इंच का ऊँचा गया पौधा, जिसमें कौआ छिप सकता हो (गया, शाह०, शाहा०)। पर्या०—कौआ-कमान (द०-पू०), कौआ-लुकान (चंपा०-१), कौआ-कमान। [कौआ + लुकान (देशी)। कौआ< काक < काकोल। लुकान लुकाना (बिहा०), लुकाना (हि०)< √लुप् < नि + √ली]

कौआ हाँकल—(क्रि०) खेत से कौओं को हटाना (हाँकना)—संबंध)। दे०—...। [कौआ + हाँकल। कौआ< काक, < काकोल। हाँकल (अनुकरणात्मक शब्दचरक), या < आ + √ह]

कौकनी—(सं०) एक प्रकार की फरवाली लता का फल, जिसकी तलवार या मूली स्वादिष्ट तरकारी बनती है (द० भाग०)। दे०—चर्चेड़ा। [कर्कोटी]

कौड़—(सं०)-(प०)। दे०—घूर। [कुट, कौट]

कौड़ी—(सं०)-(१) जमींदार की ओर से उपजाऊ की नाप पर निर्धारित कर (उ०-प०)। पर्या०—मजिकाई, गुदड़ी (द०-पू० मुं०), कबाड़ (शाहा०), किरायाना (मग०), मौजानी, फिस्कार, केआरी (उ०-पू० मुं०), बरहाना (पट०)। (२) समुद्र में उत्पन्न होनेवाला शंख की जाति का एक कीड़ा, जिसका अस्थिकोश भारत में पहले धन मूल्य के सिक्के के रूप में व्यवहृत

होता था। इससे बैलों का भूषण बनाया जाता है और बच्चे इससे खेलते हैं। [कौड़ी< *कपर्द (संस्कृ०), कवड्ड (प्रा०), कौड़ी (हि०), कौड़ी (बं०, औ०, कुमा०), कौड़, कौड़ा (पं०), कौड़ी (ज० प०), कौड़ (सि०), कौडी, कौड़, कौड़ी (गु०), कवड़, कवडी (मरा०)]

कौनी—(सं०) बाजरे की जाति का मुख्य काली का एक अनाज (मं०-२, पट०-४, मग०-५, भाग०-१, चंपा०-१, दर०-१, मुं०-१)। [कङ्गु (संस्कृ०), कुंगुनी, काकुनी, कौनी, टेंगुनी (हि०), कौगुनी, काली धान (बं०), कांग (मरा०), कांग (गु०), नवणे (कन्न०), प्रेकण्णु पुनेट्टु (तेलु०), म्हा आरजुन (का०), दुखन (अ०)।]

कौर—(सं०)-(१) भूमि को खोद कर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि जलाकर जाड़े की रात में ग्रामीण लोग तापते हैं (प०)। दे०—घूर। (२) पीसने के समय जाँता में एक बार दिया जानेवाला अन्न-परिमाण। दे०—झींक। (३) खाने के समय मुँह में एक बार डालनेवाला भोजन का परिमाण। [कवल]

कौराकाढ़ल—(मुहा०) श्राद्धकर्म में भोजन के पहले कौआ आदि तिर्यग्योनि के निमित्त प्रत्येक को बात और भात के कौर का निकाला जाना।

कौर जापल—(मुहा०) बीज का नष्ट जाना या नहीं उगना (उ०-पू० मुं०)। दे०—बिजमार। [कौर + जापल, कौर (देशी०), कौरना (हि०) = थोड़ा भूनना, सेंकना। मिला०—√कुरि (कई) = काटना]

कौरीकरल—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (जुगाल) करना (पट०, गया, चंपा०)। दे०—पगुरी करल। [कौरी + करल। कौर< कवर< कवल(कवली + √कृ)]

कौआ—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध काला पक्षी, काक; (२) एक प्रकार की मछली, जो अंगुली के समान मोटी और लंबी होती है एवं जिसका मुँह कौवे की चोंच के समान होता है (चंपा०)। पर्या०—कौआ ठोठी। [कौआ < √*काकोल]

कौआ-कमान (सं०) दे०—कौआ-कमान।

कौआ-ठोठी—(सं०)-(१) (मं०-१)। दे०—कौआ-(२)। (२) एक लता, जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा कौवे की चोंच की तरह लंबे होते हैं। [< *काकतुण्डी]

कौआ लुकान—(सं०)-(चंपा०-१)। दे०—कौआलुकान।

कौआ हाँकल—(मुहा०) दे०—कौआ हाँकल।

क्रित्तिका—(सं०) तीसरा नक्षत्र, कृत्तिका। छह तारों का यह नक्षत्र होता है। [कृत्तिका < कृत्ति < √कृत्]

क्वाड़—(सं०) चीनी-मिल में ऊख के रस को गाढ़ा करनेवाला एक चौकोर यंत्र (बिह०)। [क्वाड < क्वाड या क्वाड्रूट (अं०) = वर्गाकार]

क्वाड-मैन—(सं०) चीनी-मिल में क्वाड पर काम करनेवाला कर्मचारी (बिह०)। [क्वाड + मैन (अं०)]

क्वार—(सं०) आश्विन मास, कुआर। दे०—आसिन, कुआर। [क्वार < कुआर < कुमार(?)]

ख

खँखड़—(सं०) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (शाहा०-१)। दे०—खोभड़। [देशी]

खँखड़ा—(सं०)-(१) अन्न का वह दाना, जिसमें केवल भूसा ही हो, अन्न का अंश न हो (चंपा०-१)। पर्या०—खँखरी (शाहा०)। (२) एक पौधा-विशेष, जिसके जंगल में अधिक उगता है। कभी-कभी औरतें अपने बाल के जोड़ को बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग करती हैं। [(देशी), मिला०—कंकाल = हड्डियों का ढाँचा-मात्र; खोखर, खोखला (संस्कृ०) = छिद्रवाला, खक्खड़ = कठोर, घना]

खँखड़ी—(सं०)-(१) अन्न के पौधों में लगनेवाला एक रोग, जिससे बाल में दाना नहीं होता। (२) वह अन्न जोरा जिसके अन्दर अन्न उत्पन्न ही न हुआ हो। खँखड़ा का स्त्रीलिंग। [(देशी), मिला०—कंकाल (संस्कृ०) =

हड्डियों का ढाँचा। खंखर, खंखरक (संस्कृ०) = छिद्रवाला, खखखट (संस्कृ०) = कठोर, घना (मो० वि० वि०), खंख = कंग = सूखा, खाली (हि० श० सा०), कंकट (संस्कृ०) = कवच, ऊपरी आवरण]

खँखरी—(सं०) (शाहा०) दे०—खँखड़ा।

खँगड़ीवा—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तंबाकू (पु० बिहा०)। दे०—लसड़िया। [(देशी), मिला०—खँगी < खंगना (< √खि-क्षये) = छीजना, घटना; खंगी + ईवा (< कोईर ?)]

खँगरा—(सं०)-(१) ताड़ (ताल) का नया पेड़ (पट०-४, भाग०-५, चंपा०)। (२) ताड़ का डंठल-सहित पत्ता (चंपा०, पट०-४, भाग०-५)। पर्या०—खगरा, खगरी (पट०-४, भाग०-५, मुं०-२, चंपा०)। [(देशी), मिला०—खखगड़ = एक प्रकार की बेंत]

खँचड़ा—(सं०)—(१) पंकिल, दलदली जमीन या धारा के साथ बहकर जमी हुई मिट्टी (द०-प० शाहा०)। दे०—पाँक। (२) बदमाश, वर्ण-संकर। [खँच + ड़ा (प्र०) < कच्छ, < कश्यप]

खँजवाह—(सं०) वह अन्न, जिसमें कई अन्नों की मिलावट हो (चंपा०-१)। पर्या०—खदेवा (पट०-४, मुं०-२, भाग०-५, चंपा०)। [खँज + वाह, मिला०—खंजवारी = संचारी; मिला०—√खज् (मन्थे), √वच् (समवाये = मिलना)]

खँड़—(सं०)-(१) (शा०, पट०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—कोला। [खंड] (२) (द० भाग०)। दे०—कोड़ा, कोड़नी। [खँड़ < √खडि]

खँड़चर—(सं०)-(द० शाहा०)। दे०—कोरचोड़ी। [खँड + चर, खँड़ < खंड। चर < चौड़ी = (बिहा०) = बंजर, ऊसर]

खँड़मोढ़ा—(सं०) हत्थे (लकड़ी का चम्मच-जैसा बना औजार) से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गया)। दे०—हथवाहा। [खँड़ + मोढ़ा < खंड (= जमीन का टुकड़ा, क्यारी) + मोढ़ा < मोढ़ना (बिहा०), मोड़ना (हि०)]

खँड़वाह—(सं०)—(पट०)। दे०—खँड़मोढ़ा और हथवाहा। [खँड़ + वाह < खंड (= जमीन का टुकड़ा, क्यारी) + वाह (प्र०) या वाह < √वह्]

खँड़वाहा—(सं०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (पट०)। दे०—पनमोरा। [खँड़ + वाहा < खंडवाह]

खँड़सारी—(सं०) खाँड़ (चीनी) तैयार करने का स्थान (सं० द०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—चीनी के कारखाना। [खँड़ + सारी < खंड + शाला, खाँड़ (हि०)]

खँड़हुल—(सं०)-(१) खड़ का जंगल (चंपा०, मुं०-२)। दे०—खढ़ोर। (२) दे०—खँड़हू (पट०-४, भाग०-५)

खँड़हू—(सं०) पानी के वेग से बाँध का फटना या कट जाना (गया)। पर्या०—खधिया (मुं०-२), खँड़हुल (पट०-४, भाग०-५) [खँड़ + हू < खंड]

खँड़ा—(सं०)-(१) गृहस्थी के काम में आनेवाला लकड़ी आदि काटने का एक औजार (मुं०-१)। (२) घर या खेती की सामग्री (पट०-४)। [< खड्ग, खड्ग]

खँड़ुआर—(सं०)-(१) (गया)। दे०—खँड़वाहा और पनमोरा। (२) बाँध के पास टूटकर बना गड्ढा (भाग०-१)। [खँड़ + आर < खंड]

खँड़ौरा—(सं०)-(द०-प० शाहा०)। दे०—खुद्दी। [खँड़ + औरा। खँड़ < खंड; औरा < चौरा चाउर < चावल (हि०) < तंडुल (संस्कृ०)। मिला०—खँड़ौरा (हि०) = मिसरी का लड्डू, ओला; खँड़ौरी (हि०) = चावल का टुकड़ा। खंडोर्मिल (बँ०), खुदरी < खंड—(नेपा०)]

खँढ़ा—(सं०) परती जमीन, जहाँ तरकारी वगैरह बोई जाती है (पट०-१)। [(देशी) मिला०—खंधा (भग०) = गड्ढा]

खंतर—(वि०) खोदनेवाला (मुं०-१)। [खनित्र (संस्कृ०), खन्ताले, खंते (मरा०) < खनित्रक (प्रा०)]

खंता—(सं०)-(१) पानी के भीतर का बना हुआ गड्ढा (मुं०-१)। (२) नदी-नाले के पास खोदा हुआ गड्ढा। (३) भट्ठी में जलती हुई आग को उसकाने के लिए प्रयुक्त लोहे की छड़। (४) खोदने के लिए लोहे का बना एक लंबा औजार। (५) (द० भाग०) दे०—खई।

(६) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की माप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (द०-प० शाहा०, द०-प० मुं०)। दे०—खनित्र, सबल। [खात, खनित्रक < √खन्]

खंती—(सं०) जमीन खोदने के लिए लोहे का बना एक औजार (मुं०-१, पट०-४, भाग०-५, मुं०-२)। [खनित्र, खनित्रिका (संस्कृ०), खनित्ती (प्रा०), खनित्त (प्रा०), खंती (हि०), खन्ति (बं०), खंति (असा०), खंता (बँ०), खणती, खणता (पो०), खणतें (मरा०)]

खंती

खंध—(सं०) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग। (खंध के खेतों की खाता-संख्या एक होती है, किन्तु प्लाट-सं० अलग-अलग होती हैं पट०-४, भाग०-५)। पर्या०—खंधा, किता, किता (पट०, गया)। [खंध < स्कंध = समूह (खेतों का समूह)]

खंधा—(सं०)—(पट०, गया, पट०-४, भाग०-५) दे०—खंध। [खंध < स्कन्ध = समूह (खेतों का समूह)]

खंधौट—(सं०) खेती की हुई भूमि के एक बड़े भाग का उपभाग, जो और भी कई टुकड़ों में बँटा रहता है। दे०—खंध। [खँध + औट; खंध < स्कन्ध = समूह (खेत-समूह), औट < आवर्त, आवर्त्त]

खंभा—(सं०)-(१) कुएँ की जगत पर गाड़ा हुआ दो नोकोंवाला खंभा, जिसपर ढिकली आधारित है (पट०, चंपा०, द०-पू०, पट०-४, भाग०-५, मुं०-२)। दे०—थुन्ही। (२) दो कानियोंवाला ऊँचा-लंबा स्तम्भ, जिसपर लाठा लटकता रहता है। पर्या०—थुरैया (पट०, शाहा०), थुरई (ग०)। (३) ढेंकी का वह स्तम्भ, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है (द०-प० शाहा०)। दे०—खंभा। (४) (पट०, गया)। दे०—कोरो। (५) किसी वस्तु के अवलंबन के लिए जमीन में गाड़ा हुआ स्तम्भ। पर्या०—खम्हा, खम्हिआ (बिहा०, भाग०)। [स्तम्भ (संस्कृ०), खंभा (हि०), खम्बा (बं०)]

खंभार—(सं०) दे०—खम्हार।

खई—(सं०)-(१) गड्ढे का किनारा, मेड़। पर्या०—खाई, खता, खावाँ, खंता (द० भाग०), छोअरा = छोटे गड्ढे की मेड़ (गया)। (२) गहरा खेत (चंपा०, मुं०-२)। [खई < खेय (= परिखा)]

खकरा—(सं०) दे०—खौरा।

खखड़ा—(सं०)-(१) ताड़ की छाल (पट०-१)। (२) ताड़ के पत्तों के काटने पर बचा हुआ सूखकर गिर जानेवाला पत्ते का मूल भाग (पट०-४, भाग०-५)। [< खोलक]

खखड़ी—(सं०)—(मुं०-१, मुं०-२)। दे०—खँखड़ी।

खखरा—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका। धान या किसी भी अनाज का बिना दाने का निष्फल छिलका (द० भाग०, द० मुं०, भाग०-५)। दे०—भूसा। (२) खलिहान में पड़ा हुआ निष्फल अनाज (चं०, उ०, भाग०-५, पट०-४, भाग०-१)। दे०—पटपर। [मिला०—खँखड़ा]

खखसो—(सं०)-कटैल नाम की एक तरकारी। यह महीन काँटेदार तथा गोल आकार की होती है। पर्या०—खेखसा (मुं०-१, पट०-१, पट०-४)। [देशी]

खखोड़नी—(सं०)—(दर०-१)। दे०—खकोरनी।

खखोरन—(सं०)-(१) जमीन के बरतन से खुरचकर निकाली गई जमीन (गया, द०-प० शाहा०, मुं०-१)। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। दे०—खुरचन। [अनु०]

खकोरनी—(सं०) वर्षा या सिंचाई के बाद धूप लगने से खेत की मिट्टी कड़ी हो जाने पर उसे मुलायम करने के लिए, लोहे के काँटों का बना हुआ हल (बँ०, चंपा०-१, मुं०-२)। दे०—काँटा। पर्या०—खखोड़नी (दर०-१)। [अनु०, या (देशी), खखोरल (बिहा०), मिला०—अनु०—खटखटायते (संस्कृ०), खडखड (प्रा०), खखोरना, खटखटाना (हि०),

खखरात (बँ०), खरात (कौ०), खड़खड़नु (पु०), खड़खड़ने (मरा०), खर्लोठनु (बँ०)]

खकोरी—(सं०)-(चंपा०-१, बँ०-२)। दे०—खखोरन, खुरचनी।

खगड़ा—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०)। [(देशी), मिला०—खगड़=एक प्रकार की घास, सरपत (कौ० बि० हि०)]

खगरा—(सं०) दे०—खँगरा।

खगरी—(सं०) दे०—खँगरा।

खचोला—(सं०) भूसा रखने के लिए बाँस या रहँठे की बनाई गई एक प्रकार की छोटी टोकरी (शाहा०-१, पट०-४, भाग०-५)। [(देशी) मिला०—√खच्=बाँधना]

खजड़ाह—(सं०) कई प्रकार का मिला हुआ अनाज (चंपा०-१)। [मिला०—खँजड़ाह]

खजाना—(सं०)-(१)—(नं० ब०)। दे०—खाजर, धौरका। (२) धान की उपजवाली ऊँची समतल भूमि के चारों ओर का वह लंबा बाँध, जो पानी को रोक रखता है (बे०, उ०-प०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—डँड़ेरी। (३) गाँव के पास का वह जलाशय, जो चारों ओर बाँध से घिरा हुआ होता है तथा जिसका पानी आसपास की जमीन की सतह से ऊँचा होता है। इसका उपयोग खेतों की सिंचाई में किया जाता है (पट०, गया, द० मुँ०, पट०-४, भाग०-५)। (४) कारखाने का निचला भाग, जिसमें तेल रहता है। (५) कोष, भंडार। (६) भूमि पर निर्धारित राजकीय कर (उ०-मु० बँ०, दर०, चंपा-१)। दे०—मालगुजारी। (७) *नील के कारखाने में पानी इकट्ठा करने की बावली। [खजाना (फा०); खजिना (मरा०)]

खजुरबन्ना—(सं०) खजूर के पेड़ों से भरी हुई जगह (पट०-१, पट०-४, भाग०-५, बँ०-२)। [खजुर+बन्ना<*खजूर वन]

खजुरिया—(सं०) वह बीजू आम, जो खजूर की तरह लंबा होता है (पट०-२)। [खजुर+इया (प्र०)<खजूर<*खर्जूरक]

खजूर—(सं०) (१) ताड़ की जाति का एक वृक्ष, जो सीधा और लम्बा होता है तथा जिसके फल छोटे, पीले और एक साथ गुच्छे में लटके रहते हैं। पकने पर फल खाया जाता है। इसके वृक्ष से नीरा (ताड़ी) भी निकलता है। इस पेड़ में फलनेवाला फल (चंपा०-१, पट०-४, भाग०-५, बँ०-२, भाग०-१, दर०-१, सा०-१, पट-१)। [खर्जूर (संस्कृ०), खज्जूरी (पा०), खज्जूर (प्रा०), खजूर, खिजूर (हि०, पं०, म०) खेजूर गाछ, खाजूर (बं०), खाजुर, खिजुरी, खिजुरी (मरा०), खजुरी (गु०), खाजूर (काश०), खाजुरि (कौ०), खजर (कश्म०), इच्चली, ईचुल, काडि ईचुल (कन्न०), इन्दाफ़ेडु, खजूर पंडु (तेल०), कजुरू (सिंह०), तमर सतल, खुरमाय हिंदी (फा०), खुरमालर, रुतब हिंदी (अ०)]

खटना—(क्रि०) कड़ना, परिश्रम करना (चंपा०-१)। [(देशी), संभ०—<√घट् (चेष्टायाम्)]

खटाई—(सं०)-(१) आम की फलियों पर पड़ा हुआ धारीदार। दे०—बौनी। (२) आम की सुखाई हुई फटाई। (३) खट्टापन (बिहा०, भाग०)। [(देशी), मिला०—खट्टू]

खटावल—(क्रि०) खटना क्रि० का प्रे०। खटाना, पूरी मेहनत कराना।

खड़—(सं०) दे०—खाड़।

खड़खड़ा—(सं०) (चंपा०, द० भाग०)। दे०—खड़खोड़ा और हलवाहा। [खड़+खड्डा; खड़<खंड, खड्डा<खट्टल (बिहा०), खटना (हि०)<√खुन्द्]

खड़खर—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खेरखाँड़ी। [मिला०—खँड़िच्च]

खड़तरोई—(सं०) एक प्रकार की तरोई, जो तरकारी के काम में आती है। इसका छिलका मोटा और धारीदार होता है (शाहा०-१) [खड़+तोरई (देशी)]

खड़भिड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची (असमतल) जमीन (पट०-४, भाग०-५, शाहा०-१)। [खड़+भिड़+आह (प्र०); संभ०—<खड़<खड्ड<*खहद्, गर्त, भिड़<भिट (भित्ति...मंदि०)। खड़बड़ (बं०), खड़बड़ी (नि०), खाबड़ (हि०)-(अंगा०)]

खड़मास—(सं०) पूस या चैत का महीना, जिसमें विवाहादि शुभ कार्य वर्जित होते हैं (मुं०-१)। पर्या०—खड़मास, खरमास (चंपा०, बँ०-२)। [खड़+मास<खर+मास]

खड़हा—(सं०)-(१)(उ०-मु० बँ०)। दे०—घोड़ा। (२) एक जंगली जानवर, जो बिल्ली की तरह और तेज दौड़नेवाला एवं उजला या चितकबरा होता है—खरहा। [खड़+हा<खंड, खात]

खड़ही—(सं०) एक प्रकार की घास, जिससे घर छाया जाता है (दर०-१, बँ०-२)। [(देशी), मिला०—खर, खड़]

खड़ा—(सं०)—(१) बिना हेंगा दिये जुता हुआ खेत। (२) फसल का खेत में लगा रहना। (वि०) (३) खड़ा हुआ। [देशी]

खड़ा टाल—(सं०)-(१) अनाज निकालने के पहले मकई, रहर, आदि का, कटी फसल को सुखाने के लिए उसके ऊपरले भाग को ऊपर करके रखा हुआ, ढेर (मं०-उ०)। (२) टाल की सूखी जमीन, जिसमें वर्षा के अभाव से नमी न हो (भाग०-५) [खड़ा+टाल, मिला०—अट्टाल=ऊँचा भवन]

खड़ारा—(सं०) दे०—खाड़ार।

खड़ुआ—(सं०) घास का खड़ा पुआल (मुं०-१); करहा। [खड़ा+उआ]

खड़ुका—(सं०) जमीन या किसी फसल के खेत में उगनेवाली एक घास (उ०-मु० बँ०, शाहा०)। आजकल यहाँ जमीन की खेती नहीं होती है। पर्या०—खरखुआ (पट०, गया), खडुआ, सोपाहि (सारन०)। [देशी]

खढ़ो, खाँढ़—(सं०) पानी बहने के लिए मेंड़ काटकर बनाई गई नाली (मुं०-१)। [देशी, मिला०—खंड]।

खदड़ा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी के निकले भाग में डंडों को पूर्ण करने के लिए बनाया गया गड्ढा (कहीं-कहीं)। दे०—पचरी। (२) गड्ढा। [<*खात,<*खर्त]

खदरी—(सं०)—(द०-प० शाहा०)। दे०—खोरी।

खदू—(सं०) खर, पतन। एक विशेष घास, जिससे छप्पर छाया जाता है (भाग०-१, चंपा०)। पर्या०—खर, खड़ [खड़<खर, कट]

खदार, खदारा—(सं०) घास के खेत की पहली जुताई (मुं०-१)। [देशी, मिला०—खड़ा]

खदिकावल—(क्रि०) खेत को जोतकर बिना हेंगा दिये छोड़ देना (चंपा०-१)। [<खड़ा, <खंड]

खदीर—(सं०) वह जमीन, जहाँ छप्पर छाने के काम में आनेवाली घास पैदा होती है। पर्या०—खदीला, खरहुट (सं० ब०, चंपा०)। [खड़+ईर<*खर+आवट, कट+आवट]

खदीला—(सं०) दे०—खदीर। [खड़+ईला<खट्, कट+आवट]

खतहवा भिंगनी—(सं०) एक प्रकार की तरकारी। बड़ी आकृति की भिंगनी (पट०-२)। [खतहवा+भिंगनी (देशी)]

खतियान—(सं०) वह सरकारी रजिस्टर, जिसमें जमीन का पूरा ब्योरा लिखा रहता है (शाहा०-१, पट०-४, भाग०-५, बँ०-२, चंपा०, भाग०-१)। [संभ०—खत, खाता<खतम् (संस्कृ०), खत्तम् (पा०, प्रा०), खाते (मरा०), खातु (गु०, नेपा०)]

खतिऔनी—(सं०) वह बही, जिसमें मालगुजारी का आय-व्यय या हिसाब किताब अलग-अलग लिखा जाता है (शाहा०-१, पट०-४, भाग०-५, चंपा०, बँ०-२)। [देशी, संभ०—<खत (फा०)]

खत्ता—(सं०) (१) दे०—खाई। (२) (मं०-ब०)। दे०—गाड़। [देशी, मिला०—खात]

खदगीर—(सं०) (शाहा०)। दे०—खदीर खेत। [खड्+गीर, खड़<खर<खात्, गीर<गोचर (?)<गेयक (?); मिला०—गौ+चर]

खदहा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी के निकले भाग में डंडों को पूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा। (उ० मुं०)। दे०—पचरी। (२) गड्ढा। [खद<हा (प्र०)<खात]

खदिहा खोल—(क्रि०) सिंचाई किये बिना ही उग जाने पर उसके बीज पर मट्टी पानी, घास आदि की खाद देना (द०-प० बँ०)। पर्या०—गोबर पटारल (मुंगे०) (उ०-प० बँ०)। [खदिहा+खोल (क्रि० प्र०)<*खात]

खदुँआ—(सं०) साग रखने की छोटी मट्टी (मुं०-१)। [खद+उँआ (प्र०)<खाद<*खात्य]

खदीड़—(सं०) (नं० ब०)। दे०—खादर। [खद+ईड़ (प्र०)<*खात]

खदीड़ खेत (सं०) वह खेत, जिसमें बहुत देरतक

खाद पड़ी हो। पर्या०—गोबरायल, भरल (द०-पू० मैं०), खदीर (पं० द०), खद्गौर, खरित (शाहा०), पटायल (मं० ज०)। [खदौड़+खेत < खद + खौड़ < खाद्यावट; खेत < क्षेत्र]

खदीर—(सं०) (पं० द०)। दे०—खदीड़ खेत। [खद+खीर < खाद्य+आवट]

खद्दी—(सं०) खाद। दे०—खादर।

खधरल—(क्रि०)—(१) पानी की धारा या उसकी लहरों के धक्के से किनारे की मिट्टी का कटना (शाहा०-१)। (२) पाव के घाव से मांस का गिरना (चंपा०-१)। (३) किसी मादा मवेशी (गाय-भैंस) को जनने दिन से सफेद रंग की लस दार चीज का निकलना (चंपा०-१)। (क्रि०) पानी की धारा या लहरों द्वारा काटी हुई जमीन (चंपा०, पट०-४, मग०-५, मैं०-२, भाग०-१)। [खात+री (प्र०) < खात० < खात]

खधुक—(सं०) कर्ज लेनेवाला (शाहा०-१)। [देशी. मिला०—खाना या खाद]

खधुली—(सं०—चंपा)। दे०—खोइली।

खधेल—(सं०) पशुओं के खाने के बाद बची हुई व्यर्थ की (अखाद्य) घास, भूसा आदि (शाहा०)। पर्या०—खोंठी, उपहल (भभ०-५, चंपा०, पट०-५)। दे०—उधेर। [खाद+एल (प्र०—कुत्सावाचक) < खाद]

खधोरल—(क्रि०)। दे०—खधरल।

खन—(सं०) नये कोल्हू को बनाने के लिए बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (द०-पू० मैं०)। [देशी]

खनकीर—(सं०) ईंट या पत्थर से बना कुएँ का गोल घेरा। [देशी]

खनल—(क्रि०) खनना, कोड़ना। [खान (संस्कृ०, प्रा०), खणइ (प्रा०), खनना (हि०), खनुन (काश्म०), खणणों (कुमा०), खनु (नें०), खनिया (बंग०), खणवुं (गु०), खणणें (मरा०), खनिनु (सिंह०)]

खनसारी—(सं०) एक आदमी द्वारा व्यवहृत मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें तीन लकड़ियाँ लगी रहती हैं (द०-पू० मैं०)। दे०—बिसारी। [देशी]

खनावल—(क्रि०) खनल क्रि० का प्रे०। खनवाना, कोड़वाना।

खनित—(सं०) काटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की माप के लिए प्रयुक्त एक हाथ की लकड़ी (द०-प०)। दे०—ताहा। [खनित्र = खंती < √खन्]

खनिता—(सं०) वह जमीन, जो सड़क के किनारे सड़क को भरने के लिए खोदी जाती है (शाहा०-१) [खनित]

खपचल—(क्रि०) किसी नुकीली वस्तु से दूसरी वस्तु पर आघात करना, खपचाना। [(वि०) खपची हुई वस्तु। [क्षपित, क्षपित < √क्षप]

खपचार जाल—(सं०) मछली पकड़ने का एक प्रकार का जाल, जिसे दो आदमी दोनों तरफ से पकड़कर अपनी-अपनी ओर खींचे रहते हैं। इसमें नीचे लोहे की गुटिया लगी रहती है (भा०-१)। [खपचार+जाल < खपचार (देशी)]

खपड़ा, खपरा—(सं०)—(१) कुआँ के बनाने या दीवाल के बाँधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा। पर्या०—साढ़ (द०-प०), मोखड़ा (द०-प० शाहा०), गिरदा (पट०), गेंडुआ (भा०, द० मुँ०), घाट (द०भाग०)। (२) छप्पर छाने के लिए मिट्टी का बना और आग में पकाया हुआ लंबा, गोल अथवा चौड़ा एक प्रसिद्ध साधन। घर छाने का खपड़ा। खपड़ा, खपरा दो प्रकार का होता है—नरिया, जो नाली-जैसा होता है और ऊपर से रखा जाता है, दूसरा थपुआ, जो चौड़ा होता है और जिसके किनारे खड़े होते हैं। यह नीचे बिछाया जाता है। आजकल नई ढंग का खपड़ा होता है, जिसे 'टाइल' कहते हैं। [< खर्पर < कर्पर (संस्कृ०), खप्पर (प्रा०), खपड़ा (हि०, नें०), खापड़ (कुमा०) = खोपड़ी। खापरी, खपड़ (गु०), खापड़ी (पंज०), खापरा (बं, ओ०), खापरा (मरा०) = टुकड़ा खपड़ (मरा०)]

खपड़ोइया—(सं०)—(१) चावल में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा उजला कीड़ा (चंपा०)।

पर्या०—गढ़रा (गया, शा०, मैं०, चंपा०, पट०-४, भाग०-५)। (२) बेल, नारियल आदि का ऊपरला मोटा छिलका। (३) कछुए के शरीर के ऊपर का भाग। [मिला०—खर्पर]

खपरा—(सं०) दे०—खपड़ा। [खर्पर, कर्पर]

खपरा छावल—(मुहा०) खपड़े से घर का छाना। [खपरा+छावल; खर्पर+छादन]

खपड़ा फेरल—(मुहा०) खपड़ा फेरना या खपड़े की छावनी की मरम्मत करना।

खपड़ा बदलल—(मुहा०) दे०—खपरा फेरल।

खपावल—(क्रि०) खपाना, समाप्त करना, आँख बचाकर किसी का माल उड़ाना। [< क्षप्]

खपियार—(सं०) पानी में फेंककर मछली मारने का एक प्रकार का जाल। [क्षपित (?)]

खभकल—(वि०) खोदने या खिसकने के कारण बना गड्ढा। पर्या०—खभरल।

खभरल—(वि०) दे० खभकल।

खभार—(सं०)—(१) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदा गया कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (गया)। दे०—दबद। (२) गड्ढा। (३) सुअरों के रहने की जगह। पर्या०—खोभार (चंपा०)। [मिला०—स्कम्भ, कपाट (संस्कृ०), खभात्र (हि०)]

खभारल—(क्रि०)—(१) जमीन को हलके-हलके कोड़कर मिट्टी को ऊपर-नीचे करना (शाहा०-१)। (२) नदी की लहरों से जमीन का धीरे-धीरे कटना। [खभरना (हि०)]

खमहुरुआ—(सं०) एक लता, जिसके कंद और फल दोनों की तरकारी बनती है (मुँ०-१)। दे०—खम्हरुआ। [देशी, मिला०—खमालू (?)]

खम्हल—(क्रि०)—(१) पशुओं का दुर्बल होना (पट०-४)। (२) दे०—खाभल-३।

खम्हरुआ—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पु०, मैं०-२)। दे०—सतार। [(देशी), मिला०—खमालू (?), वाराही कंद (संस्कृ०), वाराह कंद, गेंठी (हि०), चमार आलु, चामालु, चुबडि आलु (बं०), डुकर कंद, वाराही कंद (मरा०), सुवरिया, सालियम्या वेल्य (गु०)]

खम्हा—(सं०)—(द०-प०, द० मुं०, पट०, चंपा०, द०-पू०, पट०-४, भाग०-३, मैं०-१, भाग०-१, आज०)। दे०—खंभा और थूनी [< *स्कम्भ]

खम्हार—(सं०)—(द०-पू० मैं०)। दे०—गाँज। [खम्हा + र (प्र०) < *स्कम्भ]

खम्हार, खँभार—(सं०)—(१) फसल तैयार करने की जगह, खलिहान (मुं०-१, दर०-१)। दे०—खरिहान। (२) (द०-पू० मैं०)। दे०—गाँज। [खम्हा+र (प्र०) < *स्कम्भ]

खम्हिया—(सं०)—(चंपा०, आज०)। दे०—खंभा।

खयरा—(सं०) वह बैल, जिसका रंग खैर की तरह थोड़ा लाल हो। (पट०-१)। पर्या०—खैरा। [खयर + रा (प्र०), खैर < *खदिरक (संस्कृ०), खइर (प्रा०), खइर (काश्म०), खैरो (नें०), खैरा (हि०, बं०), खेरो (गु०), खैरा (मरा०)]

खरहरा—(सं०)—(१) खलिहान के अँगन को बुहारने की झाड़ू (द० भाग०)। दे०—निरहुथ। (२) बथान आदि बुहारने के लिए रहंठे आदि की बनी झाड़ू। [खर+हरा < खर्, खट = घास, तृण, अथवा < खल = खलिहान, हरा < √हृ]

खर—(सं०)—(१) खढ़; एक प्रकार की विशेष घास, जो घर छाने के काम में आती है (चंपा०-१)। पर्या०—खढ़, खढ़, खरहू (चंपा०)। (२) एक प्रकार की घास। [(देशी), मिला०—खट्, कुट = घास, तृण; खट्, खट (संस्कृ०), खड़ो (प्रा०), खर (हि०, बं०), खर (नें०), खड़ (गु०, मरा०), खोर (काश्म०), खड़ा (ओ०), खड़ु (सि०) = घास (मैंथा०)]

खरई—(सं०)—(१) एक प्रकार की घास। (२) रब्बी या भैदी फसल का, [illegible] रहर का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, मग०-५)। दे०—रैला।—(३) धान की लता के ऊपर की पत्ती झाड़ी। पर्या०—खरचा (द०-प० शाहा०), कनुआ (द० मुं०)। [(देशी) मिला०—खट्, कुट्, खढ़, खट]

खरफल—(क्रि०)—(१) बाढ़ के पानी का हट

जाना, जाम होना (मुं०-१)। (२) छिन्न-भिन्न होना (मुं०-१), छितरना (चंपा०)। (३) चुभके भान जड़ा होना (मुं०-१)। [खरक+ल (प्र०) <*खरक< √खर। मिला०—खरकनु (नै०)=इकट्ठा होना। खरकनुँ (गु०)= व्यवस्था करना, सजाना]

खरकावल—(क्रि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक; खरकाना।

खरकोटी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहा०)। [खरक+कोटी < खरिका+कोटी, संभ०—<*खडक+कष्ट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया)। दे०—खर-चरी। [खर+चर+आई (प्र०)। खर (देशी) अथवा < कट+चराई < √चर]

खरचरी—(सं०) खरवाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०)। पर्या०—खरच-राई (गं० उ०, गया), खरदिया (शाहा०), घास चराई (मुं०, पट०, पु०), घास चराई (मुं०, पट०, पु०), देना (मुं०, पट०, पु०), मैसौधा (मुं०, पट०, पु०), बरदाना (मुं०, पट०, पु०), दैना (द०-पु०)। यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसौधा' कहा जाता है। [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्रि०)-(१) घास आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोंचना। (२) व्यय करना।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०)। दे०—खरई। [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय। [खर्च (फा०)] (३) डोंगी या लोहे का बना खुरचने का छोटा साधन (द० भाग०)। [<खरच्चल (बिहा०)]

खरचाह—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खोर-चाँही। [खर+चाह, खर<खंड, चाह< चौंही (बिहा०)]

खरचाली—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खोर-चाँही। [खर+चाली। मिला०—खरचाह]

खरचुआ—(सं०)-(पट०, गया, भाग०-५)। दे०—खरहुआ। [खर+चुआ। <खर, चुआ (देशी)]

खरचटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा, द०-पु० मुं०)। दे०—बोझ बटाई। [खर+चट+आइ (प्र०), खर<कट, <खल, <छट+बटाइ<बटाई<वंटन]

खरचिरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा०-१)। [खर+चिरवा। खर<कट, खड़, खल, चिरवा<बीज<बीजं]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में अत्यंत मिठास होती है। पर्या०—ककड़ी (द० मुं०, पट, प०), फूँट (द०-पु०)। [(देशी), खर+बूजा, बूजा<बीज (?)। खर्बूज (संस्कृ०—मा० प्र० मि०), खरबुजा, खरबूज (बँ०), खर्बुज, खरबूज (मरा०), तेलिया, हफ्तेदी, तलिया भोमड़ा (गु०), खरबूज (नै०), खड़जलिते, चन्द्रमुज (क०), खर्बूजे (फा०) खरबुजह (अ०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक पौंजा धान या कोई दूसरी फसल (द०-प० शाहा०)। पर्या०—केरा, पूरी, पाजरबेरी (द० मुं०)। [खर+वन, खर<*कट, अथवा <काटल (बिहा०), काटना (हि०) <√कृत्। वन<√वन् (बाँटने) (?), अथवा खर+वन, खर (=बंडल-सहित फसल) का मिलनेवाला वन (मजदूरी)]

खरवास—(सं०) चैत और पौष का महीना, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-ब्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते। (शाहा०-१, चंपा०)। [खर+मास<*खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और रोयक का अंश अधिक मात्रा में हो (द० भाग०)। दे०—खारी। [खर+वा (प्र०, आकर्षक) <क्षार]

खरवाह—(सं०) समय से पहले सूखी जमीन में धान की बोआई। दे०—खरहुर बावग। [खर+वाह। <खर, <कट या <कड़ा (हि०), वाह (प्र०) अथवा <√वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० मुं०)। दे०—पनभरवा। (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर बिखेरनेवाला मनुष्य (शा०)। दे०—पनभरिया। [खर+वाहा। खर<खंड अथवा कर्षा। वाहा (प्र०) या<√वह्]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहुर बावग। [खर+वे। खर<*कट, <*कर्ष अथवा कड़ा (हि०)। वे<वाप (=वपन) (?) <√वप्]।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहुर बावग। [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा अथवा डंठल और पत्ता (द०-पू० मुं०)। दे०—खाखा। [देशी, या खर+सान। खर<कट (=खाल) +सान <समान (सन-बिहा०=सामान, यथा-ऐसन, वैसन, तैसन आदि)। मिला०—खर-सन (अंगि०)=बिना तैयार किया हुआ तम्बाकू]

खरहुर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई। पर्या०—धुरिया बावग (गं०-उ०), डरी (शाहा०, चम्पा०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीधा (पट०), धूरधूला (द० मुं०), खरहुरिया बावग (मुं०-२, पट०-४, भाग०-५)। [खर+हर+बावग। खर<कट, कर्ष अथवा कड़ा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर<√हृ अथवा खर (<कड़ा)+हर <हल। बावग <वाप (+क) <√वप्]

खरहरल—(क्रि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना। (वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने अथवा बथान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चंपा०)। दे०—सिरहन। [खर+हरा। खर<कट अथवा खल (=खलिहान) हरा <√हृ या झाड़ा <झाड़ल (बिहा०) <उद्+<हृ। खरहर (मरा०)<खर+केश (संस्कृ०)—(मo ब्यु०)]

खरहुरिया बावग—(सं०)—(मुं०-२, पट०-४, भा० ५)। दे०—खरहुर बावग।

खरहुरा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खरहुरा।

खरहूा—(सं०)। दे०—खरहुर।

खरही—(सं०)—(१) धान की खड़ी के आधार स्तम्भ, जो प्रत्येक कोठी के बीच में छँ-छँ रहते हैं। [(देशी)—संभ० <खर या खंड] (२) बड़ा ढेर (चंपा०-१)। [खर+ही (प्र०) <खल, मिला०—कट। खरही (हि०)=घास का अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०)—(मं० द०)। दे०—खहीर। [खर+हुल (प्र०) अथवा<भू]

खरिकौता—(सं०) खरिका (दंतखोदनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताखा (उ०-पू० मुं०)। पर्या०—मुक्का (पट०-४), खरकोटी, मुड़की (गया, द०-प० बिहा०)। [खरिका+कौता। खरिका<खर (हि०)+इका (आत्मा० प्र०), कौता <कक्ष (संस्कृ०)= खात, छिद्र]

खरिच—(सं०)—(शाहा०)। खरीद खेत। [देशी]

खरिदगी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि। पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), कुछकल (द० भाग०) = प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि। (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मौरूसी हकवाला (शाहा०)। (वस्तुतः शब्दार्थ—खरीद की हुई है) दे०—मौरूसीकी। [खरिद+गी (प्र०)< खरीद (फा०)। मिला०—क्रीत, क्रीति<√क्री]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का स्वामी। पर्या०—मैहार। [खरिद+दार (प्र०) <खरीद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, शाहा०) पर्या० — खरिहानी (पट०, गया०-१)। [खरि+हान <*खलधान, <*खलाधान, <*खलै+धानी—(नैपा०)] खलिहान (हि०), खलियान, खलिहान, खली

खलिहान

जाना, अलग होना (मुँ०-१)। (२) भिन्न-भिन्न होना (मुँ०-१), खिसकना (चंपा०)। (३) चूपके साथ खड़ा होना (मुँ०-१)। [खरक+ल (प्र०) < *खरक < √खर। मिला०—खर्कनु (नै०)=इकट्ठा होना। खड़कनु (पू०)= व्यवस्था करना, नाँधना]

खरकावल—(क्रि०) खरकल क्रिया का प्रेरणार्थक; खरकाना।

खरकोठी—(सं०) खरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहार)। [खरका+कोठी < खरिका+कोठी, संस०—<*खटक+कोष्ट]

खरचराई—(सं०)-(गं० उ०, गया)। दे०—खर-चरी। [खर+चर+आई (प्र०)। खर (देशी) अथवा < कट+चराई < √चर]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०)। पर्या०—खरच-राई (गं० उ०, गया), चरदिया (शाहा०), कास चराई (मुँ०, पट०, पू०), कास चराई (मुँ०, पट०, पू०), देना (मुँ०, पट०, पू०), भैसौंधा (मुँ०, पट०, पू०), चरदाना (मुँ०, पट०, पू०), दैंसा (द०-पू०)। यह शुल्क कहीं-कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसौंधा' कहा जाता है। [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्रि०)-(१) काम आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोंचना। (२)व्यय करना।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०)। दे०—खरई। [देशी, मिला०—खरई] (२) खेती आदि का व्यय। [खर्च (फा०)] (३) ठीगी या कोई का बना खुरचने का छोटा साधन (द० भाग०)। [<खरचल (बिहा०)]

खरचाह—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खर-चांडी। [खर+चाह, खर< खंड, चाह< चौकी (बिहा०)]

खरचाली—(सं०)-(पट०, गया)। दे०—खर-चांडी। [खर+चाली। मिला०—खरचाह]

खरचुआ—(सं०)-(पट०, गया, भाग०-२)। दे०—खड़ना। [खर+चुआ। < खर, चुअ ना (देशी)]

खरचटाइ—(सं०) खेत में ही, कटे हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा, द०-पू० मुँ०)। दे०—बोझ बटाई। [खर+बट+आइ (प्र०), खर< कट, < खल, < बट+ वटाइ < बटाई < वंटन]

खरविरवा—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा०-१)। [खर+बिरवा। खर< कट, खट, खड़, बिरवा< बीज< वीर्य]

खरबूजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में अधिक मिठास होती है। पर्या०—खरबूजी (प० मुँ०, पट, प०), फूट (द०-पू०)। [(देशी), खर+ बूज, बूज< बीज (?)। खर्बूज (संस्कृ०—मा० प्र० नि०), खरबूजा, खरबूज (बँ०), खर्बुज, खरबूज (मरा०), तेलिया, गजकरेटी, तलिया बीमड़ा (पु०), खरबूज (तै०), खडुजमीते, खडुभूजा (क०), खर्बूज (का०) खरपुनह (अ०)]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक बोझा धान या कोई दूसरी फसल (द०-प० शाहा०)। पर्या०—खेरा, पुरी, पाखपसेरी (प० मुँ०)। [खर+वन, खर< कट, अथवा < काटल (बिहा०), काटना (हि०) <√कृत्। वन< √वन् (मांगने) (?), अथवा खर+वन्, खर (=डंठल-सहित फसल) का मिलनेवाला वन (मजदूरी)]

खरवाँस—(सं०) पौष और चैत का महीना, जो हिन्दू-रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-ब्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते। (शाहा०-१, चंपा०)। [खर+माँस< *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (द० भाग०)। दे०—खारी। [खर+वा (प्र०, अल्पार्थक) < खार]

खरवाह—(सं०) समय से पहले सूखी जमीन में धान की बोआई। दे०—खरहर बावग। [खर+वाह। < खर, < कट या < खरा (हि०), वाह (प्र०) अथवा <√वह (?)]

खरवाहा—(सं०)-(१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द०-प० मुँ०)। दे०—पनभरना। (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर-उधर फैलानेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—पनमीरा। [खर+वाहा। खर< खंड अथवा कर्ण। वाहा (प्र०) या <√वह]

खरवे, खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वे। खर< *कट, < *कर्ष अथवा खरा (हि०)। वे < वाप (=बपन) (?) <√वप]

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वेह, मिला०—खरवे]

खरसान—(सं०) तम्बाकू का टूटा अथवा डंठल और पत्ता (द०-पू० मुँ०)। दे०—झाला। [देशी, या खर+सान। खर< कट (=खाल) +सान <समान (सन—बिहा०=सामान, यथा—रेसन, बैसन, तैसन आदि)। मिला०—खरसान (संता०)=बिना तैयार किया हुआ तम्बाकू]

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई। पर्या०—धुरिया बावग (गं० उ०), हरों (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह, खरवे (गया), बीचा (पट०), सूखमुत्ता (द० मुँ०), खरहुरिया बावग (मुँ०-२, पट०-४, भाग०-५)। [खर+हर+बावग। खर< कट, कर्ष अथवा खरा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर <√हृ अथवा खर (<खड़ा) + हर < हल। बावग < वाप (+क) <√वप]

खरहरल—(क्रि०) खरहरे से जमीन को झाड़ना। (वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि।

खरहरा—(सं०) खलिहान में अन्न बुहारने अथवा बथान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चंपा०)। दे०—सिरहुत। [खर+हरा। खर< कट अथवा खल (=खलिहान) हरा <√हृ या खड़ा <खाड़ल (बिहा०) < उद्+ <√हृ। खराट (मरा०) < खर+यष्टि (संस्कृ०)—(म० क्यु०)]

खरहुरिया बावग—(सं०)—(मुँ०-२, पट०-४, भा० ५)। दे०—खरहर बावग।

खरहुरा—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खरहरा।

खरहा—(सं०)। दे०—खरहा।

खरही—(सं०)—(१) धान की बखार के आकार का स्तम्भ, जो प्रत्येक कोठी के बीच में रहे-रहे पड़ते हैं। [(देशी)—सं० <खर या खंड] (२) बड़ा थव (चंपा०-१)। [खर+ही (प्र०) < खल, मिला०—कट। खरही (हि०) = घास का अन्न का ढेर]

खरहुल—(सं०)—(प० द०)। दे०—खहीर। [खर+हुल (प्र०) अथवा < भू]

खरिकौला—(सं०) खरिका (दँतखोदनी) रखने के लिए दीवार में बना छिद्र या ताखा (द०-पू० मुँ०)। पर्या०—मुखा (पट०-४), खरकोठी, सुखकी (गया, द०-प० बिहा०)। [खरिका+कौला। खरिका< खर (हि०)+इका (अल्पा० प्र०), कौला < कपट (संस्कृ०)= खाल, छिद्र]

खरित—(सं०)—(शाहा०)। बबीत खेत। [देशी]

खरिहनी—(सं०)—(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि। पर्या०—इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), खुसरुकत (द० भाग०) = प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि। (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनेवाला, न कि मौरूसी हकवाला (शाहा०)। (शब्दतः शब्दार्थ—खरीद की हुई है) दे०—गैरमौरूसी। [खरिद+नी(प्र०)< खरीद (फा०) मिला०—क्रीत, क्रीति < √क्री]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का स्वामी। पर्या०—बैहार। [खरिद+दार (प्र०) < खरिद (फा०)]

खरिहान—(सं०) फसल की दौनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, शाहा०) पर्या० — खरिहानी (पट०, दर०-१)। [खरि+हान <*खलधान, <*खलाधान, <* खले+धानी—(बैदा०)] खलिहान (हि०), खलियान, खलिहान, खली

खलिहान

(मै०), खलिवाड़ (पं०, सिं०, ग०) < *खल-वाट। खल (बं०), खला (ग्रस०, ओ०), खर (सिं०), खलू (गु०), खले (मरा०), कल (सिंह०)]

खरहानि—(सं०) दे०—खरिहान।

खरिहानी—(सं०)-(१) (पट०-४, चट०, चंपा०१, चम०-१) । दे०—खरिहान। पर्या०—खरि हानि। (कट०-१)[खरि+हानी, खरी+हानि +ई (प्र०) < *खलधान, *खलधान्य, *खलाधान; < *खले+धानी—(नेपा०)] २—चौकीदार को किसान की ओर से मिलने-वाला पारिश्रमिक, जो खलिहान में ही दिया जाता है (उ० प०, मैं०-२, भग०-५) । दे०—चौकीदारी। ३—बढ़ई को किसी हथियार की मरम्मत आदि कार्य करने के बदले मिलने-वाली मजदूरी, जो प्रायः खलिहान में ही मिलती है (चंपा०, मैं०, मैं०-२, पट०-४, भग०-५) । दे०—हाली। ४—चमार को जूता बनाने के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा०, गया) । दे०—भाँवर।

खरी—(सं०) तेल निकाल लेने के बाद तेलहन की सीठी। दे०—खरी।

खरीफ—(सं०) दे०—रब्बी। [खरीफ (अ०)]

खरुआयल—(सं०)—(१) बैगन आदि तरकारी के पौधों की वह अवस्था, जब फलना बंद हो जाता है तथा पेड़ सूखने लगते हैं (चंपा०-१)। (क्रि०) —किसी पौधे का सूखना (चंपा०-१, भग० ५)। [खरु+आयल (प्र०) < *खर अथवा खरु (=खेत)]

खरका—(सं०) (१)—अफीम में लगनेवाला एक रोग (द०-प० शाहा०) । (२) फसल में लगने-वाला एक रोग। पर्या०—लाहा (मैं०, पट०, गु०), चकचक (पू० मैं०, गया), हुरचा (प०, पू० मैं०) । [(देशी), मिला०—खरु, खरक (संस्कृ०)=उबका]

खरहन—(सं०) एक से अधिक बार रोपा जाने-वाला बीया (द० प०, मैं० २) । दे०—लाठ। [खरु+हन, खरु < उखाड़ < उखाड़ल (बिहा०) उखाड़ना (हि०) < *उत्खात (संस्कृ०) < √उद्+√खन्; हन < *धान्य]

खरहान—(सं०)—(उ० पू० मैं०) । दे०—खाड़। [खरु+हान। मिला०—खरहन]

खरहो—(सं०)-(१) भेंड़, बकरी आदि पशुओं का समूह (द० भाग०) । दे०—झुंड। (२) छोटे-छोटे बच्चे। [मिला०—खुड्डक, खुल्लक, खुड्डुक (प्रा०), मिला०—खरही (हि०) = घास, अन्न आदि का ढेर।]

खरैठा—(सं०) वह स्थान, जहाँ मूँज नामक घास पैदा होती है (द० मुं०) । दे०—मुजवानी। [खर+ऐठा (प्र०) अथवा < √स्था]

खरैला—(सं०) एक आदमी द्वारा प्रयुक्त होने-वाला मछली पकड़ने का वह जाल, जिसमें बहु लकड़ियाँ लगी रहती हैं। [देशी, संभ०—खर+पेला < पद् +पेला (देशी प्र०) (?)]

खरोर—(सं०) खड़ की बनी झोपड़ी। [खड़+ +घर < कट, < खट+गृह]

खर्रा—(सं०)-(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (प० मैं०) । (२) घोड़े को माँजने (खरहरने) के लिए लोहे या रस्सी की बनी कूची। (३) खाज पैदा करनेवाला रोग, खुजली। (४) खारा पानी। [खर-खर शब्द करनेवाला—अनु०]

खर्री—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका उपयोग पशुओं के चारे या खाद में होता है (सा०, चंपा०) । पर्या०—खल्ली। [कल्क]

खर्रो—(सं०) एक प्रकार की बरसाती तरकारी, सिंगली (प०) ।

खलकोइया—(सं०)-(१) गेहूँ या अथवा किसी दूसरे अनाज के दाने निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (सा०, गया, पट०-४, भग०-५) । दे०—डाँटी। (२) मकई के ऊपर का पत्ता। (३) चमड़ा। (४) छिलका। [खलकी +इया (प्र०) अथवा खल+कोइया। खल < खाल < √खल् (=संचलने) या खल्ल (संस्कृ०), खल्ल (प्रा०), छिलका, खाल (हि०). खलखलतारी (संता०) = चमड़ा उतारना (खाल उतारना), धरती जोतना। काटड़ी (मरा०), चामड़ी, चामडू (गु०) खलड़ि = < *खलड़—(नेपा०); कोइया < कोशिक]

खलखलाएल—(क्रि०)—(१) मछली का पानी में इस तरह घूमना कि पानी ऊपर तक उछल पड़े (ओझ०) । (२) पानी का खौलना। [अनु०]

खलचोइया—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (चंपा०) । दे०—खोइया। [खल+चोइया =चोईंठा (बिहा०), चोई (हि०) < चोच (संस्कृ०) = छिलका। खल = खाल, चाकित। मिला०—खलकोइया]

खलड़ी—(सं०) चमड़ा। त्वचा। दे०—चाम। [खल+ड़ी < *खल्ल, < खाल]

खलवा—(सं०) गहरी जमीन, जिसमें पानी नहीं हो। दे०—खाल। [खल+वा (प्र०) < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) > खल्व। मिला०—खल्ल = नीची भूमि (= 'खलभी' धर्मपरायणे स्वाद् धर्मे धर्मनि भातके'—मेदि०]

खलसी—(सं०) एक प्रकार की मछली। [देशी]

खलार—(सं०)—(१) वह गहरी जमीन, जिसमें पानी न हो (उ०-पू० चंपा०, शाहा०) । दे०—खाल। (२) नीची जमीन। (३) खाल, चमड़ा। [खल+आर (=हरा < धरा), < खात (?) अथवा खल (=खलिहान) < खल्व। खल्ला-धरा। खलधरा या खलधरा]

खलिहानी—(सं०) किसान द्वारा अधिकार बता-कर लिया गया अन्न, जो विशेषतः खलिहान की रक्षा आदि के नाम पर लिया जाता है (पट०) । पर्या०—भाँवर (शाहा०), मँगनी, माँगन (पू० मैं०, पट०-४)। [खलि+हान+ई (प्र०) < खलधानी] टि०—खलिहान में तैयार अन्न के बँटवारे की पद्धति में फसल की कटनी जमींदार और किसान दोनों की देख-रेख में होती है और वह फसल एक संयुक्त खलिहान में एकत्र की जाती है। उसकी देख-रेख दोनों पक्षों की ओर से सावधानी से होती है। जबतक गाँव की अधिकृत सब फसल खलिहान में आ नहीं जाती है, दौनी नहीं होती। जब-तक दौनी, ओसाई और बँटवारा नहीं हो जाता, तबतक उस अन्न में से कोई कुछ भी नहीं उठा सकता है। किसान कटनी के बाद खेत में से गिरे हुए अनाज की बाल को कोड़ (चुन) कर ले सकता है। हाँ, फसल का एक निश्चित परिमाण भी उसे मिलता है, जिसे वह मजदूरी में काटनेवालों को देता है। संयुक्त फसल में से ही गाँव के बढ़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, मुंशी आदि कारीगर या पौनीवाले अपना-अपना भाग ले जाते हैं; क्योंकि वे वर्ष-भर किसान और जमींदार का काम करते रहते हैं। बँटवारे के लिए तैयार अनाज की राशि से इधर-उधर बिखरा आदि के साथ उड़ा हुआ अन्न किसान का ही होता है। 'विघुतविरित' की सम्मिलित राशि से निकलता है। इन सब के बाद बची हुई राशि में जमींदार अपना भाग लेता है। धूलि आदि के साथ मिला हुआ अन्न किसान का होता है। इस प्रकार के बँटवारे में पुआल, भूसा आदि किसान का ही होता है। यह पद्धति जमींदारी-प्रथा के समय की है।

खल्ली—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका प्रयोग पशुओं के खाने या खाद में होता है। दे०—खर्री। (२) जमीन या कोई पर लिखने का उजली मिट्टी का एक साधन, खड़ी, चक। [खटी, खल्ली, कल्क (संस्कृ०), खल्ली (प्रा०), खली (हि०), खलि (बं०, अ०, ओ०), खल (पं०, ग०), खल (मरा०)]

खल्हर—(सं०)—(उ० प०) । दे०—खाल। खल्+हर (< धरा) < खल्ल + धरा, खल्ल धरा या खल+धरा। खलधाद (बं०) खल०,)]

खसुआ—(सं०) दे०—बीज

खसकल—(क्रि०) गिरना, (स्थान से) हटना। [मिला०—खसल] (सं०) गिरा हुआ। [खसले (प्रा०), खसिया (स्प०), खसा (बं०), खसिला (ओ०), खसना (, खसनु (नै०), खसवुं (गु०), खसणें (मरा०)—टर्नर के अनुसार ये सभी रूप धातुज (बाबा०) = उदय)-की एकरूपता में हैं। यद्यपि अर्थभेद है। ये *खस (म० भा०) के प्रतिरूप हैं। मिला०—√कष्, √कस (=जाना, घूमना), √खस् < चोट खाना]

खसरा—(सं०) पटवारी की खेत-बही, जिसमें

खेत का नंबर, रकबा आदि लिखा रहता है। [खसरा (फ०)]

खसरा दानाबंदी—(सं०) वह नक्शा, जिसमें फसल के आनुमानिक मूल्य का हिसाब और निम्नलिखित चीजों का उल्लेख रहता है—तारीख, असामी का नाम, बराबी (जमीन का परिमाण), जमीन की लंबाई-चौड़ाई, फसल का नाम, आनुमानिक वार्षिक उपज का परिमाण। [खसरा (फ०)—दानाबन्दी—(फा०) < दानः+बंदी। मिला०—धान्यः (संस्कृ०) = बूँधे हुए जौ, दानें। बंद = बन्ध (संस्कृ०)]

खसरा बटाइ—(सं०) (१) पटवारी का वह कागज, जिसमें खेत के नंबर, रकबा आदि लिखे रहते हैं। (२) हिसाब का कच्चा चिट्ठा। [खसरा (फ०) + बटाइ (बिहा०, हि०)—< √बण्ट]

खसला—(वि०)—(१) गिरा हुआ बाल, जो जाति का पौधा। दे०—गिरल। (क्रि०)(२) गिरना, अपने स्थान से हटना। दे०—खसकल। [खस + ल (वि० प्र०)। मिला०—खसकना (हि०) √खस् (= चोट खाना), √कष्, √खस (< खाना) = खसयों = गिरजाना < √ खस् (अ०-मू०); खसन् (पु०), खसतुन (बं०)]

खहरल—(क्रि०) पत्ता, बीज या किसी चीज का खिसक-खिसककर गिरना (चंपा०-१)। [खहर + ल < खसलला, खसकल (बिहा०), खसकना (हि०) < √खस्, √कष्]

खाँखड़—(सं०)-(१) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (चंपा०-१)। पर्या०—खखरा, खाँखड़ (शाहा०-१, भाग०) (२) चावल पकाने का बड़ा बर्तन (चंपा०-१)। [(देशी), [मिला०—खाँख (हि०) < खम, खांखर (संस्कृ०), खाँखर (हि०) < खंखर (संस्कृ०) (= खोखला)]

खाँखर—(सं०)—(१) कुएँ के अंदर बगल की दीवार के किसी भाग के गिरने से गड्ढे के रूप में बना हुआ स्थान (उ० प०)। पर्या०—खोखर (चंपा०, द० प० मुं०) पाख (प०), चौर (पट०, गया)। (२) (उ०)। दे०—खखड़। [देशी, मिला०—खाँखड़]

खाँच—(सं०) भूसा रखने के लिए बाँस या रहेठे की बनाई गई एक प्रकार की टोकरी (शाहा०-१) [देशी० मिला०—√खच् = बाँधना; खाँच (बं०)]

खाँच

खाँचा—(सं०)—(१) चीजों साफ करने के काम में आनेवाली टोकरी। (२) अन्न रखने या ढोने के काम आनेवाली बड़ी टोकरी। पर्या०—खाँची, दलवा (गया), डेली (पु०)। [खाँचा < खाँचना (हि०) < √खच् (= बाँधना, जोड़ना, जकड़ना, यथा—खचित, खाँचा (हि०), खाँच् (बं०) = टोकरी]

खाँची—(सं०) छोटा खाँचा। दे०—खाँचा। [खाँचा + ई (अल्पा० प्र०)]

खाँचीढ़ेल—(क्रि०) खेतों में टोकरी से खाद (कूड़ा-कर्कट) देना—(दर०-१)। [खाँची + ढेल]

खाँजी—(सं०) अन्न रखने का एक प्रकार का जाल (उ०-पु० मुं०)। [मिला०—खाँचा]

खाँड़—(सं०) कूटी हुई दानेदार शक्कर। पर्या०—बुर्रा, बूरा, बूरा। [< खंड] (२) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचों-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०)। दे०—बाँध। [< खंड < √खंडि (= टुकड़ा करना, अलग करना)]

खाँड़ी—(सं०) हल में लगे जूए के दोनों किनारों पर बना हुआ अंश, जिसमें बैल के गले के नीचे की ओर लगी रस्सी बाँधी जाती है (पट०)। पर्या०—खाड़ी, (द०-प० मुं०), खोड़ी (प०), खखड़ी (द०-प० शाहा०), कनौठी (गया), खाल (द० भाग०), सिमल, लकड़ी (द०-पु० मुं०)। [खंड > खाँड > खण्ड < खण्ड, खण्ड]

खाड़ी

खाँड़ो—(सं०)—(द०-भाग०)। दे०—खाँड़ तथा बाँध। [< खंड < √खंडि (= टुकड़ा करना, अलग करना)]

खाँसल—(वि०) लात से कुचला हुआ, कुचला हुआ (चंपा०-१)। (क्रि०)—लात से कुचलना, कुचलना। [खाँस + ल (वि० प्र०) < खुन्दल (उ० भा०) < √खुंदल (= मर्दित करना = रौंदना)]

खाँवाँ—(सं०)—दो पहाड़ों या पठारों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (द० प० शाहा०) पर्या०—मेंड़ (शाहा० अंश भाग), मेंड़ (पटा०), अलंग (प०), आहर (द० मुं०), बाँध, बान्ह (अन्यत्र)। [(देशी), अथवा—खाँ + वाँ < खेयबन्ध (?) या खात + बन्ध]

खाँवाँ, खावा—(सं०) तालाब या खाई के चारों ओर का बाँध (पट०, पट०-४, भाग०-५) दे०—मेंड़। [< खात + बन्ध]

खाई—(सं०)—दे०—खाई। [< खेय]

खाजा—(सं०)—(१) ताड़ के फल के भीतर का वह हिस्सा, जो कटहल के कोए के आकार का होता है तथा खाया जाता है (चंपा०-१)। (२)—एक प्रकार की मिठाई, जो लम्बी और और परतदार होती है। [खाद्य, खाद्यक (संस्कृ०), खाज, खाजक (प्रा०), खज्जग (प्रा०), खाजा (हि०), खाज्जा (पं०, खाजा (बं०) = हल्का भोजन, जलपान। खाजे (कुमा०) = खाना। खाजु, खाजा (सि०); खाजी (मरा०) = खिलाना]

खाड़ी—(सं०) (१) (बं०)। दे०—खाँड़ा। (२) दे०—खाँड़ी। [< खात, कूप]

खातु—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—खाँड़ी। [< खात]

खाता—(सं०)-(१)-(चंपा०)। दे०—खोड़ा। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस बहता है (शा०)। दे०—नाली। (३) (चंपा०)। दे०—खात। (४) (सं० ब०)। दे०—खाद। [खात]। (५) पटवारियों की खेत-संबंधी बही। (६) खेतों का चकला। [मिला०—खत (फा०), कत (फा०)]

खातिर—(सं०) जमींदार की ओर से पट्टेदार को लगान के चुकाने में की गई छूट (पट०, गया)। दे०—दखिलकरी। [खातिर (अ०)]

खाद—(सं०)-(१) अन्न रखने के लिए जमीन खोदकर बनाया हुआ गड्ढा। पर्या०—खत्ता या खाधा ((सं० द०), चौर (द०-पु० मुं०), माट (गया), खाध या खाधा (द० भाग०)। [< खात] (२) भूमि की उर्वरता के लिए खेतों में डाली जानेवाली गोबर, कूड़ा-करकट अथवा वैज्ञानिक मिश्रण से बनी चीज (बिहा०, भाग०)। (यौ०)—खाद के गड्ढा = खाद बनाने का गड्ढा। [< खाद्य] (३) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (शा०)। पर्या०—गाडा (चंपा०), गाड़ा (शाहा०), गेड़खा (गया), बलखाद (पट०), टोनखाद, टोनखाधा (उ०-पु० मुं०)। [< खात] (४) किसी अन्न में निम्न प्रकार की चीजों की मिलावट (चंपा०-१)। किसी चीज में बाहर से मिलाई गई या मिली हुई विजातीय चीज (चंपा०-१)। [खाद (हि० बिहा०) = गोबर आदि की खाद। अपवित्र या निम्न स्तर की वस्तु। खाद्य अथवा अ + खाद्य]

खाद के गड्ढा—(सं०) गोबर, कूड़ा-करकट आदि की खाद बनाने का गड्ढा। दे०—घूर। [खाद के + गड्ढा (यौ०)]

खादर—(सं०)-(१) गोबर, मूत, कूड़ा-करकट आदि की बनी खाद (सं० ब०, शा० १) पर्या०—खदीर, खद्धी (सं० ब०), गोबरौरा (प०), गोखा (पु०), करखी (पु०), घूर (सं० ब०-प०), गनौरा (पु०, शा०, पट०-४, भग०-५), गंदौरा (पु०, शा०), कूड़ा (पु०, शा०), कूड़ा-कुरकुट (पु०, शा०), बहारन (पु०, शा०), गोनरौत, गोनौढ़, (द०-पु० मुं०)—(इसका अर्थ, कूड़ा-कर्कट या बुहारकर इकट्ठी की गई गंदगी भी है।) [< खात, तुल०—खातम (संस्कृ०) = गड्ढा खातम (पु०)] (२) पात-पात सड़ाकर बनाई हुई खाद (उ०-प०)। पर्या०—गोखा (उ०-पु०, मुं०), अलाह (पट०, गया), डाही (पट०, गया), हुरा (द० मुं०), खारी (द० भाग०)। [खाद + र (स्वा० प्र०) < खाद्य]

खादर के गड्ढा (सं०) दे०—खाद के गड्ढा।

खाध—(सं०) अन्न रखने के लिए जमीन खोदकर बनाया हुआ गड्ढा (द० भाग०)। दे०—खाद। [< खात]

खाया—(सं०)-(ब० भाग०)—दे०—खाद, खाय । [< खात]

खान—(सं०)-(१) नये कोल्हू को बनाने के लिए बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (ब०-श० बं०) । पर्या०—खान कमाई (ब०-पू० बं०) (२) उस के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई को प्रति कोल्हू मिलनेवाला (दो रुपये का) पारिश्रमिक या पुरस्कार (शा०) । दे०—पचराजत । [खान < खादन] (३) उस पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (गं० ब०-प०) । पर्या०—घर (चंपा), कुंड (मुं०), कूँड (पु०), हुंडा (शाहा०), हँडोलना (शाहा०), हाँडा (द० मुं०), हन्डा या हंडा (गं० ब०) । (४) कोयला, सोना आदि का उद्गम-स्थान । [खात, खानित (संस्कृ०), अथवा खाना (फा०) = घर, < खनि (संस्कृ०) = खान]

खानदान—(सं०)—(ब०-पू० बं०) । दे०—कोठिला । [खानदान (फा०)]

खान्ही—(सं०) दाख, बैर आदि फलों का हत्था (मुं०-१) । [< स्कन्ध = समूह, राशि]

खाप—(सं०) वह भूमि, जिसका भूमिकर, नगद रूप में चुकाया जाता हो (पु० बं०) । दे०—नगदी । [(देशी०), मिला०—खाप < √क्षप् । खापत् ,(अंग० < खात-नेपा०)]

खाबड़—(सं०) एक तरह की सिराउ (शा०-१) [देशी, मिला०—खाबड़ < खवँड]

खाभल—(क्रि०)—(१) खेत की ऊपरी तोड़ने के लिए खुरपी या कुदाल चलाना (चंपा०-१) । (२) खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि का निकालना (शा०, चंपा०) । दे०—चर खुरपी कोड़ल] । (३) गाय, बैल आदि का एक जगह इकट्ठा होकर चरने को जाना (मुं०-१) । [खाभ + ल (प्र०), मिला—√ खुभ]

खार—(सं०)-(१) बाढ़ या वर्षा के कारण नदी आदि में हुई जलवृद्धि (ग० पु०) । दे०—बाहर । (२) वह ऊँची जमीन, जो बाढ़ आदि के कारण गहरी हो जाती है और जिसमें पानी जम जाता है (मग०-५) । (३) खारा पानी, मिट्टी आदि । [<*क्षार < √क्षर्]

खारी—(सं०) वह जमीन, जिसमें नमक, चूना आदि का अधिक अंश हो (मग०-५, पट०-४) । पर्या०—खारवा (ब० भाग०) । [खार + ई (प्र०) < *क्षारिक < क्षार]

खाऊ—(सं०)-(१)—बार-बार रोपा जानेवाला पौधा (ग० उ०) । पर्या०—खखहन । (२) कोदो या अन्य धान के बीज का पौधा, जो एक बार उखाड़कर रोपने के बाद पुनः उखाड़कर रोपा जाता है (ब०-पू० बं०) । पर्या०—खखहान (चंपा०, मैं०-२), खखहन (चंपा०) । [खाऊ < उखाऊ < उखाड़ + ऊ (प्र०, < उखाड़ल (बिहा०), उखाड़ना (हि०) < *उत्खात]

खाल—(सं०)-(१) बिना पानीवाली गहरी जमीन । पर्या०—खाभा, खखार (उ०-प०), खाल्हर (उ०-प०) । (२) चमड़ा । दे०—चाम । [< खात, खल्ल = नीची जमीन । चमड़ा < *खल्ल >]

खाली कौंटा—(सं०) वह काँटा या तौलने की मशीन, जिससे ऊख की खाली गाड़ियाँ तौली जाती हैं (बिहु०, चं०) । टि०—मिल में गाड़ी पर लाया गया ऊख पहले गाड़ी के साथ तौल लिया जाता है और उस वजन को एक पुर्जे पर लिख लिया जाता है । ऊख उतारने के बाद खाली गाड़ी पुनः तौली जाती है । इस प्रकार हिसाब करके ऊख का ठीक परिमाण मालूम किया जाता है । खाली गाड़ी को तौलने का काँटा 'खाली काँटा' और ऊख से लदी गाड़ी को तौलने का काँटा 'भरती काँटा' कहलाता है । [खाली + काँटा खाली < खल्ल, खालित, खालिज (फा०) + कंटक]

खावाँ—(सं०) दे०—खाँई । [खा + वाँ < *खात + वंत]

खावा, खाँवाँ—(सं०)-(प०) । दे०—खाँवाँ, खाया तथा मेंड़ । [खा + वा < *खात + वंत]

खास महाल—(सं०) वह जमींदारी, जिसका प्रबंध सरकार स्वयं करती है (शा०-१, चंपा०, मग०-५, मैं०-२) । [खास + महाल (अ०)]

खाहिन—(सं०) मोटे दानों का एक प्रकार का धान (ब०-प० शाहा०) । [देशी]

खिचड़ी—(सं०)-(१) दाल-चावल मिलाकर बनाया गया भोजन । पर्या०—खुचड़ी (पट०-४) (२) मकर-संक्रान्ति का पर्व, जिसमें नये चावल की खिचड़ी खाई जाती है (भोज०) । दे०—संकरांत ।

खिचड़ी—(सं०) दे०—खिचड़ी । कहा०—'कोठिला बैठि बोलि गई, खिचड़ी खाके क्यों नहीं बोई' (— घाघ) = छोटी कोठी पर चढ़कर कई कहती है कि उसे खिचड़ी खाकर, अर्थात् मकर-संक्रान्ति के बाद क्यों नहीं बोया ?

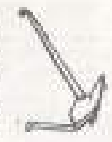
खिखा—(सं०) —(१) फसल (मकई आदि) की न पकी हुई (कुचिया) बाल (मैं०, भाग०-१) । दे०—दुदुधा । (वि०) (२) वह फल, जो अभी पुष्ट तथा पोख्ता न हो, कोमल हो (चंपा०, मैं०-२, मग०-५) । [< *क्लमक < √क्लम (थकना)]

खिजल—(क्रि०) धान का सड़ना (दर०-१) पर्या०—खिजल । [< √खिद् (अर्थ), अथवा < सीद् < √षद्लृ (विशरणगत्यवसादनेषु)]

खिआबा—(सं०) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान और चावल मिले रहते हैं (उ० पु० बं०) । दे०—खुदखुर । पर्या०—खँकड़ा (मग०-५), खखरा (मैं०-२), खोखड़ा (चंपा०) [(देशी), मिला०—√खिद् (अर्थ) अथवा √खिद् (= कोड़ना, धूल करना)]

खिनहुरी—(सं०) पुराना और बिलकुल घिसा हुआ हल । (शा०-१, चंपा०-१) । दे०—खिनौरी [खिन + हुरी < क्षीण + हल (?)]

खिनौरी—(सं०) पुराना तथा घिसा हुआ हल । पर्या०—ढेँढी (ब०-पू०, उ० प० बं०, चंपा०), ढेँढ़ा (ब०-पू०, द० बं०, चंपा), खुरहरा (शाहा०), खिनहुरी (शा०-१, चंपा०-१), खुँटहरा (शाहा०) । [खिन + औरी < खिनहरी < क्षीण + हल (?)] खिनौरी



खिनौरी के जोत—(सं०) पुराने और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (चंपा०, शा०) । पर्या०—ढेँढा के जोत (मैं०, चंपा०), खुँटहरा (शाहा०) । [खिनौरी के + जोत (सं०) < खिनौरी < क्षीण हल । जोत < *युक्त < √युज् । मिला०—√युत्, √जुत् (बाँधना)]

खिरईल—(सं०) छींटकर (बाग) बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०) । [खिर + ईल < खलैल (?)]

खिरनी—(सं०) एक वृक्ष-विशेष । यह पीले रंग का होता है और इसका फल छोटा तथा खटरस होता है (शाहा०-१, चंपा०, मैं०-२) । [< क्षीरिणी]

खिराज—(सं०) जमीन की मालगुजारी (शा०-१, चंपा, मैं०-२) । [खिराज (अ०)]

खिलकट—(सं०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है (मैं०) । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (ब०-पू०) । दे०—खिलमार । [खिल + कट < खिल (संस्कृ०) । कट (प्र०) अथवा < कटल < (बिहा०) < कटना (हि०) < √कृत्]

खिलकट्टी—(सं०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०—खील-२ । (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (ब०-पू०) । दे०—खिलमार-२ । [खिल + कट्टी । मिला०—खिलकट]

खिलमार—(सं०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है । दे०- खील-२ । (२) (शाहा०) । दे०—आबाद । (३) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन । पर्या०—नआबाद खेत (ग० उ०), नौकोल (गया), खिलकट्टी, खिलकट (ब० पु०) । [खिल + मार < खिल + मर < मार्ते < मृत् (मिट्टी)]

खिलाही—(सं०) जमींदार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी पर या बिना मालगुजारी के परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, पू० बं०) । पर्या०—खास चास (ब०-पू० बं०) कोलसारी (शाहा०) । [खिल + ही (प्र०) < *खिल]

खिलत—(सं०) सरकार की ओर से युद्ध आदि में की गई सेवा के बदले कम मालगुजारी

पर की गई भूमि। दे०—जामीर। [खिल्लत (फा०)]

खाँचा—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (द० भाग०)। दे०—पैमाल। [अनु०, मिला०—√खन्, √खज (=मथना)]

खीरा—(सं०) लता में लगनेवाला हरे रंग का एक लम्बोतरा फल, जिसे कच्चा ही खाया जाता है। पर्या०—बालम खीरा = (१) चार फाँकवाला एक प्रकार का खीरा (चंपा०)। (२) एक प्रकार का छोटा और कोमल खीरा (शाहा०)। [खीरा < *क्षीरक (?); खीरो (सं०) < क्षीरक —(चंपा०); खिरा (बँ०), खीरा (हि०, पं०), खिरा (मरा०)]

खीरी—(सं०) एक प्रकार का धान (गया०-१, चंपा, भाग०-५, पट०-४)। दे०—खिरनी। [< खीरी < क्षीरिन् (?)]

खील—(सं०)—(१) परती जमीन (चंपा०-१)। (२) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है। पर्या०—कुराब (द०-पू०), खिलकट, खिलकट्टी, खिलमार (बं०, सं०-२)। (३) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (उ०-प०)। पर्या०—पहू (मं०, शाहा०, द०-पू०), कनिला (द० भाग०), पौढ़ (पट०, द० मुं०)। (४) प्रसूता गाय, भैंस आदि मवेशियों का पहले-पहल निकाला गया पीला रंग का दूध (चंपा०)। (५) धान के अंदर का मांस-कोष [< *खिल]

खील कोड़ना—(मुहा०) धान की बोआई के उपयुक्त बनाने के लिए गैर-आबाद या बंजर जमीन को कोड़ना। पर्या०—खील तोड़ना। [खील + कोड़ना < खिल + कोड़न, कोड़ना (हि०), मिला०—√कुड् (=खोदना) अथवा √कृ (= बिखेरना)]।

खील तोड़ना—(मुहा०) दे०—खील कोड़ना। [खील + तोड़ना < खिल + तोड़न < √तुड् या √त्रुट् (तोड़ना), तोड़ना (हि०)]

खील बैठाखोल—(मुहा०)—(पट०) दे०—बखार। [खील + बैठाखोल < खिल + बैठाखोल, बैठाना (हि०) < वेष्टन]

खीलमारी—(सं०)—(शाहा०)। दे०—खिलही। [खील + मार + ई (प्र०) < खील मार < खिल + मार]

खुँटहरा—(सं०)—(शाहा०)। दे०—खिजौरी के खेत। [खुँट + हर + आ। खूँट < क्षुद्र (संस्कृ०), खुड, खुड (प्रा०) > खोंटा, खोटा (हि०) + हरो < हल]

खुँटा—(सं०)–(पट०, गया, पट०-४, भाग०-५) दे०—खूँटा, थंभा। [क्षुद्र, क्षोड (संस्कृ०) खोड (प्रा०), खूँटा (हि०)]

खुँटिया—(सं०)–(१) (द०-पू० मुं०, चंपा०, भाग० १, मं०-२, भाग०-५)। दे०—खूँटी। [खुँट + इया (प्र०) < क्षुद्र, क्षुद्रिका या क्षोड (= खूँटा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है।)] (२) (द० भाग०)। दे०—खोंसी। (३) (गया, द० भाग०) दे०—जड़। [खुँट + इया (स्वार्थ० प्र०) < क्षुद्र, क्षुद्रिका, क्षोड]

खुँटहरा—(सं०)–(शाहा०-१)। दे०—खुटहरा।

खुँदना—(क्रि०) जोती-बोयी जगह पर पशुओं का पहुँचकर कुचलना। [खुन्द + ना (प्र०) < *क्षुन्द, √क्षुद्]

खुआ, खोंआ—(सं०) फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली पहली दौनी (द० भाग०, -मं०-२) दे०—पौर। पर्या०—लेप (चंपा०)। [खुआ, खोंआ < क्षोद < √क्षुदिर (= संपेषण), खूँदना (हि०), खुन्दइ (नि०) अथवा √खुद (प) + < *खुद]

खुखसा—(सं०) एक पशुखाद्य घास। [देशी]

खुखुआना—(क्रि०) पानी आदि के कारण लकड़ी आदि का कमजोर, मुलायम और हलका हो जाना (शाहा०-२)। [देशी]

खुखुड़ी—(सं०)-(१) मकई के भुट्टे में से दाने निकालने के बाद बची हुई डाँट (द०-प० शाहा०, चाक०)। दे०—ठेंठा। पर्या०—हड्डी (सं०प०), खुखुंडी (चाक०)। (२) एक प्रकार का शस्त्र, जो छोटी तलवार की तरह होता है। [(देशी), मिला०—खंजर या कंकाल]

खुटहरा—(सं०)—(शाहा०)। दे०—खिजौरी। पर्या०—खुँटहरा (शाहा०-१)। (२) पशुओं का खोखा रोग (भाग०-५)। [खुट + हर + आ < क्षुद्र + हल]

खुटिया-(सं०) दे०-खुँटिया।

खुटियारी—(सं०) ऊख की खुटियावाला खेत (पट०-१)। [खुटिया + री (प्र०) < क्षोट]

खुट्टा—(सं०)-(१) ढेंकी का वह खंभा, जिसपर वह टिकी रहती है (द० भाग०, द० मुं०)। दे०—थंभा। (२) मवेशियों के बाँधने का लकड़ी या बाँस का स्तम्भ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (३) (पू० मं०, सं० प०)। दे०—खूँटा। [< क्षुद्र (१) < क्षोड (= हाथी आदि के बाँधने का खूँटा), खुँट (प्रा०)। मिला०—< √क्षुद् (प्रतिघाते)—(म० म्यू०), खूँटा (हि०)]

खुट्टी—(सं०)-(१) वह ऊख, जो पहले कटे हुए ऊख की जड़ से पैदा हुआ हो (पट०-१, चंपा०)। (२) कटी हुई फसल की जड़। (३) कपड़ा आदि लटकाने के लिए दीवार में गाड़ी हुई कील। [क्षोट, दे०—खुट्टा]

खुट्टी कोड़ना-(मुहा०) दूसरे साल के लिए कटी हुई ऊख की जड़ को छोड़ देना, ताकि फिर से उसमें पौधा उगे (पट०-१, चंपा०)। [खुट्टी + कोड़ना]

खुड़हेरना—(क्रि०) जमीन की ऊपरी सतह पर से मिट्टी या घास आदि का हटाना (चंपा०-१)। [खुड़ + हेर + ना (प्र०) < क्षुद्र या खुर + हेर < हल]

खुदनी—(सं०) फावड़ा, चौड़े फलक की कुदाल (गया)। दे०—पौरा। [खुदनी < खोदना (बिहा०), खोदना (हि०), मिला०—√कुद् अथवा √खुद् (= हिलना, डोलना, चलना (मैक०—पर्श०—धी० सि० क्रि०)]

खुदनी

खुदर—(सं०)—(प०, प० मं०)। दे०—गुदरी [< क्षुद्र]

खुदराहा मालिक—(सं०) जमींदारी में कम (खुदरा) दाव रखनेवाला स्वामी (भाग०-५)। दे०—खुदरिहा मालिक।

खुदरिहा मालिक—(सं०)—(चंपा०)। दे०—खुदराहा मालिक।

खुद्दी—(सं०) चावल का टूटा हुआ छोटा-छोटा टुकड़ा (चंपा०-१)। दे०—खुद्दी। [< *क्षुद्र (संस्कृ०), < खुद्द (प्रा०)]

खुद्दर—(सं०) ऊख की सिट्ठी, जो जलावन या खाद के काम आती है (शा०-१, मं०-१)। [< क्षुद्र]

खुद्दी—(सं०) चावल, दाल आदि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े। पर्या०—खँड़ौरा (द०-प०शाहा०), मेरखुन (द० मुं०, चंपा०)। [खुद्द + ई (प्र०) < *क्षुद्र]

खुन्दल—(क्रि०) जोती-बोयी या बनी-बनाई जमीन या किसी दूसरी वस्तु पर मनुष्य अथवा पशु द्वारा पैरों से कुचलना, जिससे उसपर पैर के चिह्न हो जाते हैं। [< *क्षोदन < √क्षुद्]

खुम-(सं०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (गं० द०)। [< कुम्भ (संस्कृ०), मिला०—कुम्भ्, कुम्भ = गोल बरतन (सी० स्र०)]

खुम

खुर—(सं०) सींगवाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप, जो फटी हुई होती है (चंपा०-१, बिहा०, चाक०) [< खुर या क्षुर; खुर: (संस्कृ०), खुरो, खुर (पा०), खुर (पुं०) = खुर, खुर (रशी०), खुरी (रोम०), खुर (अरबी), खुरे (पश्तो), खुर (=पैर)—(प० पहा०), खुर (कुमा०), खुरा (असा०), खुर (बँ, ओ०, हि०, पं०), खुरा (ने०), खुर (सि०), खुर (गु०), खुर (मरा०), खुर (बँ०)]

खुरकी—(सं०) जमीन या किसी अन्य फसल के साथ होनेवाली एक घास (उ०)। पर्या०—भइँती (उ०), कचारी (सा०)—(मिला०—कचारा)। [देशी, मिला०—खुरक = एक प्रकार का पौधा, खुरका (हि०)]

खुरखुन्द—(सं०) पशुओं के द्वारा पद-दलित फसल (गया, द० मुं०)। दे०—पैमाल। [खुर + खुन्द < खुन, (खुर) + खुन्द, खुन्दल (बिहा०), खूँदना (हि०) < √क्षुद्]

खुरचन—(सं०)–(१) बरतन के खुरचने से निकाली हुई खोंच अफीम। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। पर्या०—खखोरन (गया, द०-प० शाहा०, द० मुं०)। खखोरी (चंपा०, मं०-२)। [< खरण्ड < √क्षुर्]

खुरचनी—(सं०)-(१) दूध या मक्खन गर्म करने के बाद की कलछुटी में लगा हुआ अवशिष्ट पदार्थ-विशेष (पट०, आज०)। दे०—डुग्गी। (२ खुरचने का औजार। [खुरचन+ई (प्र०) <खुरचल (बिहा०), खुरचना (हि०) <क्षुरण]

खुरदाइ—(सं० फसल के डंठल से अनाज निकालने के लिए की जानेवाली दूसरी दौनी (द०-पु० मुं०)। दे०—दूरी दौरन। [खुर+दौंइ <खुर (खुर) या खुद्र+दाम्, दमन<√दम]

खुरदिया मालिक—(सं०) (सं० द० भाग०-५)। दे०—खुरंदहा मालिक। [खुरदिया+मालिक <खुरा+मालिक। खुरा<खुर (संस्कृ०), खुर्दे<खुर्द (फा०)+मालिक (फा०)]

खुरंदहा मालिक—(सं०) जमींदारी में थोड़ा दाय रखनेवाला स्वामी (सं० द०, भाग०-५)। पर्या०—खुरदिया, मालिक जुज़वी हिस्सेदार (पट०) खुरंगहा मालिक (भाग०-५)। खुरदिया मालिक (चंपा०, सा०)। [खुरदिहा+मालिक मिला०—खुरदिया मालिक]

खुरदौनी—(सं०)-(गया)। दे० खुरदाइ तथा दूरी दौरन। [खुर+दौनी<खुर, (खुर) या खुद्र+दौनी<दान्ति<√दम्]

खुरदौनी—(सं०) (१)-(चंपा०,पट०)। दे०—खुरदाइ तथा दूरी दौरन। (२) खलिहान बनाने के समय मिट्टी को बैठाने के लिए तर जमीन पर बैलों को चलाना। [खुर+दौनी<खुर —खुर, या खुद्र+दौनी<दमन<√दम्]

खुरनी—(सं०)-(गया)। दे०—खुरनी तथा खोरा। [खुरनी<खुरण या खोदन<√खुद]

खुरपा—(सं०) घास-पात हटाने, पड़ते या फसल उगे हुए खेत की मिट्टी खरोंचने के काम में आनेवाली लोहे की बनी हुई खुरपी (चंपा०-१, भाग०-५, पट०-४, मुं०-२, आज०) [<*खुरप्र (संस्कृ०), खुरप्प (प्रा०), खुरपा, खुरपा (बंगा०), खुरपें (मरा०) खुर्पी (सं०)]

खुरपा

खुरपि—(सं०)-(पट०-१)। दे०—खुरपा। [खुरप+इ (अल्पा० प्र०) <*खुरप्र]

खुरपियान—(सं०) ऊपर-ऊपर से छिलकर घास आदि निकालने की प्रक्रिया (द० प०) दे०—छिलनी। [खुरपा+इयाना (प्र०) <*खुरप्र]

खुरपियाना—(सं०) खुरपी से कोड़ना (छिछली-ऊपर-ऊपर की कोड़ाई) (उ० प०) पर्या०—कमौनी, कोरौनी (चंपा०, मुं०), कोड़नी (सं० द०, छुंकनी (द० प० शाहा०), केओनी, कमौनी (द० भाग०, मुं०-२, भाग०-५, पट०-४)

खुरपियावल—(क्रि०) खुरपी से छिछली कोड़ाई करना। खुरपी से खेत की घास-पात निकालना। (वि०) खुरपी से घास-पात आदि निकालकर साफ की गई भूमि। [खुरपि+आवल (प्र०) <खुरपी<*खुरप्र]।

खुरपी—(सं०)—(उ० बिहा०, आज०)। दे०—खुरपा।

खुरपेड़िया—(सं०) वह रास्ता, जो खेतों की मेंड़ से होकर जाय (चंपा०-१, मुं०-२)। पर्या०—खुड़ारी (प० चंपा०), खुरवाही (सा०-१)। [खुर+पेड़िया<खुर या खुद्र+पथा (?)]

खुरमी—(सं०) एक प्रकार की घास। दूब की घास। पर्या०—गोखाला (पट०, गया, सा०)। [खुरफा (फा०)]

खुरमा—(सं०)-(१)-छुहारा। खजूर का भेद। यह रेगिस्तान में होता है (पट०-१, भाग०-६)। (२) आटे का बना एक प्रकार का मीठा खाद्य। [खुर्मः (फा०)]

खुरवाही—(सं०)-(सा०-१)। दे०—खुरपेड़िया। [खुर+वाही, या खुर+वा+आही या खुरक+ही (प्र०)। खुर+आर या आही (बिहा०)]।

खुरसलिया—(सं०) एक प्रकार का छोटा-सा मिर्चा, जो अत्यन्त तीता (कड़ुआ) होता है (चंपा० १, मुं०-२, भाग०-५)। [खुरसान+इया (प्र०) <खुरासान]

खुरहेड़ी—(सं०) पशु आदि के चलने से जमीन में उगनेवाला खुर का चिह्न (शाहा०-१)। [खुर+हेड़ी (प्र०, या हेरी) <खुर]।

खुर्पा—(सं०)—(सा०, चंपा०)। दे०—खुर्पी। [खुर्पा <*खुरप्र]।

खुर्पी—(सं०) (१)-कड़ाह की पेंदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे खरचनेवाला औजार। पर्या०—खुरपा (सा०, चंपा०), कड़खुरपी (उ०-पू०-मुं०), बेड़नी (पट०), खपूरन (द० भाग०)। (२)दे०—खुरपा [खुर्प+ई (अल्पा० प्र०) <खुरप्र]

खुश्क खरीद—(सं०) खेती की वह प्रणाली, जिसमें नील की खेती करने के लिए निलहे किसानों को अग्रिम मूल्य तथा उचित मूल्य पर नील का बीज देते थे, जिसका मूल्य बाद में हिसाब के अनुसार चुकता होता था। पर्या०—खुसकी (चंपा०), जबिरतसानी (उ०-पू० मुं०)। [खुश्क+खरीद (फा०)]

खुसकी—(सं०)-(चंपा०)। दे०—खुश्कखरीद। [खुस+की<खुश्क (फा०)]

खुसकी ठीका—(सं०) किसी विशेष निश्चित कर पर कुछ वर्षों के लिए की गई जमींदारी। [खुसकी<खुश्क या खुश्की (फा०) मिला०—शुष्क (संस्कृ०)+ठीका] (हि०)]

खुसखुस—(सं०) ऊख की मिल का एक अंग, जिससे छनकर रस कमले पंप में चला जाता है और मिट्टी पुनः रोकर के नाय छोड़ जाती है (रो०, हरि०)

खुसबरी—(सं०) एक प्रसिद्ध छोटी पीली काली, जो स्वाद में खट-मिट्ठी होती है। दे०—मकोय [खुस+बरी<खुशबेरी (?), मिला० गुज-बेरी (अं०)]

खूँट—(सं०)—(१) बाँस की कोठी या वह स्थान, जहाँ बाँस होता है (शाहा० चंपा०, सा०)। (२) कपड़े का एक छोर (शाहा०-१, चंपा, सा० मुं०)। [मिला०—खूट]

खूँट

खूँटा—(सं०)—(१) (मुं०, प०) दे०—खुट्टा और जंघा। (२) मवेशियों के बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना स्तंभ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (बिहा०, आज०) (३)—वह स्तम्भ जिसके सहारे ढेंकी खड़ी रहती है। पर्या०—खुट्टा (पू० मुं०, सं० द०), खंभा (पू० मुं०, सं० द०), जंघा (प० मुं०, सा०, चंपा०), खाम्हा (प० मुं०, सा०, चंपा०)। (४)-ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खंभा (पट०, गया)। दे०—हरसा। (५)—लाठा के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसपर मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है। पर्या०—खूँटी, गंडिमेला-पट०, गया०), गुल्ली (पट०), किल्ला (पट०, द०-पू०)। [<खोड़, मिला०—खुट्टा, खुट (प्रा०), मिला०—√कुड (प्रतिघाते)—(सं० धातु०)।

खूँटा मामला—(वि०) वह मवेशी, जो बिकी के बाद दूसरे स्वामी के यहाँ जाने पर खाना छोड़ देता है (शाहा०-१, भाग०-५, पट०-४, चंपा०, सा०)। [खूँटा+मामला+आ (वि० प्र०)]

खूँटी—(सं०)-(१)—नील, ऊख आदि की दूसरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी की जड़ से पुनः उगती है। पर्या० रोजी (द०-पू०-मुं०)। (२) ऊख काट लेने के बाद उसके मूल से निकला हुआ छोटा पौधा (अंकुर), जो बाद में ऊख बन जाता है (सं० द०, बिहा०)। पर्या०—खूँटिया (द०-पू० मुं०), पलना (बिहा०), खूँटी ऊख रो०)। (३) दे०—खूँटा। (४) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल (गया, द० भाग०)। दे०—जड़। पर्या०—खूँटिया। (५) छोटा खूँटा या कीला [खूँटा+ई (अल्पा० प्र०) <खोड, खुद्र। <खुंटट (प्रा०)—मेरा० मिला०—कुड (प्रतिघाते) (सं० धातु०)]

खूँटी ऊख—(सं०)—दे०—खूँटी (रो०)। [खूँटी+ऊख]

खूथा, खोथा—(सं०) खलिहान में दौनी के लिए छोटी हुई तैयार फसल (द० भाग०)। दे०—ढेर। [<*खोथक<खुटक]

खूफा—(सं०)—नारियल या ताड़ की कोठी के भीतर का बहुत ही मुलायम गूदा (शाहा०-१) [देशी]

खूरा—(सं०)-(१) वह आधार, जिस पर अन्नागार (कोठी) अवस्थित रहता है (पट०)। दे०—गोड़ा। (२) (द० पशाहा०) दे०—कठघार। [<खड़क, <खोड़क]

खेड़ी—(सं०)—(१) (गया)। दे०—खेड़ा। (२) सीढ़ी (पट०)। (३) कोरी-जाति का एक प्रकार का अन्न। [< खात, कर्ष, गर्त, श्रेणी]

खेवट—(सं०)—(१) ज़मीन के मालिक का अधिकार-संबंधी कागज़, जो ज़मीन की पैमाइश के बाद तैयार होता है (शा०-२ चंपा०, भाग०-५) [खे+वट< खेत+बँट ?] (२) नाव को चलानेवाला मल्लाह। [< *केवट]

खेवा—(पुं०) नाव से पार करने के लिए दिया जानेवाला शुल्क।

खेसरी के मान—(मुहा०) ऊसर ज़मीन (शाहा० १)। [खेसरी के+मान]

खेलसा—(सं०) एक प्रकार की बरसाती लता का फल, जिसकी रसदार या सूखी तरकारी बनती है (गया)। दे०—खेडल। [देशी, मिला०—कौसल=कड़ा, कील, तरकारियों की राह; संभ०—खेडल के काँटों-जैसी कीलों के कारण ही खेलसा (कौसल्य) नाम पड़ा हो]

खेहड़ा—(सं०)—(दर०-१)। दे०—खेड़ा। [< *कर्ष]

खेकड़ी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [देशी]

खेड़ा—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—खेड़ा। [< *कर्ष]

खेढ़ी—(सं०) मूँग (दर०-१)। [देशी]

खेड़ा—(सं०)—(१) हरिस के ऊपर पालो बाँधने की जगह पर, उसके पिछले भाग का कटा हुआ अंश। पर्या०—खेड़ी (गया), खेड़ी (शाहा०), खेड़ा (पट०) खलरा (चंपा०) खाढ़ी (मं०), खड़रा (द०-पू० मं०), खोड्ढ़ (द०-पू० बिहा०), काढ़ (द०-पू० बिहा०), खेड़ा (चंपा० १), खाढ़ी (मं० २)। [< खात, < *कर्ष] (२) खेत वर्ष के मूल (मूँग) से मुक्त एक प्रकार का धान (मं० उ०, चंपा०-१)। पर्या०—खेढ़ी (चंपा०-१), खेकड़ा (दर०-१)। [देशी]

खेड़ा

खेड़ी—(सं०)—(१)—(शाहा०)। दे०—खेड़ा। (२) बाँस, लकड़ी, पत्थर या ईंट आदि से बनाई गई ऊपर चढ़ने की सीढ़ी। [< खात, < कर्ष, < श्रेणी]

खेत—(सं०)—(१) वह ज़मीन, जो पहले परती हो, किंतु बाद में तीन वर्ष पहले से आबाद हो रही हो। पर्या०—पाही (चंपा०), पट्ट (उ०-पू० मं०)। (२) खेती के योग्य ज़मीन का घिरा या सीमित टुकड़ा (बिहा०, भाग०)। पर्या०—ढीपरी, पाढ़ी (प०-ब०), टोपरा (प०), डाबर (गया, भभ), बारी, बड़ियार (द० भाग०)। [< *क्षेत्र]

खेत गोबरायल—(मुहा०) खाद के निमित्त खेत में पशुओं को बैठाना (द० मुं०)

खेतपथार—(सं०) भू-स्वामी की भू-सम्पत्ति। दे०—खेती बारी। [खेत+पथार< *क्षेत्र+प्रस्तार (=समभूमि), पत्थार (प्रा०), पथार (बंग०)=वृक्षादि रहित नीची ज़मीन]

खेतबधार—(सं०)—भू-स्वामी की भू-सम्पत्ति। [खेत+बधार < खेत+पथार < *क्षेत्र+प्रस्तार, दे०—खेत पथार]

खेतभोज—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के प्रथम दिन किसान द्वारा दिया जानेवाला भोज (पू० मं०)। दे०—पहिनरोप। [खेत+भोज < *क्षेत्र+भोज]

खेतभोजनी—(सं०)—पू० मं०)। दे०—खेतभोज तथा पहिरोप। [खेत+भोजन+ई < *क्षेत्र+भोजन]

खेतमासा—(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। पर्या०—खेतमासु। [खेत+मास< *क्षेत्र+माष (?)]

खेतमासु—(सं०) मूँग की जाति का एक दलहन (उ०-पू० मं०)। दे०—खेतमासा। [खेत+माषु, मिला०—खेतमास]

खेतहर कोंहड़ा—(सं०) खेत में होनेवाला कोंहड़ा (पट०-१)। [खेतहर+कोंहड़ा< क्षेत्र+कूष्माण्ड]

खेती—(सं०) खेत का काम, खेत-संबंधी कार्य। [खेत+ई (प्र०) < क्षेत्र]

खेतीबारी—(सं०) भू-स्वामी की भू-सम्पत्ति (प० मं०)। पर्या०—खेतबधार (शाहा०, पट०), खेतपथार (चंपा०, द० मुं०, भाग०-१) [खेती+बारी< *क्षेत्र+वाट, वाटिका]

खेती-भवानी—(सं०) फसल या तरकारी काटने के समय कोइरियों द्वारा पूजित एक देवी। [खेती+भवानी< *क्षेत्र+भवानी]

खेना—(सं०) दे०—अखैना। [खैना< अखैना< *अक्षयिन्। दे०—अखैना]

खेप—(सं०)—(१) बोझों के ढोने या किसी और काम का क्रम या पारी। (२)—(चंपा०)। दे०—खूँआ। [< *क्षेप< क्षिप]

खेपान—(सं०) ऊख के रस का उतना परिमाण, जितना एक बार में उबाला जा सके (द०-पू० मं०)। दे०—ताव। [खेपान< खेप (बिहा०) (=बार, क्रम) < क्षेप< क्षिप्]

खेरही—(सं०) एक कदन्न, जिसके चावल की खीर अच्छी बनती है। वह कोदो की जाति का है (मुं०-१)। पर्या०—खेड़ी (कहीं-कहीं)। [देशी, मिला०—कोदूस]

खेड़ी—(सं०)—(चंपा०-१)। दे०—खेड़ा। [देशी]

खेवट—(सं०)—(१) किसी ज़मींदार के किसी गाँव के हिस्से की तहसील (शा०-१)। (२) वह कागज़, जिसमें मालिक, मुकर्रीदार या ठिकेदार के हक का इंदराज रहता है (शा०-१)। [खे+वट< खेत+वट< बँट]

खेसरा—(सं०) वह कागज़, जिस पर खेत का नंबर और क्षेत्रफल लिखा रहता है (शा०-१, चंपा०, भाग०-५, पट०-४, मं० २)। [खसरा (अ०), खसरा (हि०), खेसरी (मं०)]

खेसारि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—खेसारी।

खेसारी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, किंतु तीन ओर से थोड़ा चिपटा, ऊपर से मटमैला और भीतर पीला होता है (चंपा०-१, भाग०-५, पट०-४, मं०-२, शाहा०-२)। पर्या०—लतरी (शाहा०), खेसारि (दर०-१)। लोकोक्ति—'तुलसी खेसारी, बैल संघारी, बाभन बाम, कायथ काम।'—तुलसीदास की खेसारी, बैलों को संघारने, ब्राह्मणों को वाम तथा कायस्थ को काम प्रिय होता है। [खेसारी< खेसारि, त्रिपुट (हि० श० सा०), संभ०—खे+सारी < खेत+सारी< *क्षेत्रशालि अथवा खंजेरक (ख+जेरक)< ख (=वायु या आकाश) +√जॄ (हिलाना) या √जृ (पाक), अथवा √जन् (जन्म) या त्रिपुट होने के कारण, त्रिपुट (=खाद्य=तीन)+पुट (?), खेसारी (हि०), खेसारी (बं०), खेसारी (ओ०), खेसारि (मं०)]

खेस्ता—(सं०) बिना रजिस्ट्री की गई ज़मीन-संबंधी कागज़ (चंपा०-१, भाग०-५, मं०-२, पट०-४) [देशी, मिला०—खेसरी (बं०)]

खेहा—(सं०)—(पट०) दे०—खेड़ा। [< खात, < कर्ष]

खैंचा—(सं०) बड़ा टोकरा। [खैंच+आ< खचित< √खच्]

खैंची—(सं०)—(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़े डालनेवाली टोकरी (शाहा०, पू० मं०)। दे०—हँटी। (२) टोकरी। [खैंच+ई (प्र०) < खचित < √खच या √पच् (समवाय)]

खैर—(सं०)—(१) एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष। वह खंभा आदि के काम में आता है। पर्या०—खैरा (चंपा०)। (२) पान के साथ खाया जानेवाला कत्था। [खदिर (संस्कृ०) खदिर (पा०), खहर (प्रा०), खैर (हि०), खैर (अवध०), खैर (अप०), खयेर (बं०), खइर (ओ०), खेरी (सि०), खयर (मं०), खैर (गु०), खैर (मरा०), किहिरि (सिंह०)]

खैरा—(सं०)—(१) धान में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण धान पीले रंग का हो जाता है तथा उसमें दाना नहीं होता (प०)। पर्या०—खैरी (उ० पू० मं०)। [देशी, संभ०—कत्थई वर्ण के कारण, < खैर < खदिर] (२) एक प्रकार का कँटीला वृक्ष। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खंभा आदि के काम में आती है (चंपा०-१)। दे०—खैर-२। [खैर+आ (प्र०) < *खदिर, < *खदिरक]

खैरी—(सं०)—(उ०-पू० मं०)। दे०—खैरा। [देशी, मिला०—खैरा]

खोंइचा—(सं०)—(पू० मं०)। मकई के ऊपर की परतदार पत्तियाँ। दे०—खोइया। [कोंहिआ < खोल, < कुंभ या √कुंच, √कोद् (=फोकला, छिलका)]

खोँखरा—(सं०) मकई का दाना ले लेने के बाद बची हुई डंठ (द०-प० शाहा०)

दे०—गेँड़ी। पर्या०—चहुरी (भाग०-५) खेंड़ा (चंपा०)। [देशी, मिला०—खोंखरी, खोखल]

खोँच—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू के पेर में सुविधा के लिए बनाया गया लकड़ी का चाभड़ (पु०)। दे०—रीढ़ा। (२) लकड़ी से या किसी और पदार्थ से खोँच कर बना आघात। [देशी, मिला०—, खच > खचित]

खोँचरी—(सं०) अन्न रखने के लिए बाड़ की बनी हुई कोठी (द० भाग०)। पर्या०—खोंचली (भाग०-५), बाँध (द० मुं०)। [देशी, मिला० √खच् या √खच् (बन्धनार्थ)]

खोँचली—(सं०)-(भाग०-५)। दे०—खोँचरी।

खोँटना—(क्रि०)—(१) किसी पौधे की फुनगी को ऊपर से तोड़ लेना (मुं०-१, भाग०-५, मं०-२, चंपा०)। (क्रि०) (२)—खोंटी हुई वस्तु (चंपा०-१)। [< √खुट् (=तोड़ना) √खुंड (=तोड़ना), या √खोट (क्षेपे)]

खोँड़ा—(सं०) (१)—(द०-पू० बिहा०)। दे०—खेड़ा। (२) पहाड़ [< खात, < कर्त्त, < कर्त]

खोँता—(सं०)—(१) एक प्रकार का फल (दर०-१)। (२)—पक्षियों का घोंसला। [देशी]

खोँप, खोँपी—(सं०)-(१) भूसा रखने के लिए घास आदि का बनाया हुआ घर (मं० उ०, मं० २)। (२) बखारी के ऊपर का गोलाकार छप्पर (शाहा०-१, चंपा०, सा०)। पर्या०—खोंप के मथानी—वर्षा आदि से बचाव के लिए खोँप के ऊपर लाया हुआ छप्पर। (३) स्त्रियों के वेणी का एक श्रृंगार-विन्यास जिसमें वेणी गूँथकर जूड़ाकार बनाई जाती है और उसमें फूल आदि खोंसे जाते हैं। [< *खुप्, < *खुपक वा < *खुप्प = झाड़ी पौधा गुच्छ]

खोँप, खोँपी

खोँपड़ा—(सं०) खेत या खलिहान में खड़ी की गई झोपड़ी (द०-पू०, भाग०-५)। दे०—मड़ई। [खोँपड़ा (क०) < *खुप्प, < *खुप (सम्ह०), खोपड़ा (हिं०), खोपड़ा (मरा०), झपड़ी, झूँपड़ा (गु०), खोपी (बं०), खोपड़ (सिंधी) (=पत्ती झाड़ियों का संग्रह), खोपड़ा (हिं०) = खोपड़ी, कपाल < खर्पर, कपाल]

खोँपड़ा

खोँपड़ी—(सं०)—(मं०-०, भाग०-५, चम्पारन)। दे०—खोँपड़ा तथा मड़ई। [खोँप + ड़ी (प्र०) मिला०—खोँपड़ा]

खोँपी, खोँप—(सं०)—(मं० उ०)। दे०—खोँप। [खोँप + ई (प्र०), मिला०—खोँप]

खोंचा, खुखा—(सं०)-(१) (द० भाग०)। दे०—खुखा तथा गौर। (२) ओसाने के लिए खलिहान में छोड़ी हुई तैयार फसल (द० भाग०)। दे०—गौर। (३) कुछ का बना खोंचा। [< *खोंच < √खुद् (भेदने)]

खोँइया (सं०)—(१) रस निकल जाने के बाद का ऊख का छिलका (चंपा० मं०-१, द० उ०)। पर्या०—खोंइचा (पट०, गया, पू० पट०-४, भाग०-५), खोइड़ा (द० भाग०), चेफुआ (शाहा०, चंपा०), बगास (चंपा० सा०-१)। (२) धान आदि के बीजकोष के ऊपर का छिलका (मं० द०)। पर्या०—खोँहिया (गया), खोलड़ी (द०-पू० शाहा०), बोकला (शाहा०, शेष भाग, द०-पू० बिहा०), बकुला (पट०)। (३) पेड़ का बाहरी छालवाला भाग (मुं०-१)। (४) ऊख चूसने के बाद उसका चूसा हुआ शेष भाग, जो फेंक दिया जाता है (म० द०)। पर्या०—खोँहिया, चेफुआ (म० द०), खोपा (द० भाग०)। सिट्ठी = चूसकर मुख से निकाला हुआ ऊख का शेष भाग। (५) किसी फल आदि का छिलका (चंपा०-१)। [< *खोलिक < खोल, < *कॉस्त < कृत् या खोलित < √खोल्ल < खोलित < √खुद् < खोल, < खोलक]

खोँइहा—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खोँइया। [मिला०—खोँइया]

खोँइचा—(सं०)-(१) पेट के ऊपर की चमड़ी (प०)। (२) किसी वस्तु के ऊपर का महीन छिलका। पर्या०—खलकोइचा, खोंखला (शाहा०), खलखोइचा (चंपा०), बकलें, खोसा (द०-प०-मं०), खोइचा (पू० मं०), पनौरा (द० मुं०), पोंची (द० भाग०), खालकोइचा (भाग०-५, चंपा०)। [< *खलित

< √खुद्, < *खुलित < √कुंच्, < *खोटित < √खोट या < खोलिक < खोल]

खोखसा—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। [मिला०—खेखसा]

खोजड़ा—(सं०) धान या मड़ुआ आदि से इतर ज्वार, मकई, बाजड़े आदि की फसल (शाहा०)। दे०—भवितव्यक। [देशी, मिला० — √खञ्ज् (गत्यां) √खंज (गति वैकल्ये)]

खोड़ली—(सं०)-(१) कोठी या दीवार के भीतर कुछ रखने के लिए बनाया गया छोटा-सा खोखला भाग, ताखा (चंपा०-१)। (२) आम के बगीचे में आम रखने के लिए जमीन खोदकर और उसके ऊपर कुछ रखकर तथा उसे मिट्टी से ढककर बनाया गया गड्ढा। इसमें बगल की ओर मुँह रहता है। (चंपा०-१)। पर्या०—खखुली (चंपा०) खोचिला (मं०-२)। [खोड़ल + ई (प्र०) < खोड़ा, खोड़ल < कोटर] (?)]

खोचिला—(सं०) दे०—खोड़ली-२ (मं०-२)।

खोअकवा—(सं०) रतालू (शाहा०-१)। दे०—खमहुअवा। [देशी]

खोभी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द०-पू०-मं०, गया, चंपा०)। [देशी, मिला०—खुम्भ (=अनाज, तन या गीत), खुम्भ, खुम्भ = एक प्रकार का अन्न)]

खोर—(सं०)-(१) इकट्ठा किये हुए अनाज की राशि (उ०-पू० मं०)। दे०—राश। [खोर्य = समूह (सौ० कि० कि०)] (२) पानी का घेरा। बाँध का घेरा। बँधा हुआ पानी (मुं०-१) देशी, मिला०—खोड़ (देशी) = सीमा निर्धारक काष्ठ। खुड्ड (सम्ह०) = खूँटा] (३)-(द०-पू० मं०)। दे०—खोरा। [मिला०—खोरा] (४ बड़ी बनावट का मिट्टी का बड़ा बरतन (दे०-२)

खोरा—(सं०)-(१) ऊख के टपकते हुए रस को रखने का बरतन (द०-पू०)। दे०—थहुली। (२) वह बरतन, जिसमें कोल्हू से ऊख का रस चूता है। पर्या०—खोड़ (द०-पू० मं०), नाद (शाहा०), कुंडा (शाहा०, प० मं०, पट०), छुला। (३) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (पट०, गया, द० मुं०)। (४) दूध रखने का मिट्टी का बरतन, तौला, बड़ा बरतन (मुं०-१)। [मिला०—कुल्ल (चमड़े का बना तेल का पात्र), खोखी (देशी) = काष्ठ की पेटी (पा० स० म०)। खोण < खोण्डी। कुंट या कुंड = एक प्रकार का बरतन। खोल या खोलक (=पात्र)]

खोरा

खोराखानी अजवाइन—(सं०) अजवाइन की तरह का एक मसाला। [खोरासानी + अजवाइन]

खोल—(सं०)-(१) पानी पटाने के काम में आनेवाले ढेंकुल के खम्भे की शाखाओं में किया हुआ छिद्र, जिसमें धुरी लटकती रहती है। (२) नाव में से पानी उपछने का एक बरतन (मं०-२)। (३) किसी वस्तु का ऊपरी आवरण। (४) ओढ़ने का मोटा कपड़ा। (५) दे०—अनपद। [√खुंड्, √खुड्, < खोल, < खोलक]

खोलड़ी—(सं०)-(१) बीजकोष के ऊपर का छिलका, (द०-पू० शाहा०)। दे०—खोइया। (२) मँडुए के दानों को निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसी (द०-प० शाहा०)। दे०—डाँटी। [खोल + ड़ी < *खोल (संस्कृ०)]

खोलसा—(सं०) (मं० द०-पू०)। दे०—अनपद, खोल। [खोल + सा < *खोल]

खोसा—(सं०)-(पु०)। दे० अनपद। [मिला०—खोल]

खोहू—(सं०) ओसाने के लिए खलिहान में छोड़ी हुई तैयार फसल (चंपा, द०-पू० मं०)। दे०—गौर। [< *खोद्य]

खोहिया—(सं०)-(१)-(गया)। दे०—खोइया। (२)—(पट०, गया, पू०)। दे०—खोइया। (३) (म० द०)। दे०—खोइया। [< खोलित या खोद्य < √खुद्]

खौरा—(सं०)-(१) पशुओं के पैर का एक रोग। इस रोग में खुर में घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जाया करते हैं। इस रोग के होने पर पशुओं को जल में बाँधा जाता है। जल से कीड़ों की मृत्यु हो जाती है। पर्या०—खखरा, खखुरा। (२) कुत्तों का एक रोग। इसमें उसके सारे शरीर में घाव हो जाता है (चंपा०)। [खौर + आ, खौर < खुर]

ग

गँगट—(सं०)—(दु०, भाग०-१) दे०—ओड़ह। [गँग+ट (प्र०) अथवा <गंगा+तट; गंगा=आवर्त (संस्कृ०), गंगावट्ट (प्रा०) मिला०—गद्दुट्, गद्दुटेय= संस्कृ० एक प्रकार की मछली।

गँगटा—(सं०)—(द०-पु०, भाग०-१,भग०-५, पट०-८) दे०—ओंकड़ा। [गँग+टा<गंगा+तट, गंगा=आवर्त (?), मिला०—गद्दुट्, गद्दुटेय]

गँगटाहा—(सं०)—पट०, द० मुं०, भाग०-१, भग०-५), दे०—गँगटियाहा। [गँग+टा+हा (प्र०) <गंगातट, गंगावर्त (?); मिला०—गद्दुट्, गद्दुटेय]

गँगटियाहा—(सं०) कंकड़ मिली हुई मिट्टी (पट०, गया, द० भाग० भाग०-१, भग०-५) पर्या०—गँगटाहा (पट०, द० मुं), कँकरौटिया (द० भाग०, भाग०-१), अँकड़ाह (चंपा०, मैं०-२)। [गँग+टा+इया+हा (प्र०) <गंगातटीय, गंगावर्तीय (?), मिला०—गद्दुट्, गद्दुटेय]

गँगटी—(सं०)-(१)— द०-पु०, भाग०-१)। दे०—अँकड़ी। (२) नदी के किनारे मिलनेवाला छोटा गोल पत्थरीला कंकड़, जिसे पकाकर चूना बनाया जाता है भग०-५)। [गँग+टा+ई (अल्पा० प्र०) <गंगा+तट, गंगावर्त (?) मिला०—गद्दुट, गद्दुटेय]।

गँगटी कंकाल—(सं०),(भाग०-१)। दे०—गगरी केवाल।

गँगबहार—(सं०) वह जमीन, जो किसी नदी की धारा के हटने से निकलती है (भाग०-१, चंपा, भग० ५) पर्या०—गँगबरार। [गँग+बहार <गंगा (संस्कृ०)+बार (फा०; हि० श० सा०)। गंगा+बार (संस्कृ०) (?)। बार=बचाकर, विस्तृत भूमि; यथा "वार धा पुलिन्दाः"—अम०—(मो० वि० वि०)]।

गँगबरार—(सं०)। दे०—गँगबहार।

गँगवट—(सं०) गंगा की मिट्टी। यह पीले रंग की होती है (चंपा०-१, मैं०-२)। [गँग+वट <गंगातट <गंगाभूत या गंगावर्त (संस्कृ०), <गंगावट्ट (प्रा०)। मिला०—गद्दुट, गद्दुटेय (संस्कृ०=एक मछली)]

गँगसिकस्त—(सं०) वह जमीन, जिसे नदी का कटाव काट ले गया हो। दे०—गंगबहार। [गंग+सिकस्त<गंगा (संस्कृ०)+शिकस्त (फा०) मिला०—सिकथ, शिक्थ=मधु निचोड़ लेने के बाद छत्ते में बचा हुआ भाग, मोम। सिक्त=सिंचित, सैकत=(संस्कृ०) सिकतामय, जल से निकली हुई भूमि "तोयोत्थितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयम्" (अम०)]

गँजाई—(सं०) धान या रबी की फसल या घास-कचकट को एक स्थान पर एकत्रित करने की प्रक्रिया (बिहु०)। [गँज+आई (प्र०)<गंज]

गँजाड़—(सं०) वह जमीन, जो एक बरसात से लेकर दूसरी बरसात तक बिना आबाद किये जोती जाती है और अगली बरसात के समय उसमें धान का बीज गिराया जाता है। दे०—कोतरा चौमास [देशी, मिला०—गंज (संस्कृ०)=भण्डार, भांडार। गंजा (संस्कृ०) खान, मदिरागृह, मकान बनाने का स्थान। गंज (फा०)=ढेर, राशि। गंभीर= (संस्कृ०)=घना जंगल]

गँजाहल—(क्रि०) खेत में थोड़ा पानी रहने पर उसकी हल्की जोताई कर देना। [गँज+आहल (प्र०)<गँज<गँजना (बिहा०) गँजना (हि०)]।

गँजाहल—(वि०) गँजाल क्रि० का भू०। गाँज लगावाला। ढकठ्ठा करवाया (वि०) गाँज लगवाया हुआ। [गँज+आहल<गाह्य (?)]

गँड़मेसा—(सं०) लाठर के किनारे धान के खेत में बनी मेंड़, जिसमें मिट्टी, पत्थर आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, गया)। दे०—बूँदा। [गँड़+मेसा<गंड+मेद, मेधस्य (=कील)<√मिद्]

गँड़रकट्टा—(वि०) ढलवा से पानी गिराकर खेत को सींचनेवाला पुरुष (द०-मुं०)। दे०—हलवाहा। [गँड़र+कट्टा, गँड़र<गँड़ारी <गर्त या केदार, कट्टा<कट्टल (बिहा०) काटना (हि०) <√कृत्]।

गँड़ुआर—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज के रखने का गड्ढा (गया, भाग०-१) दे० खार। [गँड़+आर गँड़<गँड़ेरी (ऊख का छोटा टुकड़ा) <गँड या खंड; आर<आलय<आला अथवा गँड़<गर्त (संस्कृ०) गड्ड (प्रा०)+आर<आलय]

गँड़सी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किन्तु कुछ भारी बेंट लगी रहती है (उ०-प० मैं०)। दे०—गँड़ासी। [गँड+सी <गंड या खंड+असि]

गँड़हर—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, गया, द० मुं०)। पर्या०—गड़हार (द०-मुं०), गड़हड़कचवा, गड़ेरी (उ०), गड़िहार (च०), गँड़र (गया), गँड़र (पट०)। [देशी, मिला०—गंडिरु, गंडेदुक (संस्कृ०)=तृणधान्य, गँडरा (हि०) <गँडाली]

गँड़ा—(सं०)—(१) चार गोइँठे या अन्य किन्हीं चार वस्तुओं का समूह। (२) काले सूतों की एक प्रकार की माला (शाहा०) [गंडक]

गँड़ाढार—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (गया, द०-प० शाहा०)। पर्या०—डोंभका (शाहा०, सो०, भा०), पनगंडा (पट०), अँधरी पटावन, अन्हरी पटावन (द० भाग०), पहिल पटावन (चंपा०)। [गंडा+ढार, गंडा<कांड, ढार <ढालना (बिहा०), ढालना (हि०)<√ध्वल (गति) (?)]

गँड़ारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (पट०, द०-पु०, भाग०-१, भग०-५)। दे०—कियारी। (२) (गया, द० मुं०)। दे०—बार। (३) पटाने के लिए खेत में बनी छोटी नाली (द० मुं०)। [गर्त (संस्कृ०), गड्ड (प्रा०), गंड, खंड या केदार]

गँड़ाव—(सं०)—(मैं०-२, चंपा०, भाग० १, सारन०)। दे०—गँड़ासी।

गँड़ासा—(सं०)—(१)—(द० मैं०) दे०—गँड़ासी। (२) फरसे के आकार का एक अस्त्र।

गँड़ासी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किन्तु भारी बेंट लगी रहती है (शाहा०, चंपा०)। पर्या०—गड़हासी (भाग०-१) गँड़सी (उ०-प० मैं०), गड़ौसा (द० मैं०), गँड़ास मैं०-२, चंपा०, भाग०-१)। [गँड़+आसि<गंड या खंड+असि]।

गँड़ासी

गँडुआ—(सं०) कुआँ बनाने या कमल की दीवार बाँधने में प्रयुक्त मट्टी में पका मिट्टी का गोल पट्टा या ईंट (पट०, द०-मुं०)। दे०—भगड़ा। [गँड़+उआ <गंड या खंड]

गँड़ेर—(सं०)—(गया)। दे०—गँड़हर।

गँडौरा—(सं०) खाद, कूड़ाकरकट (पु० का०)। दे०—खादर। [गँड़+औरा <गंदा, करकट]

गंधकटँकी—(सं०) मिल की वह भट्ठी, जिसमें गंधक जलती है। इसके धुएँ से चीनी-मिलों में चीनी साफ की जाती है। (हरि० चीनी०, बिहु०)। पर्या०—गंधकभट्ठी। [गंधक (हि०, संस्कृ०)+टँकी<टैंक (अं०)]

गंधकभट्ठी—(सं०) दे०—गंधकटँकी (चीनी०)।

गंधकी—(सं०) एक छोटी हरी मक्खी, जो धान के पौधे को हानि पहुँचाती है। (मैं०-२, मध्यम भी) [गंध+की <*गंध। *गंधकीट]

गंधरवा—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा, जो फूल लगने के पहले ही ज्वार आदि फसल पर प्रहार करता है (पट०)। दे० गाँधी। [<*गन्धिक]

गंधी—(सं०) दे०—गाँधी।

गँभरी—(सं०) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है, इसका चावल लाल होता है (पु०, मैं०-२)। इस धान के दाने बाहर नहीं निकलते, बल्कि पौधों में पत्तों के भीतर ही पक जाते हैं। दे०—साठी। [गँभ+री <*गर्भ।

गँभका—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (शाहा०)। दे०—दौंज। पर्या०—दौंजी (मैं०-२, चंपा०) [देशी, गंधकाय (?)]

गउ—(सं०) (चंपा०) दे०—गाय, गोरू।

गउसाला—(सं०) दे०—गौशाला।

गगरा—(सं०) लोहे, पीतल या ताँबे का बना घड़ा-जैसा पानी रखने का पात्र। दे०—गगरी, गागर।

गगरी—(सं०), (१) वह बरतन, जिसमें ... के रस

को दबाकने के पहले एकत्र कर रखा जाता है। दे०—गाथ। (२) पानी लाने या रखने के लिए मिट्टी, पीतल, ताँबे आदि काबना घड़ा (बिहा०, शाब०)। पर्या०—गगरा, गागर, घड़ा मेटा। [(अनु०) गगरी (संस्कृ०), गगर (पा०), गगरी (प्रा०), गगरु (काश्म०), गागर, गगरा (हि०), गागरी (ने०,कुमा०), गागरी (बंग०) गगरी (बं०), गगरा (सो०), गागर (पं०), गागिर (ब०), गागर (गु०)। टर्नर के अनुसार गागर (पं०), गागिर (ब०) के रूप गागरा (भ० दे०) से सम्बन्धित हैं, न कि (संस्कृत) से। मिला०—गर्गरक (संस्कृ०) = एक नदी। गागरी (सि०) = जलपात्र। ये सब अनु० हैं—टे० पा०]

गगरी

गगरी केवाल—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई मिट्टी। दे०—बचकी। पर्या०—गंगटी केवाल (भाग०-१)। [गगरी + केवाल, मिला०—(गंगटी केवाल)]

गचकी—(सं०) सड़क या रास्ते पर टूटने के कारण बने हुए छोटे-छोटे गड्ढे (शाहा०-१) [देशी, (अनु०)]

गचाक—(सं०) दे०—गचकी।

गछपक्का—(सं०) पेड़ पर का पका आम (चंपा-१)। पर्या०—गाछपक्कू (चंपा०), गाछपक्का (भाग-१)। [गछ + पक्का < *गाच्छ + पक्क]

गछाड़—(सं०) वृक्ष की छाया। इस छाया में फसल अच्छी नहीं होती (गट०-१, गट०-४, चंपा०, भाग०-५, भाग०-१)। [गछ + आड़]

गछुली—(सं०) फल आदि का नया बगीचा। (सं० ब०, भाग०-५, गट०-४, मुं०-२) पर्या०—नौराही (चंपा०, मुं०), नरोइ (चंपा०, मुं०), नवगछुली या नवगछुली (मुं०, मुं०-२), नवपेड़ा, नौगाछी या नौगाछी (द०-पू०) केबुवारी (शाहा०), नरोई (गट०, द०-पू०), नौकेड़ा बागीचा (गया), नवगच्छी (भाग०)। [गछ + उली (स्वा० प्र०) < गच्छ < *गाच्छ]

गछेड़ मारल—(मुहा०) खेत की फसल पर वृक्ष की छाया पड़ना (गट०-१, चंपा०, गट०-४, भाग०-५, भाग०-१)। [गछेड़ + मारल, गछेड़ < गछाड़ + आड़ < गछ + आड़ < गच्छ + आड़। मार + ल < √मृ + णिच्। (= मारि (बं०)]

गजकुषा धान—(सं०) गाजर के रंग का एक मोटा धान (भाग०-१, भाग०-५, गट०-४)। [गजकु + वा (प्र०) + धान < गाजर + धान]

गजकुा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का कंद, जो खाने में मीठा होता है। यह लाल या लाल-बैंगनी रंग का होता है। यह कच्चा और पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। इससे तरकारी, हलुआ, मुरब्बे आदि बनाये जाते हैं (पट-१, भाग-१)। दे०—गजरा। [गजकुा < गाजर < गार्जर, गर्जर, गृञ्जन (संस्कृ०), गज्जर (प्रा०), गाजर, गाजरा (हि०), गाजर (ने०), गाजर (बंग०), गाजर (पं०), गजर (सि०), गाजर (पं०), गाजर, सेंटीमूला, गाठुला मूला (मरा०), गाजर (गु०), गिर्किकैम्प मुलांगी, गार्जी, ब्रह्ममुतकी (क०), गृञ्जन (तै०), गाजर (फा०) गजर (अ०)]

गजनैना—(सं०) वह बैल, जिसकी आँखें छोटी-छोटी हों (गट०-१)। [गज + नयना (तद्०) < *गजनयनक]

गजपाती—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (द० पू०, भाग०-१) [देशी, मिला०—गजपत्र < गज + पत्र]।

गजपत्ता—(सं०) धान का एक प्रकार (गया, भाग०-५)। [देशी, गज + पत्ता मिला०—गजपत्र < गज + पत्र]

गजर—(सं०) धान के खेतों में, धान के बोने के पश्चात् घास-पात आदि की सफाई और बीज को नीचे दबाने के लिए की जानेवाली हलकी-सी पुनः जुताई (उ०-पू०, मुं०)। पर्या०—गजाड़, गजार (द०-१, मुं०-२), दंकान (भाग०-१)। [देशी (अनु०), मिला०—गैंज = वह स्थान, जहाँ वस्तुएँ सुरक्षित रखी जाती हैं]

गजरमसर—(सं०) मटर, चना, जौ और गेहूँ अथवा किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (शाहा०, सं०, भा०)। दे०—बरेरा। [गजर + मसर (अनु०), गजर + मजर (हि०)]

गजरा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का कन्द, जो खाने में मीठा होता है और कच्चा एवं पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। (चंपा०, शाहा० तथा अन्यत्र), पर्या०—गाजर (द० प० शाहा०)। [गाजर < गर्जर, < गृञ्जन, मिला०—गजकुा]

गजरौट—(सं०) पशुओं को खाने के लिए दिया जानेवाला गाजर का डंठल, पत्ता आदि (गया, भाग०-१)। दे०—गजरौटी। [गाजर + औट < गर्जर]

गजरौटी—(सं०) दे०—गजरौट। [गाजर + औटी < गर्जर]

गजावजा—(सं०) दे०—गजरमसर। [गजा + वजा (अनु०) मिला०—गजा-बजा (मिथिला), गजा-पजा (प्रा०)]

गजार—(सं०) खेत में पानी रहने पर जोतकर घास-फूस सड़ाने की प्रक्रिया। दे०—गजर। [देशी, मिला० गंज]

गजार करल—(मुहा०) गजार करना। दे०—गजार [गजार + कर + ल (प्र०)]

गजारी—(सं०), (१) वह अन्न, जो मीठा नहीं लगता। दे०—गजार। (२) छोटा आलू [गजारि (संस्कृ०) = एक प्रकार का केला या गाजर]

गजुर—(सं०) (१) भिगोये हुए अन्न में से निकला हुआ अंकुर। (२) भूमि पर उगा हुआ बीज का पहला अंकुर (द० भाग०)। दे०—सिल्ली, पर्या०—गजुरा, गजूर (भाग०-१)।

गजुरल—(क्रि०) अन्न में से अंकुर का निकलना। (वि०) अंकुरित। दे०—गजुर। [गजुर + ल (प्र०) < गजुर]

गजुरा—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।

गजूर—(सं०) (भाग०-१)। दे०—गजुर।

गजोंडी—(सं०) एक जंगली झाड़, जो बाग आदि की मेड़ों पर उगती है और जिसकी पत्तियाँ लाल-बैंगनी रंग की होती हैं। छोटी बर्फोंडी। पर्या०—बर्फोंडी (भाग०-१, मुं०-२, चंपा०, भाग०-५)। [देशी, मिला०—गंजा (हि०) < गञ्जु (संस्कृ०) = दूध, पानी आदि का बुलबुला]। टि०—बर्फोंडी या बर्फोंडी के दूध या रस को निकाल कर उसे बुलबुलाकार दूध में लेकर फूँककर उसे बच्चे उड़ाते हैं और वह बुलबुला बनकर उड़ता है। इसका दातौन भी होता है।]

गट्टा—(सं०) लकड़ी का खीला (भाग०-१)। [< *ग्रन्थिक]

गठकोबी—(सं०) एक तरकारी विशेष। गाँठदार गोभी (गट०-१) पर्या०—कठकोबी (भाग०-५), गेठकोबी (भाग०-१)। [गठ + कोबी < गाँठ + गोभी]

गड़गड़—(सं०) मेघ की गड़गड़ ध्वनि। [अनु० मिला०, √गर्जे (गरजना)]

गड़गड़ाएल—(क्रि०) गड़गड़ की ध्वनि का होना। मेघ का उमड़ना।

गड़नी—(सं०), (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल-प्रवाह के बीचों-बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०)। दे०—बाँध। [देशी, मिला० —गाड़ना या गोड़ना, गोड़ना, मिला०—√गुड़ी उठाने = ऊपर उठाना)]। (२) एक वनु-जाति घास (उ०-प०) [देशी, मिला०—गौंडर (हि०), गंडाली (संस्कृ०)]

गड़हर—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है। (द०-प०-शाहा०, मुं०-२)। पर्या०—गड़ार (पू०-मुं०), गौंडर (प० मुं०, गट०), जमार गड़ार (द०-पू०)। [देशी, मिला०—गन्धिकुल, गंडाली]।

गड़हा—(सं०) गड्ढा, गहरा खेत आदि। पर्या०—गड़हा, गरहा, गहरा, गड़हल (भाग०-१), खाहा, खड्डा, खदरा। [गड़हा < *गर्त, < *गर्त]

गड़ही—(सं०) छोटा गड्ढा।

गड़रा—(सं०), (१) धान में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (गया, शा०, मुं०) दे०—गाछोड़वा। पर्या०—अबुआ (भाग०-१)। (२) लकड़ी में लगनेवाला एक उजला कीड़ा, जो एक या सवा इंच का लंबा-मोटा होता है तथा इसका मुँह लाल-पीले रंग का होता है

(भाग०-१) [देशी, मिला०—गंडोलक=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०) (२) एक प्रकार की घास [मिला०—गवेधु, गंडोल]

गड़हड़ौ—(सं०) दुष्ट या मरखने जानवर का भागना रोकने के लिए उसके गले में बाँधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा। (उ० भा०, भाग०-१) पर्या०—ठकठा, ढोकरा (चंपा०)। [गड़+हड़ो< गलहडि=लकड़ी की शृंखला—(मो० वि० डि०)]

गड़हुरुआ—(सं०)(उ०)। दे०—गँडहर। [मिला०—गवेधुक, गडोल]

गड़हैया—(सं०) छोटा गड्ढा (भाग०-१) पर्या०—खधिया (मुँ०-२)। [गड्हा+एया (स्वा० प्र०)< गर्त, कर्त]

गड़हर—(सं०)-(१) ऊख की जड़ में लगनेवाला एक कीड़ा (प०, चंपा०, मुँ०-१) पर्या०—दिवारा (भाग०-१), दियार (चंपा०)। [मिला०—गंडोल+(क)] (२) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (पू०-मुँ०, भाग०-१)। दे०—गड़हर। (३) एक पशु-खाद्य घास (द०-पू०)। दे०—गँडहर। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंडूत (संस्कृ०)]

गड़ारी—(सं०), (१) खेत में बनाई गई छोटी-छोटी क्यारी (भाग०-१)। (२) गाड़ी की दोगालियों के बीच बड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (उ०-प०, द० मुँ०)। दे०—गड़ारी। [गड़+आरी< *गंड (=चिह्न, खंड)+आलि या आलि, गर्त+आलि]।

गड़ि—(सं०) बैलगाड़ी (चंपा०, मुँ०-२)। दे०—गाड़ी।

गड़िमान—(सं०) गाड़ी हाँकनेवाला। दे०—गाड़ीवान। [गड़ि+मान]

गड़ियार—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०) दे०—गँडहर। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंडूत (संस्कृ०)]

गड़ी—(सं०) बैलगाड़ी (भाग०-१, सन्थाल)। दे०—गाड़ी। [गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (प्रा०), गड्डी (पं०), गाड़ी (बंगा०, पू०)]

गाड़ी

गड़ी—(सं०) नारियल का गूदा [गरी]।

गड़ीवान—(सं०) गाड़ीवान [गड़ी+वान < *गन्त्रीमत्]।

गड़ेरी—(सं०)—(१) एक पशुखाद्य घास (उ०)। दे०—गँडहर। (२) भेड़ पालनेवाली एक जाति। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंडूत (संस्कृ०), गड्डलिका (=भेड़)]

गड़ौंही—(सं०) धानवाली एक पशुखाद्य घास (चंपा०, पट०)। दे०—बेंच। [देशी, मिला०—गर्मुत्=एक प्रकार की घास (मो० वि० डि०)]

गड़ौंआँ (सं०)—(पट०, भाग०-५, पट०-४)। दे०—ओढ़िया। [गड़+औआँ (वि०-प्र०) गड़< गड (आच्छादन, घेरा)। गड़+कुआँ]

गड़ूरी—(सं०)—(उ० मुँ०)। दे०—घोंघहरुआ। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंडूत (संस्कृ०)]।

गतान—(सं०)—(१) किसी बोझ के बोझे को बाँधने के लिए घासों के समूह को लपेटकर या बाँस की करची को फाड़कर तथा ऐंठकर बनाई गई रस्सी (चंपा०-१)। पर्या०—गात (शाहा०)। [गत+आन, ग+तान< √गन्त्री+तन्तु, गात्रतन्तु, गन्त्रीदाम, गात्रदाम। गड़ (=बंधन)+तंतु या दाम]

गतार—(सं०) कुएँ के नीचे का चक्का या फलक (चंपा०, गया, मग०-५)। दे०—जमवट। [ग+तार, गात+आर,< गर्ततल, गात्रतल (?) मिला०—गताल (विहा०)=निचला, नीचा, गर्त]।

गतौरा—(सं०) ऊख के बोझे को बाँधनेवाली रस्सी (द० प० शाहा०)। दे०—जोती। गत+औरा, मिला०—गतान]

गर्ती—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—गोरगोरी। [गर्त]

गदर्वँहोआ—(सं०)—(पट०, गया) दे०—गदपुरना। [गद+विहोआ < गदलाक्षी (हि०), मिला०—गदपुरना]

गदविहोड़ा—(सं०)—(द० मुँ०, भाग०-२) दे०—गदपुरना—[गद+विहोड़ा, मिला०—गदपुरना]

गदपुरना—(सं०) फसल, घास आदि के तल

में पैदा होनेवाली पशु-खाद्य घास, जो जमीन पर फैली रहती है। (शाहा०, चंपा०) पर्या०—गदपुरना (द० मुँ०, चंपा०) गदर्वँहोआ (पट०, गया), गदविहोड़ा (द० मुँ०), पुरनवा (द० भाग०, भाग०-१)। [गद+पुरना। गद< गदह् (=रोगनाशक)। पुरना पुनर्नवा। गोंद वाले पुनवा (बँ०), घेटुली, पथरा (मरा०), सटोडी (गु०), दुषेल्लइकिल्लु (क०), कमोदि (ते०), मुकरत्तैकीरै (त०, अस्पत [फा०], पुनर्नवा [सं०)]

गदरा—(सं०) [(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० उ०, मुँ०-२, मग०-५)। पर्या०—चनचा (ग०उ०), गादा, गदा, गादुर (द० मुँ०, चंपा०), खँडुरी (द० भाग०, चंपा०, भाग०-१), कच्चरी (सामा० पू०)। (२) आम का रस (चंपा०-१)। [देशी, मिला०—गार्द्ध, गर्ध< √गृध् (=चाहना); खाद्य, खाद्य < √खद् (स्थैर्ये=स्थिरता प्राप्त करना, पका होना। दे०—गादा]

गदराइल—(वि०) (१) फल और अन्न के गुच्छे का पकना। इस समय उनके वस्तुएँ पुष्ट हो जाती हैं (चंपा०-१, मुँ०-२, मग०-५)। (२) मटर-बूट आदि के पौधों में दानों का पुष्ट होना। आम आदि फल का पुष्ट होना। (३) गीदाना (चंपा०-१)। "गदराने तन गोरटी।"—बिहारी। (वि०) गदराई हुई वस्तु [गदरा+आइल (प्र०)< खाद्य, खाद्य (?)]

गदरायल—(वि०) (१) छीमी में अन्न का होना। (२)—चने आदि के पौधों में लगी ढेढ़ियों या छीमियों के अन्न का पुष्ट होना (मुँ०-१, चंपा० मग०-५)। (वि०) गदराई हुई वस्तु। दे०—गदराइल। उदा०—गदरायल बा, गाछा पाक बा। [गदरा+आयल (प्र०)< खाद्य, खदा< √खद्]

गदरी—(सं०) फसल का अधपका अन्न (चंपा०-१, मुँ०-२)।

गदहलोट—(वि०) (१)—वह मिट्टी, जहाँ गदहे लोटते हों (शाहा०-१, मुँ०-२)। (सं०)—गदहे का लोटना। [गदह+लोट]

गदहिया—(सं०)(१) एक कीड़ा विशेष (शाहा०-१)। (२)—एक जाति-विशेष (शाहा०-१)। गोआर (मुँ०-२)। (३)—(पू० मुँ०, शा०) दे०— पर्या०—गदही [गदह+इया (प्र०) गदहा < गर्दभ, गर्दभी, "गर्दभी क्षुद्ररोगजन्तु-विशेषयोः—(मेदि०)]

गदहिया धान—(सं०) एक प्रकार का धान, जो मोटा और मटमैले रंग का होता है (पट-१)। [गदह+इया (प्र०)+धान< गदहा+धान]

गदही —(सं०) (१) उगते हुए तमाकू के पौधों को नष्ट करनेवाला एक कीड़ा (उ०)। पर्या०—गदहिया (पू० शा०, मुँ०)। (२) गदहे का स्त्रीलिंग। [*गर्दभी (संस्कृ०)=एक प्रकार का कीड़ा, जो गोबर में पैदा होता है—सुश्रु०, —मो० वि० डि० "रासभे गर्दभी क्षुद्ररोग-जन्तुविशेषयोः"—(मेदि०)]

गदीना—(सं०), (१) लहसुन के स्वाद का एक साग। (२) एक छोटा-सा सुगंधित पौधा; इसके साथ कौड़ी बाती है (पट०-१)। [देशी]

गद्दर—(सं०) एक प्रकार का अगहनी धान, जो उजला, लाल तथा कुछ मोटा होता है। इसका चावल लाल या सफेद होता है। यह भादो-आश्विन महीने में तैयार हो जाता है (सा०१, चंपा०-१, मुँ०-२)। पर्या०—गद्दरि (दर०-१) [देशी, मिला०—गदुल (संस्कृ०), गद्द (सं०) =दलदल भूमि, पंकिल भूमि]

गद्दा—(सं०) (१)—(द०-प० शाहा०)। दे०—पखारी। (२) बैल, घोड़े और हाथी आदि की पीठ पर रखा जानेवाला मोटा गद्दा। (३)—रुई या नारियल के रेशे आदि को भरकर बनाया गया मोटा बिस्तर। [< *गर्द=ऊँचा स्थान, युद्ध-रथ में बैठने का स्थान, गद्दी, गादी (हि०, मै०), गादी (बं०), गादि (ओ०), गदी, गद्दी (पं०), गद्दा (ल०) =एक पैंजा घास, गद्दी (सि०), गादी (मरा०, गु०)]

गद्दा, गादा—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुँ०, मग०-५, मुँ०-२, चंपा०)। दे०—गदरा। [< *खाद्य< √खद्—"स्थैर्ये=स्थिरता प्राप्त करना, पका होना,

जाना । मिला०—खरिदा (संस्कृ०) = सूखा या टूटा हुआ अन्न]

गद्धा—(सं०), (१) धान के पौधों को रोपने के बाद खेत में ज्यादा पानी जमा हो जाना (मुं०-१) । (२) ज्यादा खाने की प्रतिक्रिया (मुं०-१ भाग० -१) । गद्धा लागल (मुहा०) पानी ज्यादा दिन तक जमा रह जाने के कारण धान के पौधों में सर्दी लगना (मुं०-१.) । [< *गद्ध=रोग होने बीच < *गत्त या गर्तोदक]

गधपुरना—(सं०)—(प० मुं०, चंपा०) । दे०—गदपुरना । [गध + पुरना < गदह + पुनर्नवा]

गधिआएल—(वि०)—गद्धा लगा धान का पौधा । (क्रि०) (१) धान के पौधों में ज्यादा पानी होने पर गद्धा रोग पकड़ना । (२) ज्यादा खाकर अलसाना (मुं०-१ भाग०-१) [गद्धा + इआएल (प्र०) < गध < गद (=रोग)]

गनौरा—(सं०) (१) खाद के लिए कूड़ा-कर्कट जमा करने का स्थान (मुं०-१, भाग०-१) । (२) कूड़े-कर्कट की ढेरी (मुं०-२, चंपा०, भाग०-५) । (३) (पू० शा०) । दे०—खादर । [गन+औरा, गन < गन्दा, गन्ध (=दुर्गंध); औरा < अवट < वाट]

गन्हाएल—(क्रि०) (१)—खेत में दी गई खाद का सड़ना (चंपा०-१, भाग०-१) । (२) किसी वस्तु के सड़ने पर उससे दुर्गन्ध निकलना । [< *गन्धन < गन्ध] ।

गपत्—(सं०) ज्वार, मकई और ऊख के पत्तों पर लोहचिह्न-जैसा लगनेवाला एक रोग, जिससे फसल का ऊपर का हिस्सा नष्ट हो जाता है (पट०, ज०) । दे०—ओरग । [देशी, ग + पत् < अग्र + पत्र, < गर्भ + पत्र (?)]

गबस्—(सं०)-(शा०) दे०—ओरंग । [मिला०—गपत्]

गब—(सं०) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज (चंपा०, मुं०-२) । (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है । दे०—गबा । पर्या०—पहिरोपा (पट०-४, भाग०-५); गब लगावल (मुहा०) गब लगाना । [देशी, मिला०—गर्भ]

गबड़ा—(सं०) अनेक प्रकार के धान का मिश्रण । [मिला०—कर्बुर]

गब लगावल—(मुहा०) गब लगाना । दे०—गब ।

गभआ—(सं०) फसल अथवा किसी पौधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (भाग०-२) पर्या०—गभा, गाभा, गोफा, चोप (चंपा०) ।

गभल्—(सं०)-(शाहा०) । दे०—ओरंग । [देशी, पत्र मिला०—गर्भ, दे० गपत्]

गभा—(सं०) फसल या किसी पौधे के पत्तों के बीच का नया पत्ता (चंपा०) या दे०—गभआ । [< *गर्भक]

गभाइल—(वि०) वह पौधा, जिसकी बाल पूर्ण रूप से नहीं फूटी हो, अभी गर्भ में ही हो । [गभ + आइल (प्र०) < गर्भ < (संस्कृ०) < गर्भल (प्रा०)] ।

गभा मइल—(मुहा०) चंपा० । दे०—गभा मेल ।

गभामेल—(मुहा०) फसल में बाल का होना (द० प० मुं०) । पर्या०—रेड़ा मेल (द० प० मुं०-चंपा०), गन्हड़ी मेल (ओच मुं०), दुधिआएल (शाहा०), गदराएल (पट०, गया०) दुधैली (द० पू०), गदराएल मुं०) । [गभा + मेल, मइल, गभा < गर्भ, मेल, मइल < √म्]

गभिनाएल—(क्रि०) गाय आदि मवेशी का गाभिन होना, गर्भ धारण करना । (वि०) गाभिन हुई गाय आदि । [< गभिन + आएल (प्र०) < गभिन < गब्भिणी (प्रा०) < *गर्भिणी]

गभौरी—(सं०)—(१)—धान का पूरा डंठल (पुआल), जो दौंवा नहीं जाता है, बल्कि उसे झाड़कर अनाज निकाल लिया जाता है और वह आँटी के रूप में बँधा रहता है । (द० भाग०, भाग०-१) । दे०—नेवारी । (२)—धान के पुष्ट पौधों की अँटिया या पुलला । [देशी, सं० < *गह्वर < *गर्भ]

गभ्मा—(सं०) ताड़, केले आदि की नई कोंपल (मुं० १, भाग०-१) < *गर्भक]

गमहि—(सं०) एक प्रकार का बढ़िया धान । दे०—गम्हरी । [< *गम्भ < *गर्भ]

गमला—(सं०) फूल रोपने का मिट्टी का बरतन । [गमला (बं०), गमला (हि०, प०) । व्युत्पत्ति अनिश्चित; उधार लिया शब्द—(चंपा०) ।

मिला०—गलन्तिका (संस्कृ०) = स्फटिक का बना एक जलपात्र, जिससे तरल पदार्थ पीया जाता था—(मो० वि० वि०); गम + ला < गुल्म + ल (प्र०); गुल्मक = झाड़ीदार, झाड़ीवाला, गम < क्ष्मा (पृथ्वी, मिट्टी) + आलु (= कठौती?)]

गम्हारि—(सं०) एक प्रकार का पौधा । पर्या०—गम्हार (चंपा०) । [मिला०—गम्भारी]

गम्हड़ल—(क्रि०) धान आदि के पौधों का फूटने लगना [< *गर्भ < √गृभ् = √ग्रह (प्रत्यक्ष = ग्रहण करना); < गह्वर]

गम्हड़ा मेल—(मुहा०) फसल में बाल फूटने लगना (द० प० के अतिरिक्त मं०) । दे०—गभा मेल । [गम्हड़ा + मेल, गम्हड़ा < गर्भ, मेल < √म्]

गम्हड़ी—(सं०) फूटनेवाले धान आदि के पौधे । [गम्हड़ + ई < *गर्भ, < *गर्भिन्]

गम्हरी, गँमरी—(सं०) (१) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से साठ दिनों में पक जाता है (पू० मं०-२) । दे०—साठी । (२) अधिक पानी होने पर फसल में लगा एक रोग [< *गर्भ, < *गह्वर]

गरँड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी-नहर आदि के जलप्रवाह के बीचोबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (द०-मुं०) । दे०—बाँध । [मिला०—गरौंदा]

गर—(सं०)—(१) काम में बैठ जानेवाला बैल (शाहा०, गया) । दे०—पदका । [देशी, मिला० —गड़ < गड़ना < गर्त] (२) खुरपी से खेत में उगी हुई घास को अलग करना । (३) निकौनी करके खेत से निकाली हुई घास-फूस । गरदेल, (भाग०-१, द०-मु०) गर निकालल (मुहा०) = गरदेल) [उद् + गिर < √गृ = निकालना, वमन करना]

गरइ—(सं०)—एक प्रकार की मछली (सर्वत्र) । [< *गरइपुणी, गडक (संस्कृ०), गरई (हि०), गरई माछ (बं०)]

गरकी—(सं०)-(१) बाढ़ या अधिक पानी हो जाने के कारण की गई भूमि-कर की मुक्ति । दे०—माफ । (२) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति होने पर उसके मुरक (बदला) के रूप में किसान या बटाईदार को दिया जानेवाला अनाज का अतिरिक्त अंश । (सं० द०, चंपा०) । दे०—छूट । [गरक + ई (प्र०) < गर्क (अ०) = मग्न, डूबा हुआ, मिला०—गद् या गोरदो (संस्कृ०) < √गृ]

गरकी परती—(सं०) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति के लिए मुरक (बदला) के रूप में किसान या बटाईदार को को दिया जानेवाला अतिरिक्त अंश (द०-मुं०) । दे०—छूट । [गरकी + परती, मिला०—गरकी]

गरगाही—(सं०) वह रस्सी, जिसे पशुओं की गरदन में लपेटा जाता है । [गर + गाही, गर < गल, गाही < √ग्रह < √उद्]

गरदनी—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली मोल रस्सी । (चंपा०, मं०, भाग०-१) । दे०—गरदाँव । [गर + दन + ई < गरदन (हि०) < गल (संस्कृ०)]

गरदनी

गरदाँव—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली मोल रस्सी (प०, द० मुं०, भाग०-(१) । पर्या०—गरदनी (चंपा०, प० मं०) गरौंवा (पट०), गरदाम (चंपा०-१) । [गर + दाँव < गर + दाम < *गल + दाम]

गरदाम—(सं०) (चंपा०) । दे०—गरदाँव ।

गरदामी—(सं०) (१)—कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर की रस्सी, जो पगहा और काढ़ी से संबंधित रहती है (चंपा०) । दे० गरवाहनी । (२) बैल की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली रस्सी । [गर + दामी < गल + दामन या < गरदन (हि०)]

गरदाम—(सं०) गरदामी । मवेशियों के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी । दे०—गरदाँव । [गर + दाम < गरदाम < *गलदाम]

गरदामी—(सं०)-(उ० पु० मं०)। दे०—गरदा-वनी। [गर+दामी<*गल+दाम]

गरदावनी—(सं०) कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर बँधी हुई रस्सी, जो पगहा और कढ़ी से संबंधित रहती है। पर्या०—गरदामी (उ० पु० मं०) गरदानी (चंपा०)। [गर+दावनी <गलदाम, गलदामन]

गरदेल—(मुहा०) खेत में लगी हुई घास को खुरपी से निकालकर अलग करना। दे०—गर।

गरनिकालल—(मुहा०) (दर०-१)। दे०—गरदेल [गर+निकालल]

गरहर—(सं०) दुष्ट या चलीहे जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा या पट्टा (द० भाग०, भाग (१)। दे०—ठेकर। [गर+हर। गर< गल। हर (प्र०) या<√हृ]

गरहुकवा—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा-१) [मिला०—गलेकुक, गरेड़ का (हि०), (बिहा०)]

गरहा—(सं०) दे०—गड़हा।

गरही—(सं०) छोटा गड़हा।

गरही खरचा—(सं०)-(द० मुं०)। दे०—गाईं खरच [गरही+खरचा (देशी<गड़ही<गड्ढा <गर्त; खरचा (<खर्च (फा०)]

गरहोंढ़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी, नहर आदि के जल-प्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ० प०, पट०, गया)। दे०—बाँध। गर+औंढ़ी<गंड (=विहृ, वंचित)+औंढ़ी< आढ़, आर)

गरियर—(वि०) काम में बैठ जानेवाला बैल (द० प० शाहा०) दे०—पचका। (गर+इयर <गर<गड़ना; मिला०—गर, गरियार (शाह०)

गरियार—(सं०) वह बैल, जिसका रंग मटमैला हो।

गरौंचन—(सं०) घोड़े या किसी दूसरे मवेशी के के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी। पर्या० गरदाँव, गरकौंचा (शाहा०) गरदम (उ० पु० मं०)। [गर+औंचन<गल+दामन]

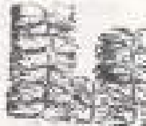
गरौंधा—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली मोल रस्सी (पट०। दे०—गरदाँव। [गर+औंधा<*गलदाम, दामन]

गलहुआ मशीन—(सं०) वह मशीन, जिसमें खराब तथा गंदी चीनी को गलाकर पुनः स्वच्छ चीनी बनाने का काम होता है (री०)। [गलावया (बिहा०)+मशीन<मैशीन (अं०)

गलल—(वि०) वर्षा के कारण आहत या गला हुआ मूट अथवा कोई दूसरा अनाज (सा०) दे०—गराहल। (वि०) (१) पानी में किसी वस्तु का सड़ना। (२) लोहे आदि पदार्थ का पिघलना। [गल+ल (प्र०)<गलन, गलन <√गृ; <*गलति—मिला० गलयति (संस्कृ०) गलति (पा०), गलइ (प्रा०), गलुन (काश०) गल्नु (सिं०), गलयो (कुमा०), गलिवा (असं०) गला (बं०), गालिवा (ओ०)=किसी छेद से निकालना। गलना (हि०), गलया (बं०), गलनु (नि०) गलनु (गु०) मिला०—गालया (प०), गलयेही (मरा०)—<*गालयति (संस्कृ०)। यह रूप गलति (संस्कृ०) से भिन्न है। गलति (पा०) गलिया (असं०)=पानी की तरह गिरना, गला (बं०)=चूना, गड्नु (सिं०), जलनुँ (गु०), गळणे (मरा०), गल्नु (सिह०)—(नेपा०)

गलावल—(क्रि०) गलल क्रि० का प्रे०। खेत की मिट्टी को कोड़-कोड़कर पानी में गलाना। लोहे आदि धातुओं का पिघलाना। [गल+आवल (प्र०)<गल<गलल<गलि<√गल्+ णिच्; गालयति (संस्कृ०), गाले गालेइ (प्रा०) गलाना (हि०) गलाउनु, गाल्नु (ने०), गलान (बं०), गलायबु (उ०), गालणु (सि०), गालनुं (गु०), गाळणे (मरा०)]

गलवा—(सं०)-(१) खलिहान में इकट्ठा किया हुआ, फसल के बोझों का, ढेर (उ० प० बिहा०, मं० २)। दे०—गाँज। (२) धनसंपत्ति, अनाज। [गल्ला(फा०)]


गलवा

गवँई—(वि०) गाँव का। [गवँ+ई (प्र०) <गाँव<*ग्राम]

गवत—(सं०)—(१) मवेशियों का खाद्य-पदार्थ, घास, पुआल आदि (चंपा०-१, शाहा०)। (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं के खाने के लिए दिया जानेवाला चारा (सं० प्र०)। पर्या०—लेहना (शाहा०, चंपा०), गौत (गया), गौतहा (पट०)। [गव+त<*गवाद <*गवाद्य, गौत, गवत, चरा (हि०), चारो (नं०), गोआस (दे० प्रा०), गवत (मरा०), दे०—चारा, चरी (बिहा०)]

गवतचोर—(सं०) थोड़ा खानेवाला पशु (द० प० मं०, चंपा०-१)। दे०—निखोराह। [गवत+चोर<गव+त+चोर<*गवाद+चोर]

गवा—(सं०)—(१) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज। पर्या०—गावा, गव (चंपा०), पहिरोपा (पट०-४)। (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है। [देशी]

गवाकेल—(मुहा०) पहले दिन धान का रोपना (चंपा०)।

गवैँयाँ खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च (मं०)। दे०—गाई खरच। [गवैँयाँ+खरच (देशी)। <गवैँयाँ< ग्राम+खरच<खर्च (फा०)]

गसबन कब्जा—(सं०) बिना अधिकारी हुए भी जमीन पर किया गया अधिकार (सा०१, चंपा०)। [गसबन+कब्जा]

गहरा—(सं०)—(१) उपजाऊ और शक्तवर मिट्टी। दे०—बरियार। (२) गड़हा, गहरा। [गम्भीर]

गहीङ्—(वि०) गहरा (दर०—१)। [गम्भीर]

गहुँ—(सं०)—(चंपा०)। दे०—गहुम।

गहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो श्वेत-रक्त वर्ण का होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (पु० बिहा०)। पर्या०—गहूँ, गेहूँ (चंपा०)। दे०—गेहूँ। [गोधूम (संस्कृ०) >गोहुमो (प्रा०) >गेहूँ (हि०)। गम (बं०), गहूँ (मरा०); घउँ, घेउँ (गु०); गोंधी, गोंधि, गोदी (काश०); गोदुम्, गोधुम्, गोधुमत् (सं०); गोहुम, गहुम (संता०); गहुँ (नं०); गोधम (सिंह०); गंदुम (फा०); हिन्ता, हिंताह (अर०)]

गहुमन—(सं०)—(१) पीले (गेहुँए) वर्ण का पशु। दे०—गोआर। (२) एक प्रसिद्ध साँप। [गहुम+न<गहुम<गोधूम+वर्ण]

गहुमा—(सं०)—(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल-मोटा-चिपटा धान (उ०-पु० मं०, सा०—१, दर०—१)। (२) एक प्रकार का मकई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और चुन्न पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूँजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा होता है और उसपर अपेक्षिया कमल-जैसा मन्न का गुच्छा लगता है (द० भाग०)। दे०—जनेर। (३) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दाने तथा मटमैले रंग का होता है (द० भाग०)। दे०—बजड़ा। [गहुम+आ (प्र०) <*गोधूमक]

गाँज—(१) खलिहान में इकट्ठा किये हुये फसल के बोझों का ढेर (राशि)। पर्या०—टाल (मं० उ०, शाहा०, बिहा०), गल्ला (उ०-प० बिहा०), ढेरी (गया), कोड़, कोड़ा (चंपा०, पु०), अम्हार (द० पु० मं०)। (२) खलिहान में अथवा कहीं अन्यत्र भी रखी हुई तैयारी या पुआल की राशि। (३) चारे के लिए काटे गये जनेरे के डंठल की राशि (द०)। पर्या०—टाल (पु०), अम्हार, कोड़ (द०-पु० मं०)। (४) तैयारी की फसल की राशि (पट०-१)। [मिला०—गञ्ज (को०वि०हि०)]


गाँज

गाँजल (क्रि०)—जोड़ना, इकट्ठा करना। [गाँज+ल<*गञ्ज (संस्कृ०) (?), गंजन (प्रा०), गँजिठ (असं०), गाँजना (हि०), गाँजिवुं (गु०) गाँजणे (मरा०)]

गाँजा—(सं०)—(१) एक प्रकार की मादक वस्तु, जो चिलम में चढ़ाकर तथा सुलगा कर पी जाती है। यह वस्तु नेपाल या राजशाही में अधिक पैदा की जाती है। इसी की जाति की भाँग भी है, जो जंगल में स्वयं होती है। (२) गाँजे

का पौधा। [देशी, मिला०—गञ्जु (संस्कृ०) =एक प्रकार का पौधा। गञ्जा (स्त्री०)= झाड़ी, सविराजय। गंज (प्रा०), गाँजा (हि०, नै०, असा०, बं०), गंजा (कौ०), गाँजो (सि०) गाँजो (गु०), गाँजा (मरा०)]

गाँझी—(सं०) एक प्रकार की लता (बर०-१)। [मिला०—गञ्जु (संस्कृ०)=एक प्रकार का पौधा]

गाँठ—(सं०)—(१) ऊख, लकड़ी आदि का पोरा। (२) शरीर के दो पोरों को पृथक्-पृथक् करनेवाली ग्रंथि (शा०-१)। (३) किसी वस्तु को बाँधकर बनाया गया बड़ा बंडल। (४) कपड़े और रस्सी आदि में लगाई गई ग्रंथि। (५) ऊख, बाँस आदि के पोरों की ग्रंथि (बै०-२, पट०-४, चंपा०, भाग०-१, मग०-५)। गाँठदेवल, गाँठ पारल (मुहा०) =गाँठ बाँधना। किसी बात या घटना को याद रखना। [ग्रंथि, ग्रंथ (संस्कृ०)< गंठ (प्रा०), गाँठ (हि०), गाँठि, गाँठि (नें०)]

गाँठदेवल (मुहा०)—गाँठ देना। किसी वस्तु या घटना को याद रखना।

गाँठपारल—(मुहा०) दे०—गाँठ, गाँठ देवल।

गाँडर—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (उ० बै०, पट०, मग०-५)। दे०—गड़हर। (२) एक पशु-खाद्य घास। दे०—गँड़हर। [देशी, मिला०—गण्डिपुक (संस्कृ०)]

गाँधी—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त कीड़ा, जो धान में फूल होने के पहले ही ज्वार आदि अनाज पर प्रहार करता है। पर्या०—गाँधी, गँधवा (प०, मग०-५), माँछी (उ०), गन्धुआ-(चंपा०), किरौना(द०-प० शाहा०), भेंमरा (द० मुं०)। [< *गंधिक, < *गंधिन् (संस्कृ०), गाँधील (मरा०)]

गाँव—(सं०) ग्राम, बस्ती।
[< *ग्राम (संस्कृ०), गाम (पा०, प्रा०), गाम (रोमा०), गाम (बरही), गाँव (हि०), गाउँ (नें०), गाउँ (कुमा०), गाम (गढ़वा०), गाउँ (असा०), गाँ, गाँव, गाव (बं०, औ०), गम, (सिंह०), ग्राम (काफि०)]

गाँव के ठाकुर—(सं०) गाँव का स्वामी, जमींदार (द०-प० शाहा०)। दे०—जिमिदार। [गाँव के+ठाकुर (बो०)]

गाँव के खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च। दे०—गाईं-खरच। [गाँव+के+खरच (बो०)]

गाँवघर—(सं०) गाव-पड़ोस। [गाँव+घर< ग्राम+गृह]

गाँसी—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए कचबार के बदले हल की नोक और फाल के बीच में ठोंकी गई पचड़ी। [देशी, मिला०—गाँसना (हि०)=पैबंद लगाना। गाँस्नु, गाँसिनु (नें०)=पैबंद लगाना, जोड़ना। गाँस (नें०) =पैबंद, जोड़]

गाईं—(सं०) गाँव।

गाईं खरच—(सं०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च। पर्या०—गाँव के खरच, गाईं वाँ खरच (मं०), सलामी खरच (द०-प०-मं०), देंही खरचा (चंपा, पू०-मं०), एकरा आत (पट०), बन्दूखरच (द० भाग०)। [गाईं+खरच, गाईं < गाँव < ग्राम; खरच < खर्च (फा०)]

गागर—(सं०) दे०—गगरी।

गागर नींबो—(सं०) दे०—पथरा नींबो, गागल।

गागल—(सं०)—एक प्रकार का बड़ा नींबू, जिसका छिलका मोटा होता है (पट०-१, चंपा०-१, मं०-२)। पर्या०—गागल नींबो (चंपा०, शाहा०)। [देशी]

गागल नींबो (सं०)—(चंपा०, शाहा०)। दे०—गागल।

गाछ—(सं०)—(१) ईख या किसी दलहन का अंठल, जिसे दौनी करके भूसा बनाया जाता है (द०-प० मं०)। दे०—डाँगरा। २—कटहर या दूसरे दलहनों का अंकुर या डंठल (उ०-पू०)। दे०—ढिबनी। (३) आम, कटहल आदि फलों का वृक्ष। [< *गच्छ (संस्कृ०), गच्छ (पा०), गाछ (हि०), गच्छी (सिना०-बरही), गाछ (बं०), गस (सिंह०), गाछ (नें०)]

गाछी—(सं०)-(१) वह स्थान, जहाँ आम, अमरूद, कटहल आदि के पेड़ लगाये गये हों। दे०—

बगीचा। (२) (मं०)। दे०—आम के बगीचा। (३) बीज की क्यारी (बिहार) से रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीआ। (४) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (उ०-पू० मं०, बं०-२)। दे०—ढिबनी। [गाछ+ई (प्रत्या० प्र०) < *गच्छ]

गाजड़—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का मीठा कंद, जो कच्चा और पकाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है (द०-प० शाहा०, बै०, भाग०-५)। दे०—गजड़ा। [< *गर्जेर]

गाजर—(सं०)—(१) एक प्रकार की फसल, जो घर के पास बारी में उपजती है, न कि खेत में (उ०-पू० मं०, शाहा०)। (२) दे०—गजड़ा, गाजड़, गजरा। [मिला०—गर्जेर]

गाड़ल—(क्रि०) गाड़ना। [गाड़+ल (प्र०) < गाड़ < *गर्त (संस्कृ०), गड्ड, गड्ड (प्रा०) =गड्ढा, गड्ढा। गाड़ना (हि०), गाड़नु (नें०), गाड़ा (बं०), गाड़ (औ०)=गड्ढा, गड्डुआ (नें०)=गोता, गड्डुआ (कु०), गाड़वें (गु०), गाड़यो (मरा०)]

गाड़ा—(सं०)—(१) अन्न रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (शाहा०)। दे०—खाद। (२) पशुओं का एक रोग। इस रोग के कारण पशुओं के सींगों की जड़ में कीड़ा निकलने लगती है (शा०-१, बै०-२)। पर्या०—पचल, कौवड़। [गाढ़ा, गड्ढा< गर्त या खात] (३) बैलगाड़ी (प०, चंपा०-१)। [गाड़+आ< गड्डा < *गन्त्र, गन्त्री]

गाड़ी—(सं०) गाड़ी, बैलगाड़ी। पर्या०—गाड़ी, गाड़ा=बड़ी गाड़ी, गाड़ी। [गाड़ी< *गन्त्र, गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (देशी प्रा०) गोड़ी (कश्मी०), गाड़ी (हि०, बं०, औ०), गड्डु, गड्डी (पं०), गड्डु (ल०), गाडी (सि०), गाडी (मरा०, गु०)। टर्नर के अनुसार, 'गाड़ी का सम्बन्ध < *गर्त (ऊँचा स्थान) से नहीं है, बल्कि < *गड्डु (=गाड़ना) से है।'—(नेपा०)। किंतु गाड़ी की व्युत्पत्ति < गन्त्र, गन्त्री या गन्त्रिका या से भी संबंध है। दे०—गन्त्री=गाड़ी—हर्ष, संस्कृ०]

गाढ़—(सं०) घनी बोआई। दे०—घन। (वि०) गाढ़ी वस्तु। [गाढ़]

गाढ़ा—(सं०)—(१) दे०—घन। (२) घना, गाढ़ा। [गाढ़]

गात—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (शाहा०)। दे०—गताल। [दे०—गताल]

गाता—(सं०)—(१) (द० मुं०)। दे०—गैता। (२) ताड़ के लंबे बल्ले या किसी दूसरी लंबी भारी वस्तु को दूसरी जगह पर ले जाने के लिए उसमें बँधी रस्सी के साथ लगाया गया बाँस का टुकड़ा। [देशी, मिला०—खनित्रक* >खन्ता, खइंता > गैता > गाता]

गाद—(सं०) नीची जमीन (द० मुं०)। [गर्त, खात]

गाद, गादा—(सं०)—(१) मटर की अधपकी छीमी। (२) अधपके मटर की बनी दाल। (३) किसी तरल वस्तु की निचली सतह में बैठा हुआ मोटा अंश। [< *खाद्य (?)]

गादर—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, चंपा०)। दे०—गदरा। [गाद+र < * खाद्य (?)]

गादा, गदा—(सं०)-(१) दे०—गदरा। (२) (क) मटर की अधपकी छीमी। (ख) अधपके मटर की बनी दाल (शाहा०)। (३) चटुए और सन के ऊपर का हरा पत्ता। [< *खाद्य]

गादा, गादु—(सं०) दे०—गाद, गादा।

गादुर—(सं०) चना और मटर में लगनेवाला एक कीड़ा (द०-प० शाहा०)। [देशी]

गाभा—(सं०) (चंपा०, बं०-२)। दे०—गब्भा।

गाभिन—(वि०) गर्भिणी गाय आदि। [गाभ+इन< *गर्भिणी< गर्भ, गब्भिनी (पा०), गब्भिणी (प्रा०), गाभिन (हि०), गाभिनि (नें०), गर्भिनि (कश्मी०), खावनी (रोमा०), गाभिण (कुमा०), गाभिनि (असा०), गाभिन (बं०), गब्भण (पं०), गब्भन (ल०), गब्भणी (सि०), गाभण (मरा०, गु०)]

गाय—(सं०) दूध देनेवाली, सींग, पूँछ और सास्ना (गलकंबल) से युक्त एक मादा मवेशी, गौ।

बैल का स्त्री० । पर्या०—गाय, गोरू (चंपा०), गैया । [<*गो (संस्क०), गउ, गो (पा०, प्रा०), गाय, गौ, गउ (हि०), गै, गाउ (बं०), गै (उ०), गाई (सि०), गौ (मरा०, गु०)] महर्षि पतंजलि के अनुसार 'गो' शब्द के बहुत-से अपभ्रंश रूप हैं यथा—गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि]

गाय-गोरू—(सं०) सींग को छोड़ सींगवाले पालतू पशु । दे०—गोरू । [गाय+गोरू (अनुवा०)<गो]

गार—(सं०) जमीन की वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी नीचे से ऊपर की ओर उठाया जाता है (उ०-प० सं०) । दे०—ढोबर । [देशी]

गाछा—(सं०)-(१) दे०—गछा : (२) एक बार में रोपे जानेवाले धान के पौधों का समूह (चंपा०-२) । [देशी, मिला०—ग्राम (=गाँव, समूह), गामे]

गाछा-पखार—(सं०) रोपनी समाप्त होने पर गृहस्थ के घर पर मजदूरिनों द्वारा किया जानेवाला एक उत्सव, जिसमें गृहस्थ के आँगन पर मजदूरिनें कीचड़ उछालती हैं और द्वार पर पहुँचने से रुके हुए, उनकी कोठरी पर अपूर्व कमल की, गीत गाती हुईं, अवशिष्ट करती हैं और अंत में घर की मालकिनों द्वारा दिये हुए सिन्दूर और तेल लगाती हैं एवं भींगे हुए चने की अँकुरी का प्रसाद लेकर घर जाती हैं (चंपा०, मुं०-२) । [गाछा+पखार । दे०—गाछ; पखार<पखालन<*प्रक्षाल]

गाबिस—(सं०) एक तरह की मिट्टी । कुम्हार इसे बरतन रंगने के काम में लाते हैं (चंपा०-१, मुं०-२) । [देशी, मिला०—गनिया]

गाही—(सं०) पाँच वस्तुओं की एक इकाई (चंपा०, भाग०-५, मुं०-२, भाग०-२, पट०-४, शाह०) । [देशी, संभ०<*गाथा या*गाथिन्]

गिड़ापल—(वि०) ऊख के पौधे में ग्रंथि का लगना (क० मुं०) । दे०—पोर । [गिड़ापल<गिरहालन<*ग्रंथि]

गिरईं—(सं०) किसीसे रुपये लेकर उसके बदले में उसके पास जमीन, गहने आदि रखना (शाहा०) । दे०—गिरवी, रेहन । [गिरवी]

गिरथ—(सं०) दे०—गिरहथ ।

गिरदा—(सं०)-(पट०) । दे०—चपड़ा ।

गिरदौंव—(सं०)-(भाग०-५) । दे०—धरराजी ।

गिरल—(वि०)-(१) हवा या किसी और कारण से फसल अथवा आम आदि फलों का जमीन पर गिरना । (२) किसी ऊँची जगह से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का गिरना । (वि०) हवा के कारण भूमि पर गिरी हुई फसल, फल आदि । पर्या०—खसल । [गिर+ल (प्र०)<गिर, गिरना (हि०) (संस्क०)<√गृ (=गिरति), टर्नर महोदय के अनुसार (१) गिरै (बं०), गिर्थौ (कुमा०), गिरना (हि०), गिड़ना, गिराउना (पं०) और वर्ण-व्यत्यय के साथ ढिगना (पं०), ढिगना (हि०)<*गिष्टु, (२) गलति (संस्कृ०), गलति (पा०)=गिरता है । गलिया (असम०), गलन (सि०) और संभ० गड़ना (हि०) भी (यदि<*गड्डु नहीं माना जाय) और गड़वुं (गु०), गड़णें (मरा०) (३) गलति (संस्कृ०) गिरता है, गलइ (प्रा०) गळिवा (अ०), गलना (हि०), गड़वा (पं०), गलवुं (गु०), गळणे (मरा०) से अन्य भेदोंटे (भारोप० ब्लू०) से मिलते-जुलते हैं]

गिरसत—(सं०) दे०—गिरहथ ।

गिरह—(सं०)—(भाग०-५) । दे०—गिरे ।

गिरहथ—(सं०) गृहस्थ, जमीन का मालिक (दर०-१, चंपा०, मुं०-२, भाग०-५) । पर्या०—गिरथ, गिरसत, गिरहस्त, गिरहथिन (स्त्री०) । [गिरह+थ, गिर+हथ<गृहस्थ]

गिरहथिन—(सं०) गिरहथ की स्त्री । दे०—गिरहथ ।

गिरहस्त—(सं०)—दे०—गिरहथ ।

गिरावल—(वि०) गिरना क्रि० का प्रे० । गिराना । [गिर+आवल (प्र०)<गिरल, दे०—गिरल]

गिरे, गिरेह—(सं०)—(१) ऊख की ग्रंथि या गाँठ । (२)—बाँस आदि लंबे पौधों की गाँठ । दे०—पोर । [गिरे<गिरह<*ग्रंथि]

गिरेह, गिरे—(सं०) । दे०—गिरे या पोर ।

गिलंदाजी—(सं०) कटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण(द०-मुं०, भाग०-५) । दे०—उरहा । [फा०]

गिलंदाजी मिट्टी—(सं०) सिंचाई के समय खेत की मेंड़ों पर दी गई मिट्टी ।

गीगट—(सं०)—(द०-मुं०) । दे०—कंकड़ । [दे०—गंगल]

गुँजेरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (द०-प० शाहा०) । [देशी]

गुँड—(सं०) चावल की कटी फसल का एक निश्चित परिमाण (बोझा), गड़िया-(पट०) । [मिला०—गुंड, गुंड या गुड=गोलक, गुलिका]

गुँड़ा—(सं०)—(१) चावल छाँटने पर उससे निकली महीन भूसी, जो गाय, बैल आदि का पुष्ट भोजन है (मुं०-१, अन्यत्र भी) । (२)—चावल, आदि मकई के चूर्ण को कूटकर बनाया गया चूर्ण । 'गुंडा खाय, मुंडा होय ।'=गुंडा (भूसा आदि का कदन्न) खाय और मोटा-ताजा हो जाय । [कूट, गुंडक=धूलिचूर्ण (मो० वि० डि०)]

गुँदा—(सं०) दे०—गुंडा । पर्या०—कुंडा ।

गुँजी—(सं०)—(१)—अनाज ओसाने के समय हवा से उड़ा हुआ महीन भूसा (चंपा०, द०-मुं० शाहा०, भाग०-५) । दे०—गंभी । (२) काते हुए सूत का एक परिमित लच्छा । [गुंडी<*गुंद, गुड]

गुँदो—(सं०) छाँटने पर निकला हुआ अनाज (विशेषकर चावल) के ऊपर का महीन छिलका (द० भाग०, चंपा०) । दे०—भूसा, गुंडा । पर्या०—गुंडा (दर०-१) । [कूट या गुण्डक =चूर्ण, धूलि (मो० वि० डि०)]

गुआ—(सं०) गोबर की खाद । [गुआ<*गोमय]

गुआ पटावल—(मुहा०) खाद देना, खासकर गोबर की खाद देना (दर०-१) । [गुआ+पटावल, गुआ<गोआ<गोवा<गोवर<*गोमय, *गोमय, पटावल (देशी)]

गुजरति—(सं०)-(मुं०-२) । दे०—गुजराती ।

गुजराती—(सं०) बड़े थन, विशाल देह और ऐंठे हुए सींगों-वाली काले रंग की भैंस (दर०-१, चंपा-१) । पर्या०—गुजरति (मुं०-१) । (वि०) गुजरात-


गुजराती

प्रदेश-संबंधी । [गुजरात+ई (प्र०), गुजरात<गुज+रात या गुज+रात<गुर्जर+राष्ट्र, आवती या <गुर्जरत्रा]

गुजरकचा—(सं०) ऊख के कोल्हू की नेंदी में रस चूने के लिए बनी हुई नाली (द०-प० शाहा०) । दे०—बनरोह । [गुजर+उजा, (देशी)]

गुड़—(सं०)-(१) गुल्ला का बड़ा बोझा, जो लपेटकर बाँधा जाता है (चंपा०-१, मुं०-२, पू० मुं०) । [गुड़ (संस्कृ०)=बंडल, बोझ (मो० वि० डि०)] (२)—गुड़ । दे०—गुर [गुड़]

गुड़मी—(सं०) एक प्रकार का बरसाती फल, जो मकई आदि के खेत में होता है (दर०-१) । पर्या०—गुरम्ही (भाग०-५) । [देशी]

गुड़रा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [मिला० गुंडाला, गुड़ाला=एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०)]

गुड़ौर—(सं०) गुड़ बनाने का घर (भाग०-१) । पर्या०—गोलौर (शाहा०), कोल्हुआर, कोल्हार । [गुड़+और<गुड़+उल<*गुड़+कुल या गुड़+गृह*>गुड़+घर>गुड़+अर>गुड़+और>गुड़ौर]

गुट्टी—(सं०)—(१) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए पत्तों और चिथड़ों से लपेटी गई रस्सी (द० शाहा०, गया) । दे०—मोथर । (२) पानी में होनेवाली एक घास (मुं०-२) । [<√गुण्ठ =घेरना, लपेटना]


गुट्टी

गुदर—(सं०)—दे०—गुदरी ।

गुदरी—(सं०)-(१) खेतों से निकाल लेने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा-छोटा डंठल (पू० मुं०) । दे०—गुदर । (२) फटे-चिथड़े और कपड़ों को सीकर बनाया गया बिछावन । (३) फटे-चिथड़े । [देशी]

गुहरवाहार—(सं०) शाहाबाद जिले में गंगा के दक्षिणी तट पर रहनेवाला काश्तकारों का एक वर्ग । पर्या०—गुहरवाहार । टि०—यह काश्तकारों का ही एक वर्ग है, इसमें राजपूत और ब्राह्मण हैं । इनके पूर्वजों ने देश की सीमा की और ये लोग जमींदारी के अधीन रहकर

उनके लिए लड़ने-भिड़ने को सदा प्रस्तुत रहते थे, इसीलिए इनकी स्थिति ऊँची मानी गई है।

गुमस्ता भूमि सदा के लिए एक निश्चित कर पर बंदोबस्त कर दी गई है (यद्यपि कुछ जमींदार ऐसा नहीं मानते) और जमींदार की स्वीकृति के बिना ही बेची-खरीदी जा सकती है। यह एक प्रकार से सदा के लिए निजी संपत्ति होती है। यद्यपि इस भूमि के स्वामी इसे मुश्किल से बेचते हैं। ये काश्तकार सुखी एवं सम्पन्न होते हैं और सेना में भी बहुतायत से भर्ती होते हैं। [गुमस्ता+दार (फ़ा०) < गुज़श्ता (उर्दू) < गुज़श्त (फ़ा०) = दान की हुई या कर-मुक्त भूमि]

गुमस्तादार—(सं०) दे०—गुमस्तादार। [गुमस्ता+दार < गुज़श्त (फ़ा०)]

गुमाट—(सं०)—(१) फसल काटने की मजदूरी (शा०, मग०-२)। दे०—बिनौरा। [देशी, (संभ०) < गुज़ार < गुज़र (फ़ा०)] टि०—कटी हुई फसल की २१ बाही पर १ बाही की निश्चित मजदूरी दी जाती है (मग०-५)। (२) काटनेवाले श्रमिक को प्रति बीघा एक आँटी दे देने पर बचा हुआ बोझे का अंश (शाहा०)। टि०—आँटी का परिमाण सर्वत्र एक-सा निश्चित नहीं है। यथा—अगली लोकोक्ति से स्पष्ट है:—'कोठि कठनिहार के, मुँगर सन आँटी।'—(आशय) कटनिहार अपने लिए मुँगर (मुद्गर)—जैसी मोटी आँटी बाँधता है। [देशी]

गुमारा-(सं०) फसल काटने की मजदूरी (गया)। दे०—बिनौरा। [गुदरा < गुज़ारा < गुज़ार: (फ़ा०)]

गुमसा—(क्रि०) गूँथना, मथना करना, रस्सी का बँटना। (वि०) गुँथी हुई, बँटी हुई। [गुन+सा < *गुथ (= गुम्फति)]

गुना—(सं०)(१) गुना, गणित का एक भेद। (२) रस्सी के बाँटने में पड़नेवाली ऐंठन। [गुन < *गुणा, *गुणक (संस्कृ०), गुणु (पा०, प्रा०), गेन (दर०) गुणी (सिन्धा०), गेनु (कश्मी०), गुण्या (प० पहा०), गन्न (नें०), गुण्या (असा०), गाथा (बँ, ओ०), गुनू, गन (हि०), गुणा (गुं०), गोणु (सि०), गुणा (गु०, मरा०)]

गुमटी बाबू—(सं०) चीनी-मिल का एक कर्मचारी, जिसके हस्ताक्षर के बिना ऊख की पुर्जी का पक्का हिसाब नहीं मिलता है (बिहू०, टी०, हरि०)। टि०—जब ऊख तौलनेवाला एक कर्मचारी ऊख का परिमाण लिखकर पुर्जी ऊख लानेवाले किसान या गाड़ीवान को दे देता है, तो वह किसान या गाड़ीवान उस पुर्जी को लेकर गुमटी बाबू के पास जाता है; वह उसपर अपना हस्ताक्षर कर देता है। यदि कोई संदेह हो जाय, तो वह पुन: उस गाड़ी की तौल कराता है और पहली पुर्जी से उसका मिलान करता है, जिससे कि तौल में कमी-बेशी न हो। [गुमटी+बाबू]

गुमसा—(क्रि०)—(१)—अंठल के साथ फसल को बाल रख देने पर कुछ दिनों के बाद सूखकर दानों का स्वयं छूटना या उस बाल का मुलायम हो जाना (शा०-१, चंपा०-१, मैं०-२, पू० मैं०)। (२) पाल पर रखने के बाद आम आदि का और पुआल देने पर केले आदि का पकना। [गुम +स; गु मसा (देशी) = भूसी से दाना अलग करने का काम (हि० श० सा०)]

गुमसल (क्रि०)—(१) भींगे हुए अन्न की, समुचित हवा और धूप नहीं पाने पर, सड़ने के पूर्व की स्थिति (चंपा०-२ मग०-५, पट०-४, मैं०-२, भाग०-२)। (२)-(वि०) गुमसी हुई (गुमसल)। बासू। [गमसा+ल (प्र०) < *घ्रीम्स (?)]

गुमसावल—(क्रि०) गुमसल क्रि० का प्रे०। गुमसाना।

गुमावल—(क्रि०) गुमल क्रि० का प्रे०। गुमाना।

गुमास्ता—(सं०) किसी जमींदार या महाजन का कर्मचारी, जो घूम-घूमकर जमींदारी या महाजनी का तकाजा और काम देखा करता है (शा०-१)। [(फ़ा०), गुमाश्ता (हि०), गुमस्ता (बँ०)]

गुम्मा—(सं०) दे०—गुमा और गुमा।

गुर, गूर—(सं०) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार ठोस पदार्थ। पर्या०—गुड़। [गुड] टि०—गुड़ कहीं रवा और कहीं चकती के रूप में होता है, खाने-पीने के

लिए इसकी छोटी-छोटी भेलियाँ भी बनाई जाती हैं। भेलियों को मगही में 'अदरखी' भी कहते हैं; क्योंकि इनमें स्वाद के लिए प्राय: अदरक मिलाई जाती है।

गुरचलना—(सं०) अन्न साफ करने की चलनी (उ०-पू० मैं०)। दे०—चलना। [गुर+चलना]

गुरदम—(सं०) ऊख के उबाले हुए रस को ठंडा करने के लिए लकड़ी या लोहे की बनी चम्मच (शाहा०)। दे०—ताकिया। [गुर+दम < *दाढ]

गुरदम—(सं०) लकड़ी की बनी छोलनी, जिससे ऊख का रस या गुड़ चलाया जाता है (शा०-१)। पर्या०—गुरदम। [गुर +दम < *गुड (?)]

गुरदम

गुरदेल—(सं०) धनुष के आकार की बनी चीज, जिसकी प्रत्यंचा दो रस्सियों की बनी रहती है और बीच में दोनों रस्सियों को थोड़ी दूर तक एक-दूसरे में बुनकर एक स्थान बनाया जाता है, ताकि उस पर गोली रखी जा सके। यह खेतों से चिड़ियाँ आदि भगाने और मारने के काम में आता है। इसकी गोली मिट्टी की बनी होती है (चंपा०-१, भाग०-१, मैं०-२)। पर्या०—गुलेल। [देशी, दे०—गुलेल]

गुरधवल—(वि०) फल का पकना शुरू होना और मीठा होना (शाहा०-१)। [गुरधव+ल (प्र०) < गुरुधावन, गुरुध्यान, गुरुधाई, गुरुधान (?)]

गुरपोर—(सं०) मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें जम जाने के बाद गुड़ रखा जाता है (मैं०)। दे०—माट। [गुर+पोर < गुड+पात्र (?)]

गुरमिखा—(सं०) एक प्रकार का परवल, जो गोल और मीठा होता है (चंपा०-१)। [गुरमि +खा (प्र०) < गुर्मी (देशी०)]

गुरला—(सं०) करीब एक हाथ लंबा, खास कर इमली की लकड़ी का बना टुकड़ा, जो हेंगुल (आरा) के बीच में दोनों कनखियों के बीच में लगा रहता है। इसके बिना हेंगुल नहीं चल सकती है। घुरकिल्ली (शा०-१)। [देशी]

गुरहंडी—(सं०) गुड़ रखने का माट (द० भाग०)। दे० -होर। [गुर+हंडी < गुड़ +हंड (क)]

गुरही—(सं०)—(१) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुड़ या गुर < गुड] (२) फसल के बोझों को बाँधने के लिए किसी घास की ऐंठी हुई रस्सी (शाहा०)। [गुर+ही < *गुण]

गुरीच—(सं०) एक प्रकार की लता, जिससे औषध बनाया जाता है। [गुडूची]

गुरुच—(सं०) दे०—गुरीच।

गुरुही—(सं०)—(भाग० द)। दे०—गुरही।

गुलआफरि—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [गुल + आफरि (फ़ा०)]

गुलजामु—(सं०) एक प्रकार का फल (दर०-१)। [गुल + जामु < गुल (फ़ा०) + जामु < जम्बुन = जंबू]

गुलजामुन—(सं०)-(१) एक प्रकार के फल का वृक्ष। इसका फल गोल और मीठा होता है (पट०-१)। (२) जामुन का एक भेद, जिसका फल अपेक्षाकृत बड़ा, रसदार और मीठा होताहै (मिला०—कठजामुन)। (३) एक प्रकार की मिठाई। [गुल, गुलाब (फ़ा०) + जामुन < *जम्बु]

गुलदाऊदी—(सं०) एक प्रकार का फूल, जिसका पौधा छोटा तथा फूल गुच्छेदार होता है (मग०-५)।

गुलदावरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [गुल + दावरी (फ़ा०)]

गुलफा—(सं०) एक प्रकार का साग (मैं०-२)। [देशी, मिला०—गुल्फ]

गुलमिरिच, गोलमरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध गोल, काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च। दे०—मिरिच। [गुल+मिरिच < *गोल + मरीच]

गुलाईंची—(सं०) एक प्रकार का फूल। दे०—गुलैंची। [गुल + चीन (फ़ा०)]

गुलाब—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो लाल और गुलाबी रंग का होता है। फूल के गुच्छ में और

पौधों में काँटे होते हैं। [गुलाब (हि०), गुलाब (बं०) (फा०)]

गुलाब मखमल—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [गुलाब+मखमल]

गुलाबी—(सं०) गुलाबी रंग। (वि०) गुलाबी रंग की वस्तु।

गुलाबी पोई—(सं०) एक प्रकार की लता। इसका पत्ता लाल रंग का होता है तथा इसका साग बनता है (पट०-१)। [गुलाबी+पोई]

गुलेल—(सं०)—(१) दे०—गुरदेल। (२) दो रस्सियों के योग से बनी हुई वस्तु, जिसपर ढेला रखकर फेंका जाता है (द० भाग०, द० मुं०, मग०-५, बे०-२, चंपा०)। दे०—ढेलवास। [देशी, (संभ०)—गुल्ल+पल्ल < गल्ल < *गुलिक = (ढेला, छोटा टुकड़ा, गोली) पल्ल < √क्षिप् (फेंकना), गल्लवाहू (देशी०) = ऊपर फेंकना, गल्लुच्छ (देशी) = घुमाया हुआ (पा०स०म०), गुलेल, गुलैल (हि०), गुलेलि (बं०), गोलेला (गुज०), गुलेल, गलेला (मं०), गलोलि, गलोली (सि०) < *गोल+ढेल्ल (?) अथवा गं, लू के साथ उच्चार, या गुलूले (फा०) या गोलों से प्रभावित—(मैथा०)]

गुलेली—(सं०) धनुष-जैसी बनी हुई वस्तु, जिसमें दो प्रत्यंचा समानान्तर रूप में लगी रहती हैं और दोनों के बीच में थोड़ा-सा सूत से बुना रहता है, जिसपर मिट्टी की छोटी गोली रखकर चलाया जाता है (द० मुं०, द० भाग०)। [देशी, (संभ०), गुल्ल+पत्ती < गुलिक < √क्षिप्]

गुलैंच—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर०-१)। [गुल+ऐंच < गुलचाँन (फा०)]

गुल्लरि—(सं०) एक प्रकार का फल, गूलर (दर०-१, बे०-२)। [गुल्लर < गूलर]

गुल्ला, गुल्ली—(सं०)—(१) ऊख आदि का उतना बड़ा टुकड़ा, जो मुँह में चूसने के लिए लिया जाता है। (द० मुं०, भाग-१, चंपा०, छाप०)। (२) ऊख के दो पोरों के बीच का भाग (मग०-५)। [< *गुलिक (संस्कृ०), < *गुल्ल (संस्कृ०) > गुल्ल (प्रा०)]

गुल्ली—(सं०)—(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिससे कुएँ में लटकनेवाली रस्सी में मोट बाँधा जाता है। दे०—किल्ली। (२)—(शाहा०)। दे०—गेंड़ा। (३) धुरे में आर-पार लगी हुई कट्टी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। दे०—किल्ली। (४)—(पट०)। दे०—खूँटा। [देशी, मिला०—गुलिक] (५) दे०—गुल्ला, गुल्ली। (६) बच्चों के 'गुल्ली-डंडा' खेल में प्रयुक्त होनेवाला ३ इंच का लकड़ी का टुकड़ा, जिसे वे डंडे से मार कर फेंकते हैं। [दे०—गुल्ला]

गुल्ली, गुल्ला—(सं०)। दे०—गुल्ला, गुल्ली।

गुहौरि—(सं०)—(१) एक कली-विशेष (चंपा०-१, दर०-१)। (२) आँख की एक बीमारी, जिसमें आँख के कोनों पर फुन्सी हो जाया करती है। [देशी, < *घ्राणपुटी]

गूँड़ा—(सं०)—(गया, मग०-५)। दे०—गुंडा। [< गुण्ड, < *गुण्डक = धूलि, चूर्ण]

गूँड़ी—(सं०)—(चंपा०, द०-पु० बिहा०)। दे०—गुड़ी और पंखी। [गुंड+ई < *गुण्डक]

गूदरी—(सं०) खेतों से निकालने के बाद सन के रेशों से बना गया छोटा-छोटा बंडल (द०-पु० बे०, मग०-५)। पर्या०—गुदर (प०, प० बं०), गुदारी—द०-पु० बं०), गुदर, गुदरी (पु०बं०)। [देशी]

गूमा—(सं०)—(१) एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा, जिसके फल के ऊपर उजला फूल रहता है (चंपा०-१)। पर्या०—गुम्मा (भाग०-१)। (२) नमी के कारण विकृत अन्न, जिसमें एक प्रकार की सड़ी-जैसी गंध और बुरा स्वाद आ जाता है (मग०-५)। [देशी, मिला०—गुमसा]

गूर, गुर (सं०)—ऊख के रस से तैयार किया गया दानेदार ठोस मीठा पदार्थ। पर्या०—गुड़, गूड़। [< *गुड (संस्कृ०), गुड, गुड़ (प्रा०), गुड़, गुड़ (हि०), गुड़ (बं०), गुल (मरा०), गुड़ (उ० औ०), गुड़ (सि०), गोल (गु०), गोर (काश्मी०)]

गूरुर—(सं०) दे०—गूलरि।

गूलरि—(सं०) एक प्रसिद्ध फल, जिसमें सैकड़ों बीज होते हैं और पकने के साथ-साथ कीड़े

भी होते हैं। फलने की तरकारी भी होती है। पर्या०—गुल्लर, गूलर, दुम्मर (भाग-१)। [गूलर (संस्कृ०), गूलर (हि०), गल्लर (बं०), गुल्लर (उ०), गूलर, गुलेर, गुल्लरी (गु०)]

गेंठा—(सं०)—(१) पशुओं के बाँधने की रस्सी (द० भाग०)। दे०—पगहा। (२) बोरों के बाँधने की गुंडीदार रस्सी (मुं०-१)। [< ग्रंथिक, < ग्रंथक]

गेंठी—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१)। [देशी]

गेंड़—(सं०)—(१) ऊख के ऊपर का पत्तियों-सहित भाग (द०-प० शाहा०)। (२) चारे के लिए काटा गया ऊपर का हरा भाग (चंपा०-शाहा०)। दे०—अगेंड़। (३) चीनी मिल में डाले जाने के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (हरि०)। पर्या०—गेंड़ा, पगाह (गी०)। [< *अग्निक < *अग्रकांड, गंड (संस्कृ०) = जोड़, गंड (पा०) = डंठल, गेंड (प्रा०) = ऊख का पोर, गेंड़ा (हि०), गन्ना (हि०, बं०) = ऊख, गनेरी (सि०) = ज्वार की मीठी डंठी]

गेंड़खौंचा—(सं०)—(शाहा०)। दे०—अगेंखौंहा। [गेंड़+खौंचा < अग्निक या अग्रकांड+खोंचा, खिलाना (हि०) < खादपयान]

गेंड़ल—(क्रि०)—(१) घेरना, पानी आदि को रोकने के लिए बाँध बाँधना। (२) किसी स्थान या वस्तु की सुरक्षा के लिए घेरना। [गेंड़+ल (प्र०) < गेंड़ < *गंड, खंड]

गेंड़बहिया—(सं०)—(द०-प०)। दे०—अगेंखौंहा। [गेंड़+बहिया < *अग्निक < *गंड, < अग्रकांड+बहिया (देशी)]

गेंड़बाही—(सं०)—(१) धान की खेती में मेड़ के टूटने पर उसकी पुनः मरम्मत करने की प्रक्रिया (मग० ५)। (२) ऊख को काटने और उसकी पत्तियों को छीलने की प्रक्रिया (चंपा०)।

गेंड़ा करना—(क्रि०) ऊख का टुकड़ा करना (द०-प०)। दे०—छोलना। [गेंड़ा+कर+ना (प्र०) < *अग्निक, < *अग्रकांड+करण, करना (हि०) < √कृ]

गेंड़ा, गेंड़ी—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (प०)। पर्या०—गेंड़ी (चंपा०), टोना, टोनी (पु०, मग०-५), गुल्ली (शाहा०, मग०-५), पोंहुआ (पट०, भाग०-५, दर०-१), पौहुन (दर०, भाग०, मग०-१)। [< *खंड, गंड, < *अग्निक, < अग्रकांड, < *ग्रंथि]—

गेंड़ारी—(सं०)—(गया)। दे०—गिड़ारी। [गेंड़+आरी < *खंड, < गंड]

गेंड़ुआवल—(क्रि०) गेंड़ुआ क्रि० का प्रे०। गेंड़ुवाना, घेरवाना। दे०—गेंड़ल।

गेंड़िकाठा—(सं०)—(प०)। दे०—काठु। [गेंड़+काठा < *खंड, < *ग्रंथि, < अग्निक, < *कांड, काठा < काठल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृत्]

गेंड़िवार—(सं०)—(१) कोल्हू के लिए ऊख के टुकड़े करने का घर या स्थान। पर्या०—गेंड़िवारी (प०), टोनिवारी (पु०), टोनिवारी (द०-प० बं०), टोनसार (द० भाग०)। (२) दे०—गेंड़िवारी (१)। [गेंड़+इवार < *कांड, < *ग्रंथि, < *खंड, < *अग्निक, < *गंड]।

गेंड़िवारी—(सं०) (१)—(प०)। दे०—गेंड़िवार। (२) ऊख काटने (टोना करने) के पहले उसे रखने के लिए बना हुआ गड्ढा। पर्या०—गेंड़िवार (प०)। [गेंड़+इवार+ई < *खंड, ग्रंथि, कांड, इयारी (प्र०) < केदार]

गेंड़ी, गेंड़ा—(सं०)—(१)—(प०, बिहा०, हरि०)। दे०—गेंड़ा। (२) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ियाँ। आजकल लोहे के कोल्हू होने पर समूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है, न कि काटकर (प०, पु०बं०, चंपा०, मग०-५, बे०-२, छाप०)। पर्या०—टोनी (पट०, गया, पु०), अंगारी (द०-प० शाहा०)। (३) चीनी-मिल में डालने के लिए काटी गई ऊख की टुकड़ियाँ (गी०, बिहा०, हरि०)। [गेंड़+ई < *खंड, < *कांड, < *ग्रंथि, गंड]

गेंड़ुआवा—(सं०) कुएँ की दीवाल को बनाने के लिए प्रयुक्त वह ईंट, जिसका एक भाग छोटा और दूसरा चौड़ा होता है (चंपा०, मग०-५, बे०-५)। दे०—कुरअमुर्गा।

गेंड़ुआवा

[देशी, मिला०—गेंड, गंट]

गेंढ़ा—(सं०) दे०—गैंडा।

गेंधारी—(सं०) हरे रंग का एक साग (पट०-१)। पर्या०—गेन्हारी, गेन्हरी (चौक०), गेन्हारि (मै०-३, भाग०-२, मग०-६)। [देशी, (संग०)< *गंध]

गेंहिड़—(सं०) मवेशियों का समूह [गेंहिड़ < *ग्रन्थि या ग्रहण्यु (संस्कृ०), गेण्हइय्यु (प्रा०)]

गेंहिड़वाला—(सं०) घूम-घूम कर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (द० मुं०)। दे०—फेरहा। [गेंहिड़ + वाला(प्र०), गेंहिड़ < ग्रन्थि या ग्रहण्यु (संस्कृ०), गेण्हइय्यु (प्रा०), मिला०—गेंहड़ी, गेंढ़ी (बिहा०) = चरवाहों का गुट]

गेटकीपर—(सं०) चीनी-मिल का दरबान (बिहा०) [गेट + कीपर (अं०)]

गेटकेन—(सं०) वह ऊख, जिसकी तौल मिल के अंदर होती है। [गेट + केन (अं०)]। टि०—चीनी-मिल में दो प्रकार से ऊख लाये जाते हैं। एक तो स्थानीय किसान बैलगाड़ियों या ट्रकों पर लादकर मिल में ऊख पहुँचा देते हैं। दूसरा वह, जो दूरस्थ स्थानों से रेलगाड़ियों के द्वारा आता है। किसानों द्वारा लाया गया ऊख मिल में तौला जाता है, उसे 'गेटकेन' कहते हैं और दूरस्थ स्थानों से लाये जानेवाले ऊख के लिए स्थान-स्थान पर मिल की ओर से तौलने और वहाँ से मिल में भेजने की व्यवस्था रहती है, उसे 'आउटकेन' कहते हैं (बिहा०, री०, हरि०)।

गेटपास—(सं०) चीनी-मिल के अंदर प्रवेश करने या अंदर से कोई वस्तु बाहर लाने का अनुमति-पत्र (बिहा०, री०, हरि०)। [गेट + पास (अं०)]

गेटबाबू—(सं०) चीनी-मिल के द्वार पर नियुक्त कर्मचारी, जो मजदूरों के आने-जाने के समय का लेखा-जोखा रखता है और उनकी उपस्थिति लिया करता है (बिहा०, री०, हरि०)। पर्या०—हाजिरी बाबू (चौक०)। [गेट (अं०) + बाबू (हि०)]

गेठिया—(सं०)—(१) दे०—खाका। (२) चीनी (बुरती) का बाँधा हुआ बड़ा बंडल।

गेड़हरवा—(सं०) अनाज के खेत में उगनेवाली एक प्रकार की घास (द०-प०)। पर्या०—गड़रो (उ० मै०), गेंड़रो (भाग०-३)। [देशी, मिला०—गवेधुक]

गेंड़हो, गेंढ़ी—(सं०) गाँव भर के ढोरों को चरानेवाले चरवाहों का समूह (मुं०-१)। [देशी, मिला० = ग्रंथि]

गेंड़ी—(सं०) ऊख का छोटा टुकड़ा (चंपा०-१, मै०-२)। [< *अगेरी, < *कांड, < *खंड, ग्रंथि]

गेड़ियार—(सं०)-(पु०)। दे०—गँड़िवारी। [गंड़ + इयार, < *अगेरी, < *कांड, < *खंड, < *ग्रंथि]

गेड़ुआ—(सं०)-(१) केले के पौधों के छिलके (बकला) में गूँथे हुए फूल की माला (चंपा०-१)। (२) विवाह के समय कन्या और वर तथा उनके माँ-बाप के ललाट में बाँधा जानेवाला छोटा मौर। पर्या०—पटमौरी (भाग०-५), पटमउर (अन्यत्र)। (३) झारी [देशी]

गेड़ुरो—(सं०)—(भाग०-५)। दे०—गेड़हरवा।

गेढ़ी—(सं०)। दे०—गेंड़हो।

गेनहारि—(सं०)—(दर०-१)। दे०—गेन्हारी।

गेना—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल, जो पीले या नारंगी रंग का होता है। इसके कई प्रकार होते हैं—इकहरा, दोहरा, हजारा। पर्या०—गेंदा। [गेंदा (हि०), मिला०—गेंदुक, तेलु०—बंति०]

गेन्हरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध साग, जिसकी तरकारी होती है (चौक०, चंपा०)। पर्या०—गेनहारि, गेन्हारी (पू० मै०, मग०-४, मै०-५, भाग०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्कृ०) = एक प्रकार का पौधा]

गेन्हारी—(सं०)-(पू० मै०, मै०-५, भाग०-४, भाग०-१)। दे०—गेन्हरी। पर्या०—गेनहारि (दर०-१)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (संस्कृ०)]

गेरू—(सं०)-(१) लाल मिट्टी (सं० क्र०)। दे०—ललकी मिट्टी। (२) हलके लाल रंग की पहाड़ी मिट्टी, जिससे मकान और दूसरी चीजें रँगी जाती हैं। साधु-सन्यासियों का कपड़ा भी इसी रंग में रँगा जाता है। [< *गैरिक, गेरुक

गेरुआ (पा०), गेरुया, गेरुआ (प्रा०), गेरु (काश्मी०), गेरु (कुमा०), गेरू (नै०), गेरू (हि०), गेरी, गेरु (पं०), गेरेड़ माटी (बंग०), गेरी (बं०), गेरु (ओ०), गरु (गु०), गेरु मरा०]

गेरवा—(सं०)—(१) ऊख की जड़ को काटनेवाला एक कीड़ा (म०)। [देशी, मिला०—गैरिक] (२) रोपे जानेवाले छोटे पेड़ों की जड़ में मिट्टी की पिंड रखने के लिए चारों ओर लपटाई गई रस्सी (द०-प० मै०)। दे०—पोंजर। (३) दे०—गेरुआ। [गेरुवा (बिहा०), गेरुआ (हि०)]

गेरुई—(सं०) फसल में पैदा होनेवाला एक रोग, जिससे पौधा सूखकर लाल और भूरा रंग का हो जाता है। यह रोग जाड़े में तथा वर्षा अथवा पुरवैया हवा के कारण अधिक होता है (उ०, द०-प०, चंपा०)।—"नीचे ओद ऊपर बदराई; घाघ कहें गेरुई अब धाई।" —(घाघ) = नीचे जमीन भीगी हो और ऊपर बादल छाये हों, तो घाघ कहते हैं कि उस समय फसल में गेरुई कीड़ा लगेगा। [देशी, मिला०—गैरिक]

गोलभंटा—(सं०) बैंगन का एक भेद, जो गोल होता है (द० मुं०)। दे०—बैंगन। पर्या०—गोलभंटा (भाग०-५)। [गोल + भंटा < गोल + भंटा]

गोलभंटा

गेलइनी—(सं०) कपास वालों का बना एक तरह का हल, जो गोल की खेती में काम आता है (छा०)। दे०—पचलटिया। [देशी]

गेल्हा—(सं०)—(१) ऊख के पौधे की जड़ से निकलनेवाला नया पौधा (चंपा०-१, हरि०)। पर्या०—गोभी (री०), पलवा, खूँटी (बिहा०, मै०-२)। (२) एक प्रकार का घास, जो कपड़ा बुनने या कागज को चिकना करने के काम में आता है (चंपा०-१, भाग०-५)। पर्या०—गेल्ही (मै०-२)। [देशी]

गेल्ही—(सं०) दे०—गेल्हा।

गेहुँआँ—(सं०) एक प्रकार का कनेर, जिसके एक फूल में दो दाने लगे होते हैं। [गेहूँ + आँ < गेहूँ]

गेहुमा—(सं०) एक प्रकार का मदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूँजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा और पौधे के ऊपर अधखिले कमल-जैसा अन्न का गुच्छा होता है (गा०)। दे०—जनेर। [गेहुँम + आ (प्र०), गेहुम, गहुम (बिहा०), गेहूँ (हि०) < *गोधूमक]

गेहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पौष्टिक या रबी होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (ग० उ०, आज०)। पर्या०—गहुम (पू० बिहा०), गोहूँ (पं०), गोहुम (ग० उ०, उ०-पू० मै०) अंदा गया)। [गोधूम (संस्कृ०), गोहुम (प्रा०), गेहूँ (हि०), गंदुम (फा०), गिव (डोगा०), गिहू (काश०), गोम, गोमु (बर०), गहूँ (म० बहा०), गिऊँह (कुमा०), गोम (बं०) गहम (ओ०), गेहूँ (सि०), गहूँ (गु०), घउँ (गु०), गहूँ (मरा०), गोधम (सिंहा०)]

गैंची—(सं०) दे०—गोंइछी।

गैंता—(सं०)-(१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी बाहर करने का पात्र (सं० उ०, कहीं-कहीं, भाग०-५)। दे०—कलना। (२) दे०—गाता। (३) कड़ी मिट्टी खोदने के लिए लोहे का बना लंबा नोकीला फावड़ा। [देशी, मिला०—*खनित्र > खंता]

गैंता

गैपरा—(सं०) गौओं के रहने का मकान (उ०-पू० मै०)। दे०—गौशाल। [गै + परा < *गोगृह]

गैना—(वि०) छोटा (बौना) बैल (पट०-४, भाग०-५)। दे०—नाटा। [देशी]

गैबार—(सं०) गाय चरानेवाला, चरवाहा (दर०-१), पर्या०—गैवरवाहा (मै०-२), गैबार (चंपा०), चौर (द० भाग०)। [गै + वार (प्र०) < गो + वार < वृ] (संस्कृ०)]

गैया—(सं०) दे०—गाय।

गैरमजरूआ खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर जमींदार का अधिकार रहता है, लेकिन उसके व्यवहार करने का अधिकार सभी असामियों का

का होता है। जैसे—रास्ता, ऊसर आदि। [गैर + मजरूआ + आम (फ़ा०)]

गैरमजरूआ खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर मालिक (जमींदार) का अधिकार रहता है। [गैर + मजरूआ < खास (फ़ा०)]

गैरमौरूसी—(सं०) वह काश्तकारी जमीन, जिसपर मौरूसी हक नहीं मिला हो। पर्या०—बाही (पट०, गया), खरिदगी (शाहा०), हाल कपारजित(उ०-मु०मं०)। [गैर + मौरूसी (फ़ा०)]

गैवरवाहा—(सं०)-(मं०-२)। दे०—गैवार। [गैवर + वाहा ; मिला० - गैवार]

गैवार—(सं०)—(चंपा०) दे०—गैवाह।

गैवाह—(सं०) बैलों को चरानेवाला मनुष्य (उ०-मु० मं०)। दे०—चरवाह। [गै + वाह (प्रा०), गो + वाह < वह (संस्कृ०)]

गोंइजी - (सं०) एक प्रकार की मछली, जिसका मुँह और पूँछ पतली होती है (शाहा०-१)। पर्या०—गइँची (पट०-४, चंपा०, भाग०-५), गइँचा (चंपा०, मं०-२), गैंची (भाग०)। [देशी, मिला०—गंडक]

गोंगरा—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की तरकारी। यह हरे रंग और लंबे आकार की होती है। (पट०-१)। पर्या०-परोर, नेनुआ, घोड़ई, तोरई, चिचड़ा (चंपा०, भाग०-५, पट०-४)। [देशी, महाकोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), नेनुआ, बड़ी तोरई, घिया तोरई, घिउरा, घेवरा (हि०), हस्तिघोषा, धुंधुल (बं०) घोसाली, घोसाला (मरा०), घीसोंडा (गु०), तुप्पिरी (क०), ताड़ि (को०)]

गोंची—(सं०)-(द० भाग०, पट०-४)। दे०—कोंचा। [मिला०—गोंजी = मंजीर(पा०श०म०)]

गोंड़ी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना हुआ और धूप में सुखाकर तैयार हुआ लंबा नाद (द० मुं०, भाग०-५)। दे०—चरन। [देशी, मिला०—गोधू, गोन्द्री (संस्कृ०) = मोरा, एक प्रकार की घास]

गोंड़—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। दे०—गोएँड़ा। [गों + ड़ < ग्राम + आद्य या गो < गृह < *गृध]

गोंड़ा—(सं०)। दे०—गोंड़।

गोंत—(सं०) गाय का पेशाब (चंपा०-१, मं०-२)। [गों + मोत < ऊँत < मूँत < मुत्त < मूत्र, गोमूत्र (संस्कृ०), < गोमुत्त (प्रा०)]

गोंदौरा—(सं०)—(पु०)। दे०—खादर। [देशी, संभ०—गों + दौरा < *गोमय + दौरा]

गोआ—(सं०)-(१)—(पु०)। दे०—खादर। [गोमय* > गोअय > गोआ] (२) खाड़ी का मोटा अंतिम छोर (द० मुं०)। दे०—कुर। [देशी, मिला०—गुल्फ (संस्कृ०), गों फ (प्रा०)] (३)—(उ०-प० मं०)। दे०—खादर। [< *गोमय]

गोआ पटा कोल—(मुहा०) अन्न के बोने पर सिंचाई किये बिना ही उसके बीज पर खाद (सड़ी पत्ती, घास आदि) देना (उ०-प० मं०)। दे०—खदियाकोल। [गोआ + पटा + आकोल (प्रा०)]

गोआम—(सं०)-(१) नदी, नहर आदि में बाँध बाँधने के लिए लगाये गये मनुष्य (पट०, गया, भाग०-५, पट०-४)। पर्या०—गोआम (भाग०-५)। (२) काश्तकारी के अतिरिक्त किसानों द्वारा जमींदारों को समर्पित श्रम-सेवा (पट०, गया, द० मुं०)। पर्या०—गोहार। [देशी]

गोआस—(सं०) मवेशियों के रहने का स्थान, गोष्ठ (उ०-मु० मं०, चंपा०)। दे०—बथान। [देशी, मिला०—गो + आस < गो + आवास < ✓वस् या वास]

गोइठा—(सं०) दे०—गोरहा।

गोएँड़—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि, जिसमें गाँव की गंदगी, सड़ी-गली खाद आदि पानी के बहाव के साथ आया करती है। पर्या०—गोएँड़ा, गोंड़ा, गोंड़, बाध, कोइरार, कोदार (पट०, प०), डिहवार (शाहा०, पट०, गया), घरबारी (पट०, द० मुं०), बाड़ी (द० भाग०)। [मिला० —गोंड़]

गोएँड़ा—(सं०)। दे०—गोएँड़। [मिला०—गोंड़]

गोकुलफूल—(सं०) रोग लानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। [गोकुल + फूल < गोकुल + पुल्ल (?)]

गोकुलसार—(सं०) रोग लानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। [गोकुल + सार < *गोकुलशालि]

गोखुला—(सं०)-(१) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक काँटेदार घास (प० मं०, पट०, गया, द० मुं०, पट०-४, भाग०, मं०-२, चंपा०)। पर्या०—गोरखुल। (२) ऊसर या परती जमीन में होनेवाली और जमीन पर फैलने वाली एक काँटेदार घास, जिसकी फलियों पर टेढ़े काँटे होते हैं। [< *गोक्षुरक]

गोचर—(सं०) चरागाह।

गोचारि—(सं०) सुरक्षित चरागाह (चर०-१)। [गो + चारि < *गोचर]

गोछी—(सं०) धान की पहली रोपनी के समय में कीड़े-मकोड़ों से धान की रक्षा करनेवाले देवता की मदिरा, दूध, पूआ और तेल से पूजने की एक रीति (द० भाग०)। [देशी]

गोजइ—(सं०) गेहूँ और जौ की मिली हुई फसल; गेहूँ-जौ आदि मिला हुआ अनाज (पट०-१, चंपा०, भाग०-५, शाह०)। [गो + जइ < गोहूम + जई < *गोधूम + यव]

गोजी—(सं०) पतली लाठी (चंपा०-१) [गो + ज + ई (प्र०), < *गो + अज < ✓अज्]

गोट—(सं०)-(१) पीले या काले-नीले वर्ण का गोल दानेवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (पु० मं०, चर०-१)। दे०—सरसों। (२) व्यक्ति, वस्तु, खंड। [देशी, मिला०—गुटिका (संस्कृ०) = गोटी, गोल (हि०, पं०) = टुकड़ा; गोटी, गोटा (हि०) = कपड़े पर लगाई जानेवाली सुनहली या रुपहली वस्तु, किनारी। गोट्टा (पं०), गोटी (बं०) = टुकड़ा, गोटा (मं०) = प्रतिवस्तु; गोटा (बं०) = समिचलन गोट (असा०) = परिमाण, इकाई, गोटा (ओ०) = एक, गोट्टु (सि०) तंबाकू का गोला; गोटी (गु०) चाँदी का गोला, गोटी (मरा०) गोल पत्थर]

गोट, गोटा—(सं०) मकई के भुट्टे में से निकला हुआ अनाज। [देशी, मिला० — गुटिका]

गोटा—(सं०)—(१) गोल (द० भाग०)। दे०—बीया। (२) दे०—गोट। (३) दे०—गोट—२। (४) साड़ी में लगाई जानेवाली एक प्रकार की किनारी। [देशी, मिला० —गुटिका]

गोटापल—(वि०) मकई, जनेर आदि फसल की बाल का पुष्ट (अन्न के रूप में) होना (शा०, द० मं०, चंपा०, भाग०-५, पट०-४)। दे०—हुकवाउल। [गोटा + आपल (प्र०) < आप्, (संस्कृ० भा० धा० प्र०), गोटा < *गुटिका]

गोटी—(सं०)—(१) अफीम की टिकिया। (२) नील की टिकिया। (३) मिट्टी, पत्थर या लकड़ी आदि का छोटा गोल टुकड़ा, जिससे बच्चे गोटी का खेल खेलते हैं। गोटी देखोल—(मुहा०) = पंचायत के बँटवारे में गोटी से निर्णय करना (भाग -५)। —गोटी बैठावल (मुहा० चंपा०-१) दे०—गोटी देखोल। अपना काम बनाना। [< *गुटिका]

गोटीघर—(सं०) नील की टिकिया सुखाने का घर। [गोटी + घर—मिला० - गुटिकागृह]

गोटी देखोल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी बैठावल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी—(सं०)—(१) पीले या काले-नीले वर्ण का गोल दानेवाला तेलहन, जिससे कड़ुआ तेल निकलता है (द० भाग०)। दे० —सरसों। (२) दे०—गोट-२। [मिला० —गुटिका]

गोठचर—(सं०) दे०—गोठौर।

गोठकुल—(सं०) गोयठों के रखने का घर। [< गोष्ठ + कुल]

गोठी—(सं०) पाथ की हुई सई या ढेर। [< गोष्ठी, गोष्ठ]

गोठौर—(सं०) गोयठों का ढेर (भाग०-५, भाग०-१)। [गोठ + औरा, गोठ < गोइठा, < गोविष्ठा, (१); उर < पूर या कुल]

गोड़—(सं०) मनुष्य, मवेशी या किसी जन्तु का पैर। [गोड़ < *गोड्ड (प्रा०), गूड़ (रोमा०), गोड़ो (नें०, कुमा०), गोर (असा०) = पैर का तला, गोड़ (बं०), गोड़र (ओ०), गोड़ा गिड़ा (ओ०) = घुटना। गोड़ (हि०), गोड़ा (पं०) = घुटने। गोडा (म०), गोडो (सि०)]

गोड़पौढ़ा—(सं०) कुएँ के आर-पार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिस पर खड़ा होकर पानी निकाला जाता है (द०-प०मं०)। पर्या०—

पीड़ा पट०-४) । दे०—पनिगाड़ा । [गोड़+पीड़ा< प्रोढ़ (संस्कृ०), पेट्टु (प्रा०) =बैठ, मूल । गोड़< *गोड्डु (प्रा०)]

गोड़पीर—(सं०) मोट खींचनेवाले बैलों के लिए कुएँ के पास बना हुआ ढालू मार्ग (बु० मुं०) । दे०—पीढ़र । [गोड़+पीर, पीर < पीढ़ी< पल्योंडी < *प्रतोली]

गोड़पीर

गोड़हरा—(सं०) एक वनस्पति-विशेष । इसके कई पैर होते हैं (शाहा०-१, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५) । [गोड़+री (प्र०) < गोड़< *गोड्डु (प्रा०)]

गोड़ना—(क्रि०)—(१) चरते हुए पशुओं को इकट्ठा करना (चंपा०-१) । (२) भूमि को कुदाल या खुरपी आदि से कोड़ना । [गोड़+ना (प्र०) मिला०—गोड़< √गुड़ (अवयवे=खोदना) या √गुड्, √गुण्ड (=ढकना=घेरना), गोड़ना, गोड़ाना (हि०), गोड़णु (सि०)=खोदना, घासपात निकालना, खेत आदि को साफ करना । गोड़ावणु (सं०)= खोदना, गोड्डी (पं०, सि०), गड्डणा (सं०), गोड़डुं (गु०)]

गोड़ा—(सं०)—(१) वह आधार, जिसपर अन्नागार (कोठी, बखारी आदि) अवस्थित रहता है । पर्या०—बेसना (द०-पू० बं०), बैसक (पू० बं०, द० मुं०), ठूहा (पट०), ओटा (शाहा०) । (२) गोड़ानी के फलक का नुकीला भाग, जो मेंट के अंदर रहता है (पं०-उ०-म०) । दे०—खूटा । (३) बरतन के नीचे लगा छोटा आधार । (४) किवाड़ के नीचे लगा लकड़ी का मोटा टुकड़ा । (५) व्यक्ति या कोई एक वस्तु । दे०—गोट-२ [गोड़+आ< गोड़ (देशी) < *गोड्डु (प्रा०)] ।

गोड़ाइत—(सं०)—(१) गाँव में पहरा देनेवाला चुनाव । (२) जमींदारी में काम करनेवाला निम्न स्तर का नौकर, जो समय पर गाँव के लोगों को इकट्ठा होने की सूचना दिया करता है । [देशी]

गोड़ानी—(सं०)-(१) पशुओं का भागना रोकने के लिए उनके अगले दोनों पैरों को बाँधने की रस्सी (द० भाग०) । दे०—गेड़ । पर्या०—छान (पट०-४, मुं०-५, चंपा०) । (२) स्त्रियों या बच्चों के पैरों में पहना जानेवाला चाँदी का बना आभूषण । [गोड़+आनी (प्र०) < गोड्डु (प्रा०)]

गोड़नी

गोंड़ी—(सं०) मिट्टी या पक्की ईंटों का बना हुआ नाद-जैसा स्थान, जिसमें मवेशियों के खाने के लिए चारा रखा जाता है और जिसके दोनों ओर खूँटों में मवेशी बँधे रहते हैं (मुं०-१) । [देशी, मिला०—गोंथी]

गोंड़ी

गोंड़ीलत्ती—(सं०) एक प्रकार की लता (दर०-१), [गोंड़ी+लत्ती (देशी)]

गोड़ैत—(सं०)—(१) गाँव की ओर से नियुक्त गाँव में पहरा देनेवाला व्यक्ति । पर्या०—चौकीदार । (२)दे०—गोड़ाइत । [गोड़+ऐत(प्र०)— जैसे लठ्ठ+ऐत= लठैत । गोड़ = गोड़ना, < खगोड़ना, खगोड़ना (हि०)]

गोड़ैतक मूठ—(सं०) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (उ०-पू० बं०) । दे०—चौकीदारी । [गोड़ैत+क (विभ०)+मूठ]

गोड़ैती—(सं०)—(१) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (द० पू० बं०, चंपा०, पट०-४) । दे०—चौकीदारी । (२)गोड़ाइत को मिलनेवाला पारिश्रमिक । [गोड़ैत+ई]

गोतल—(क्रि०) मवेशियों के खाने के लिए पानी में घास, चारा, खल्ली आदि मिलाना (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, भाग०-१) । [गोत+ल (प्र०); मिला० गोतः (सं०)]

गोथार—(सं०)-(१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (बकावा) पत्ता-चूरा आदि (पट०, गया, द०-पू०, मग०-५, पट०-४) । दे०—खबेर ।

(२) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का डंठल (उ०-प०) । पर्या०—खबेर (प०, उ०-द० बं०), निथास (चंपा०, उ०-पू० बं०) निथेस (द०-पू० बं०), झोटी (सं०-द० चंपा०, [गो+थार (संस्कृ०) < *गो+स्तार]

गोथना—(सं०) एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० बं०) । [गो+थना < गोस्तन (?)]

गोन—(सं०)—(१) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा (शाहा०) । दे०—लादा । कहा०—"बैल न कूदे कूदे गोन, यह तमाशा देखे कौन ।"=बैल नहीं कूदता है; उसकी पीठ पर रखा गोन कूदता है । इस तमाशे को कौन देखे । अर्थात् मनुष्य नहीं, मनुष्य का धनमद उसके सर पर नाचता है । (२) दो रस्सियों को बटकर बनाई गई रस्सी (गया, द०-प०) । दे०—गून । (३) वह पतली मजबूत बँटी हुई रस्सी, जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं । (४) गोंठ । [< *गुण्य, < *गोण्य]

गोन

गोनवजा—(सं०) वह स्थान, जहाँ घर का कूड़ा-करकट, राख, गोबर आदि फेंका जाता है (पू० चंपा०, चंपा०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-५, भाग०-१) । [गोन+वजा, गोन < गोमय । वजा (प्र०) या < आवर्ती, कूट, पूः]

गोनर—(सं०) घर के पास जमा की गई खाद की राशि (पू० मुं०) । दे०—ढेरी । पर्या०—गनौर (पट०-४), गनौरा (भाग०) । लोकोक्ति—'गोखारक गोबर दुहुदिस चिक्कन' (मुं०) =ग्वाला की खाद-राशि दोनों ओर चिकनी होती है । [गोमय, गोमल]

गोनरौरा—(सं०) खाद, कूड़ा (द०-पू० मुं०) । दे०—खाद । [गोनर+औरा < गोमय, गोमल+कूट, आवर्ती, पूः]

गोपालभोग—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया) । [गोपाल+भोग]

गोपी—(सं०)—(१) एक प्रकार की पीली मिट्टी, जो चंदन के काम में लाई जाती है । (२) वह धान, जो चिपटा होकर समय के पूर्व पक जाता है (चंपा० (१) । गोपी (+चन्दन), गोपि-चंदन (सं०)]

गोफा—(सं०)—(१) पौधों की कोंपल (चंपा०-१) । (२) लाठी के हुरे में लगी हुई लोहे की टोपी । [< *गुम्फ या < *गुल्फ]

गोब—(सं०) मरे हुए धान के पौधों के स्थान में दूसरे पौधे की रोपनी (दर०-१) [गोब < गोवल < गोमल्ल < गर्भ]

गोबर—(सं०)—(१) (सा०-१) । दे०—खाद । [< *गोमय, < *गोमल] (२) गाय या भैंस का मल (बिहा०, आम०) । [गोबर< अगोमल; टर्नर के मतानुसार< गोवि: (संस्कृ०), गोवर, गोब्बर (प्रा०), गोबर (मै०, कुमा०, असम०, बं०), गोबौर (ओ०), गोवर (हि०, प०), गोर (गु०) =घोड़े की पूंछ । गोबर (मरा०)=सूखा गोबर]

गोबरचुनवी—(सं०)-(मग०-५, चंपा०, पट०-४) दे०—गोबरबिछनी ।

गोबर पँचे—(सं०) श्रावण बदी पंचमी को शेषनाग की पूजा करने का एक उत्सव (पट०, गया०) । पर्या०-बेहरा पँचे (द० भाग०) नाग-पँचे (मग०-५, पट०-४), सत्पँचे (चंपा०) । टि०—इस दिन स्त्रियाँ गोबर से घरों के चारों ओर रेखा खींचती हैं और दरवाजे के दोनों तरफ चौकोर मंडल तथा साँप के मुँह का आकार बनाती हैं । [गोबर+पँचे< गोमल-पंचमी, गोमल्ल-पञ्चमी]

गोबरबिछनी—(सं०) खेतों या मैदान में मवेशियों के पीछे-पीछे चलकर गोबर बटोरनेवाली स्त्रियाँ (शाहा०-१, चंपा०-२, सन्थाल)। पर्या०—गोबर चुनवी (मग०-५, चंपा०, पट० ४) । [गोबर+बिछनी । बिछनी< बीछल (बिहा०), बिछना (हि०) < √विचि (अवस्कारणे'= स्पष्ट करना, पृथक् करना, अलगाना, पा० अव-विचवित), विचि :—वि+√चि (चंपा०)]

गोबराएल—(वि०)—(१) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी है । दे०—खदीय खेत । (२) मस्ती में आकर पशुओं का आपस में लड़ना-भिड़ना (मग०-५) । [गोबर+आएल (प्र०) < गोमय, गोमल्ल, गोबर-]

गोबरादल—(क्रि०) खेत में गोबर की खाद देना (बर०-१)। [गोबर+आदल (प्र०) <गोमय, गोमल, गोबर]

गोबरौरा—(सं०) धान में लगनेवाला एक रोग (प० मैं०, प०)। [गोबर+औरा (प्र०) <*उत्थ (?)]

गोभल—(क्रि०) फसल के बीज के मरने पर उस स्थान पर पुनः दूसरा बीज रोपना। पर्या०—झोभल (चंपा०), गोभ, झोभनी [गोभ+ल (प्र०) <गोब<गोप<*गर्भ (संस्कृ०), गब्भ, गोब्भ (प्रा०)]

गोभल—(क्रि०) दे०—गोभल।

गोभी—(सं०)—(१) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधों को हानि पहुँचती है (पू० मैं०, पी०)। दे०—गींज। (२) फसल में लगनेवाला एक रोग, जो कोंपल वायु गोभी के प्रभाव से होता है और जिससे पौधों में छोटे-छोटे अंकुर निकल आते हैं, जिस कारण वह कमजोर पड़ जाता है। (३) वह ऊख, जिसमें नया अंकुर निकला हो (भागल, मैं० उ०, मैं०-२, पट०-४, मग०-५)। दे०—गुआरी। (४) एक तरकारी, गोभी। [<*गुम्फ, *<गोजिह्वा]

गोमाश—(सं०)—(मग०-५)। दे०—गोअश।

गोयँठा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ गोलाकार चिपटा या लंबा पिंड, जो धूप में सुखा लिया जाता है (शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, मैं०-२)। पर्या०—चिपरी (भाग०), गोइठा (चंपा०)। [गोयँ+ठा <*गोमय+इष्ट, गो+विष्ठा]

गोयठा—(सं०) दे०—गोहरा, गोयँठा।

गोयँड़ा—(सं०)—(शाहा०-१, चंपा०)। दे०—गोएँड़ा। [गोयँ+ड़ा]

गोरंटी—(सं०) कुछ पीली-उजली मिट्टी (द० भाग०)। दे०—गोरिमट्टा। [गोर+टी< गोर+मिट्टी <*गौरमृत्तिका]

गोरखिया—(सं०)—(१) मवेशी को चरानेवाला मनुष्य (मग०-५)। दे०—चरवाहा। (२) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रखे गये अतिरिक्त बैलों को हाँकनेवाला लड़का। दे०—जनगहू। [गो+रखिया <*गोरक्षक]

गोरखिरवा—(सं०) वह बैल, जो न बहुत लाल हो और न बहुत उजला (पट०-१)। [गोर+खिरवा <गौर+क्षीर (?)]

गोरखुल—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक कांटेदार घास (प०)। दे०—गोखुला। [गोक्षुरक]

गोरचारी—(सं०) पशुओं के खाने से बचा हुआ व्यर्थ घास-भूसा आदि (द० भाग०)। दे०—अधेर। [गोर+चारी< गोरू+चारी< गो+रजार]

गोरतल—(क्रि०) किसी कच्चे फल को पकाने के लिए भूसा, अन्न आदि में इस तरह रखना कि गर्मी के कारण वह पक जाय (चंपा०-१, मैं०-२)। [<√गोर (निगरने=नीचे रखना)]

गोरपौर—(सं०)—(१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह अंश, जिसमें बैल घूमता है (सा०)। पर्या०—पौढ़र (चंपा०, शाहा०), पौर या पैरी (मं० उ०, कहीं-कहीं, पट०, गया, द० भाग०), कही (पट०), बबहरा (द० मुं०)। [गोर+पौर <गो+प्रतोली, गोड़ (पैरों) प्रतोली]। (२) वह स्थान, जहाँ खड़ा होकर पानी पटाने के समय बैल चलाया जाता है। पर्या०—पौवा (प०), खैवार (द० भाग०)। [गोर+पौर]

गोरपौरी—(सं०) ढेंकी के पछुए के नीचे का गड्ढा। पर्या०—गम्भी (द० भाग०, पट०-४, मग०-५)। [गोर+पौरी <गोड़+प्रतोलि, गोड़]

गोरवा—(सं०) वह बैल, जिसका रंग गुंजे की तरह लाल हो (पट०-१)। [गोर+वा <*गौर, <*गोला]

गोरस—(सं०) दूध, दही, घी आदि। [गो+रस <*गोरस (संस्कृ०), गोरस (पा०, प्रा०), गुरस (अदम०), गोरस (हि०), गरोंर, मं० कुमा०), गोरस (असा०, बं०)=दही; गोरस (गु०), गोरस (मरा०)]

गोरा—(सं०)—कालकारी भूमि का एक प्रकार। टि०—इसमें सीमा-निर्धारण के साथ-साथ एक निश्चित कर (राजस्व) लिया जाता है, किंतु

भूमि-परिमाण का निश्चित उल्लेख नहीं मिलता है। सामान्य तौर से मौलिक प्रबंध-पत्र (Original Settlement) में आँकी गई भूमि के अधिक होने पर भी उसके कर में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है। जमींदार की स्वीकृति के बिना खरीदी-बेची जा सकती है। [देशी]

गोरिमट्टा—(सं०) पीली या उजली चिकनी मिट्टी। पर्या०—गोरंटी (द० भाग०)। [गोर+इमट्टा <*गौर+मृत्तिका]

गोरिया—(सं०) ग्वाला-जाति का एक भेद, जो प्रायः गोरे होते हैं। [संभ०—<*गौर या <ग्वाल<ग्वाला <*गोपाल]

गोरी केवाल—(सं०) हल्के रंग की मिट्टी (द०-पू० मं०, मग०-५)। [गोरी+केवाल+ गोरी केवाल]

गोरुआ—(वि०) (१) भूसे आदि में गोरकर या ऊपर से गर्मी पहुँचाकर पकाया हुआ आम आदि फल (मुं०-२, चंपा०-१)। पर्या०—पलुआ (चंपा०-१)। (२) उबाल देने के बाद धूप में आधा सुखाया हुआ धान। [गोर+उआ <गोरल (बिहा०)< √गुर् गोरना (हि०)]

गोरू—(सं०)-(१) बैल को छोड़कर अन्य सभी सींगवाले पालतू मवेशी (दर०-१)। (२) पालतू मवेशी। पर्या०—गायगोरू, पुरखौंगर (पट०, गया)। (३)-(चंपा०)। दे०—गाय। [गो+रू (प्र०)<*गो, <*गोरूप (संस्कृ०), गोरूप (पा०)=बैल, गुरुव, गोरु (गोमा०), गोरू (प० पहा०), गोरू (कुमा०), गोरू (ने०), गोरु (असा०, बं०, औ०), गोरू (हि०, पं०), गोरू (मरा०), गोरिया (बिहा०)=बैल। गोरू (बिहा०)=गाय]

गोरूचारी—(सं०) बैल-गाय को खिलाने का काम (शाहा०)। [गोरू+चारी< गो+रू (प्र०) या <गोरूप+चार+ई (प्र०)]

गोरेटिया पथरौटी—(सं०) बारीक कंकड़ मिली हुई कुछ लाल मिट्टी। [गोरे टिया+पथरौटी< गोर+ऊँटिया+पत्थर+औटी <*गौर+ मृत्तिका+प्रस्तर+वटी]

गोरैया—(सं०) एक कल्पित देवता, जो प्रायः गोहैतों के देवता माने जाते हैं। कहीं-कहीं किसानों के दरवाजों पर भी इनका पिंड बना होता है (पट०-४, भाग०-५, चंपा०)।

गोलंबर—(वि०) गोल-गोल आकार का। [गोलंबर<गोल+अर (प्र०)]

गोलंबर कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका आकार गोल होता है (पट०-१)। [गोलंबर +कदुआ]

गोलंबर लौंवो—(सं०) गोल आकार का नींबू (पट०-१)। [गोलंबर+लौंवो]

गोलंबर—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले कुएँ का खोदा गया बड़ा गोल ढाँचा (गया)। दे०—दबक। [गोलंबर<गोल]

गोल—(सं०)-(१) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (द०-प० शाहा०)। दे०—दबक। [गोल] (२) (वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (दर०-१)। पर्या०—गोला (भाग०)। [<*गौर, (संभ०) <*गोला =(मैनसिल, यह धातु गेरू की तरह लाल होती है)]

गोला—(सं०)-(१) गायों का समूह (गा०-१, भाग०-५)। दे०—ढोर। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग (चंपा०-१, भाग०-५, मैं० २)। (३)-(वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (चंपा०-१)। [गौर, गोला=(मैनसिल)= एक प्रकार की लाल धातु]

गोलकी—(सं०) काली मिर्च (मुं०-१, पट०-४, भाग०-५)। (१)-(वि०) गोल आकार की वस्तु। (२) लाल रंग की गाय आदि। [गोलक+ई <गोलक, मिर्च <मरीच]

गोलगाला—(सं०) ईंट आदि से बाँधने के पहले खोदे गये कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (शाह शाहा०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—दबड़। [गोल+गाला (अनु० शब्द) <गोल]

गोलवा—(वि०)-(१) लाल रंग का पशु (भाग०-५)। दे०—गोल। (२) एक प्रकार का बड़ा साग, गोलिया साग। (भाग०-५)। [गोर, गोला (=मैनसिल)]

गोलमंडा—(सं०) बैगन का एक भेद, जो गोल होता है। दे०—बैगन। [गोल+मंडा< गोल, मंडा (देशी) का< वृन्ताक]

गोलमिरिच, गुलमिरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध तीती गोल काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है; काली मिर्च। दे०—मिरिच। पर्या०—मरीच (दर०-१), मरिच (चंपा०)। [गोल+मिरिच< गोल मरीच]

गोलरी—(सं०) रबी की बाल का पका हुआ टुकड़ा, जो पीटने-झाड़ने पर भी अनाज के अंश के साथ रह जाता है। पर्या०—गोलुआ (भाग०-५)। [देशी]

गोला—(वि०)-(१) पीलापन लिये हुए लाल रंग का मवेशी। दे०—गोल्। [< *गोर< *गोला (मैनसिल=एक लाल रंग की प्रसिद्ध धातु)] (२) (सं०) एक प्रकार की कपास (मुं०)। [गोला=लाल रंग]

गोलाचा—(सं०)-(१) एक प्रकार का साग। इसे कुलफे का साग भी कहते हैं (पट०, गया, सा०, पट०-१)। दे०—खुरसा। (२) खिचड़ी में डाली जानेवाली गोल कोल, जिसकी ऊपर-वाली ढोंठी लमाकार और गोल होती है (पट०-४, भाग०-५)। [देशी]

गोली—(सं०)-(१) गुड़ रखने का बड़ा बरतन, बड़ा कुंडा (मुं०-१)। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग की गाय आदि मादा मवेशी। (३) अन्न आदि रखने के लिए गोलाकार छोटी कोठी पर्या०—जबरा (गया, चंपा०)। [गोल+ई < *गोलक]

गोलौर—(सं०)-(१) ऊख का रस उबालने और गुड़ बनाने का घर (शाहा०)। दे०—गुहौर। [गोल+और< *गुड़+वाट] (२) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान (शाहा०)। दे०—कोलुआर।

गोवार—(सं०) दे—ग्वार।

गोशाला—(सं०)-(१) गौओं के रहने का मकान। दे०—गौसार। (२) गौओं के रहने का सार्वजनिक स्थान, जहाँ अपंग गाय, बैल आदि रखे जाते हैं। पिंजरापोल। [गो+शाला< *गोशाला]

गोहट—(सं०) मेंड़ को कोड़ना या छोलना (चंपा०, सा०-१)। आदि छाँटल (मुहा०) =मेंड़ को छाँटकर ऊपर मिट्टी डालना, मुहा०—गोहटा फेंकना (पट०-४, भाग०-५)। [देशी]

गोहुआ—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०)। [गेहुम+आ (भावु० प्र०) < *गोहूम< *गोधूम]

गोहुमाठी—(सं०)-(१) गेहूँ का खेत (पट०-४)। (२) अनाज निकालने के बाद बचा गेहूँ का डंठल। [गोहु+माठी< गोहूम+माटी < गोधूम+मृत्तिका]

गोहरा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ लंबा टुकड़ा, जो धूप में सुखा लिया जाता है। पर्या०—थपुआ, गोयठा, गोबँठा (पट०-४)। [गो+हरा< हरल, हेल्ल (हि० श० सा०)]

गोहरायल—(क्रि०) मुँह में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (द० मुं०)। दे०—निकालल। [गोहर+आयल (प्र०) < *गो+हार]

गोहरौर—(सं०) गोयठे का ढेर (शाहा०-१)। दे०—गेंठौर। [गोहरा+और (प्र०)]

गोहान—(सं०) वह जमीन, जिसमें गाँव का गंदा पानी बहकर जाता है (शाहा०)। [गोह+आन (प्र०) या आन< स्थान, गोह< गुह< *गृह< *गोह]

गोहार—(सं०)-(१) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों के द्वारा जमींदार को प्रचलित स्वबेदा। दे०—गोआम। (२) सम्मिलित रूप से हल्ला करना। (३) लड़ने के लिए इकट्ठा हुआ मनुष्यों का समूह (पट०-४, भाग०-५)। (४) प्रार्थना करना। [देशी]

गोहाल—(सं०) गौओं के रहने का मकान (मुं०, दर०-१, मं०-२)। दे०—गौसार। [गो+शाल< *गोशाल]

गोहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ(बादामी)वर्ण का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (सं०-प०, उ०-पू० मं०,

पट०-४, भाग०-५)। दे०—गेहूँ। [गोधूम (संस्कृ०), गोहूम (प्रा०)]

गोहूँ—(सं०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ (बादामी) वर्ण का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (प०, पट०-४, भाग०-५)। दे०—गेहूँ। [गोधूम]

गौँआँ—(सं०)-(१) गाँव का स्वामी, जमींदार (शाहा०)। दे०—जिमिदार। (२) एक गाँव का रहनेवाला (भाग०, दर०)। [गौँ+आँ (प्र०)< ग्राम। मिला०—ग्रामणी]

गौँड़ी—(सं०)-(१) एक प्रकार का कतीय कीड़ा, जो पत्ते की नाव में बैठकर इधर-उधर बहता हुआ धान के पौधों को खाता चलता है (प० मं०, पट०, गया)। [गुण्ड (?)] (२) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। (३) पौधों का छोटा अंकुर, जो जड़ से अथवा पौधे के टूटने पर गिरह पर से निकलता है। (४) गौओं की एक छूट से छोटी परिमित राशि। [देशी]

गौँही—(सं०) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। [देशी]

गौँढ़ी—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (पट०-४, भाग०-५)। दे०—गोरैंड़। [गौँ+ढ़ दे०—गौँढ़]

गौँत—(सं०) पशुओं का मूत। पर्या०—गौत, मूत (प०), गोँत (चंपा०)। [गो+ओँत < *गो+मूत्र]

गौढ़ी—(सं०) उखाड़कर रोपने योग्य धान के पौधे। रोंक=धान का रोपा समाप्त या प्रारंभ करना। —के नहाइल—खेत में रोपा होते ही वर्षा के पानी से बीढ़ी का नहाना। [गुण्ड]

गौठि—(सं०) सूखा हुआ गोबर (उ०-पू० मं०)। दे०—ढवारा [< *गोष्ठ< *गोठ]

गौत—(सं०)-(१) दे०—गौँत। [गौ+त< *गो +मूत्र] (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं को दिया जानेवाला चारा (गया, चंपा०) दे०—नकल। (३) पशुओं का चारा (पट०-४, भाग०-५, चंपा०)। [गो+औत< गवाय]

गौतदेल—(मुहा०) पशुओं को खिलाना, मनत देना (पट०, गया, पट०-४, भाग०-५)। दे०—सानी-पानी करल। [गौत+देल]

गौतहा—(सं०)-(१) (पट०)। दे०—गवत। (२) गौत या गवत देनेवाला व्यक्ति। (३) बरसाती घास, जिसे पशुओं को खिलाते हैं। [गौ+औतहा< गवाय]

गौर—(सं०)—(उ०-पू० मं०)। दे०—गोसार [गो]

गौरिआ—(सं०) एक प्रकार का केला, जो मझोले आकार का और मोटा होता है (चंपा०-१)। [देशी]

गौरिआ मालभोग—(सं०) एक बगहुली धान, जो सफेद और नोक पर थोड़ा-सा काला होता है (सा०-१)। [गौरिया+मालभोग]

गौरिया—(सं०)-(१) चीना का एक भेद (सा०)। पर्या०—रकसा (सा०)। (२) एक प्रकार का नींबू (दर०-१)। (३) एक प्रकार का केला (दर०-१, चंपा० तथा सन्था०)। [देशी, संस्कृ०< *गौर]

गौरी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना और धूप में सुखाया हुआ लंबा नाद (गया)। दे०—नाद। [मिला०—गोला, गोलही]

गौरीशंकर—(सं०) एक धान-विशेष। इसका दाना गुलाबी और लाल रंग का होता है (पट०-१)।

गौसार—(सं०) गौओं के रहने का मकान। पर्या०—गोशाला, गोहाल (मुं०), गैथार (उ०-पू० मं०), दरखोल (द०-प० शाहा०) होगाह (पट०, गया, शा०, प०)। [गौ+सार < *गोशाल]

गौसिंगी—(वि०) वह बैल, जिसके दोनों सींग बीच में आकर जुड़े हैं (प० मं०)। दे०—सिंग जुड़ा। [गौ+सिंग < *गो+शृंग]



गौसिंगी

ग्वार—(सं०)-(१) गाय चरानेवाला व्यक्ति। (२) अहीर; एक जाति-विशेष। [ग्व+आर < गो+आर< गो+पाल, गोपाल (प्रा०)]

घ

घँघरी—(सं०) चने और ज्वार की बाल में लगने वाला एक कीड़ा (शाहा०)। पर्या०—घोँघरी, लरका (भाग०-१), घघरी, घँघरा (पट०-४)।

घइला—(सं०) दे०—घैला।

घघरा लौंगो—(सं०) बड़ा-बड़ा, करीब एक-एक सेर तक का फलनेवाला नींबू। इसका छिलका मोटा होता है और भीतर में फाँक रहती है (पट०-१)। पर्या०—गागर-नीबो, गागरा नीबो (चंपा, शाहा०)। [घघरा+लौंग]

घघरी—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा (गहहा), (द० भाग०, भाग०-१)। पर्या०—घाइ (द० द० भाग०, भाग०-१), खदहा (द० मुं०), खद्‌दा (कहीं-कहीं), कड्डा (पट०-४)। [देशी, मिला० घर्घर (संस्कृ०), घग्घर (प्रा०)=घर्घर शब्द, खोखला गला, कढ़ारी]

घटबढ़—(सं०) अनाज आदि का घटना-बढ़ना। मूल्य का उतार-चढ़ाव। [घट+बढ़, घट-बढ़ (हि०), घट-बढ़ (बं०)]

घटल—(क्रि०) घटना, कम होना। (वि०) घटा हुआ। घटल-बढ़ल (वी०)—घटा-बढ़ा, कम-बेश। [घट+ल (प्र०) <घट<घट्ट (प्रा०) =गिरना, गट्ट (बलती), गट्टन, गेट्टु (कन्न०) =अपर्याप्त; घट (न० घड़ा०)=छोटा, थोड़ा, घटनु (कुमा०), घटनु (बं०), घुटना (हि०), घाटिबा (अस०), घटा (बं०), घटणु (पं०), घटुणु (गु०), घटणु (सि०), घटवुं (गु०), घटणें (मरा०)]

घटही—(सं०) वह नाव, जो घाट पर रहती है। [घट+ही (प्र०) <घाट<घट्ट] (वि०) निम्न श्रेणी का, घटिया। [घट+ही (प्र०) <घट<घटल]

घटावल—(क्रि०) घटल क्रिया का प्रे०। घटाना, कम करना। अनाज आदि का मूल्य घटाना। [घट+आवल (प्र०)<घट<*घट्ट (प्रा०), घटाना (हि०), घटाउनु (ने०), घटुणो (कुमा०), घटाइबा (अस०), घटाउणा (पं०), घटाइणु (सि०), घटाडवुं (गु०), घटाविणें (मरा०)]

घटिया—(वि०) निम्न स्तर की वस्तु। निम्न श्रेणी का अनाज आदि। पर्या०—घटिहा।

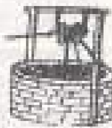
घटिहन—(सं०)-(१) निम्न प्रकार का सस्ता अनाज; ऐसा कोई अन्न, जो पीछे खाने पर अधिक पानी सोखता है और जो जल्दी से पच नहीं पाता। पर्या०—घटीहन। (२) घैती अनाज (चम्प०-१)। [घट+इ+हन, घटन्न (हि०), हन<हान<धान्य, या घट+इहन (प्र०)]

घटिहा—(वि०) दे०—घटिया।

घटीहन—(सं०) दे०—घटिहन। [घटी+हन]

घड़ा—(सं०) दे०—घैला। [घड़ा<*घट, *घटक (संस्कृ०), घडक (पा०), घड़ग, घडअ (प्रा०), घड़ा (हि०, बं०-पं०), घाट (अस०)=हाँड़ी, घड़ो (सि०), घड़ो (गु०), घड़ा (मरा०)]

घड़ारी—(सं०)-(१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०)। पर्या०—गड़ारी (भाग०-१)। दे०—कियारी। [घड़ा, कूप] (२) कुएँ पर लगे खंभे की दो कड़ियों के बीच में पड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (प०)। पर्या०—गड़ारी (द०-पं० द० मुं०), घिरनी (चंपा०, द०-प० बं०, पट०, द०-मुं०, पट०-४), गड़्‌डा घड़ारी-२ (द०-प० शाहा०), गुल्ली (पट०), भकरा (चंपा०, द०-मुं०, भाग०-१)। [घर्घर]



घन—(सं०)-(१) किसी चीज का घना रहना (चंपा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घना (पट०-४)। (२) घनी बोआई। पर्या०—गाढ़, गाढ़ा, सँझोर (द० उ०), घन बोआल (मुहा०)=अनाज का घना बोना। (३) लोहारों का बड़ा हथौड़ा। [घन (संस्कृ०), घन (पा०), घण (प्रा०), घन (हि०), घन (ने०), गन (कश्म०)=लकड़ी का बल्ला, घण (कुमा०), घण (पं०), घण (गु०), घण (मरा०)]

घनगिरह—(सं०) घनी गिरहोंवाला बाँस (चंपा०-१, भाग०-१)। [घन+गिरह <घन+ग्रंथि]

घनबहा—(सं०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला (द० भाग०, द० मुं०, भाग०-१) दे०—घोरबाह। [घन+बहा <घानी+बहा (प्र०) अथवा <√वह्, घानी <घाटन (संस्कृ०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनबाह—(सं०) दे०—घनबहा (पट०, गया)। [घाटन (संस्कृ०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनबाहा—(सं०) ऊख को पेरते समय उसे हाथ से ढकलानेवाला आदमी। कभी-कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—घोरबाह। [घन+बाहा <घानी+बाहा<घानवाह]

घनबोआल—(मुहा०) अनाज का घना बोना। दे०—घन।

घमहौरी—(सं०)-(१) एक प्रकार का धान (दर०-१)। (२) गर्मी के दिनों में शरीर में होनेवाला एक चर्म रोग, जिसमें चमड़े पर फुंसियाँ हो जाया करती हैं। [देशी, घमह+औरी <घर्मछटी (?)]

घर—(सं०)-(१) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता है (चंपा०)। दे०—खाना। टि०—आजकल ऊख का कोल्हू तेल-कोल्हू-जैसा नहीं होता है, लोहे के तीन बिलिंडरों का बना होता है। (२) मनुष्य के निवास करने का स्थान। (३) कोठरी। [<*गृह, घर (पा०, प्रा०), घर (हि०, पं०, अ०, अस०, ओ०), घरु (सि०), घर (गु०, मरा०)। <*घर्हौरी (भारो०)=आग, गर्मी—टर्नर]

घर करल—(मुहा०)-(१) घाव या किसी औजार का अपने स्थान पर स्थिर हो जाना। (२) किसी बीमारी का जल्द नहीं छूटना (चंपा०-१)। (३) घर कर लेना, स्थिर होना। (४) किसी स्त्री का परपुरुष से ब्याह कर लेना (चंपा०)। [घर+करल]

घरगैया—(सं०) घर में पैदा हुई तथा पाली-पोसी हुई गाय (शाहा०-१, भाग०-१)। [घर+गैया]

घरदुआर—(सं०) दे०—घरबार।

घरबार—(सं०) गृहस्थी, परिवार। [घर+बार <*गृह+द्वार या <*गृह-परिवार, घरबार (हि०, पं०), घरबेर (ने०), घरबाट (सि०), घरबार (गु०), घरदार (मरा०)]

घरबारी—(सं०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (भाग०-१)। दे०—गोईंड़। (२) घर में रहनेवाला गृहस्थ, न कि संन्यासी। (३) घरबार का कार्य। [घर+बारी <*गृहवाटिका (?), गृह+वार]

घरसुँहा—(वि०) घर की ओर तेजी से जानेवाला बैल, गाय आदि पशु (चंपा०-१, भाग०)। [घर+मुहाँ <*गृहमुख]

घाँटी—(सं०) मवेशी की गर्दन में बाँधी जानेवाली घंटी (चंपा०-१, भाग०-१)। [<घण्टी, <घण्टिका (संस्कृ०), घंटिआ (प्रा०) घंटी, (हि०), घाँटी (ने०), घान्ती (कुमा०) घंडा (पं०), घंड (अ०), घंटी (सि०) घाँट (मरा०)]



घाँटी

घाइ—(सं०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—घघरी। [घाइ <खाई <*खात (?)]

घाघ—(सं०)-(१) पूर्वकाल का प्रसिद्ध भविष्यवक्ता कवि। (२) किसी कार्य में अति निपुण व्यक्ति।

घाट—(सं०)-(१) नदी, तालाब आदि का वह स्थान, जहाँ से मनुष्य या जानवर पैदल या नाव आदि से पार करते हैं अथवा जहाँ से व्यापार की वस्तुएँ पार की जाती हैं अथवा स्नान करने तथा कपड़ा धोने का स्थान। (२) हल, हेंगा आदि में बनाया गया खड्डा (पट०-४) (वि०) वजन में कम (चंपा०)। [घट्ट (संस्कृ०), घट्ट (प्रा०), गाठ (कश्म०), घाट (हि०, कुमा०, ने०, पं०, अस०, बं०, ओ०), घाटु (सि०), घाट (गु०, मरा०), संभव—<घाटा (संस्कृ०),—टर्नर]

घात—(सं०)-(१) चतुराई और गुप्त रूप से किसी वस्तु की प्राप्ति का प्रयास। इसका प्रयोग प्रायः, ईर्ष्या और कभी-कभी उचित स्पर्धा में भी होता है। घात लगावल, घात में बैठल (मुहा०)=किसी वस्तु अथवा सफलता की प्राप्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करना, ताक में बैठना। [घात]

घात में बैठल—(मुहा०) दे०—घात।

घात लगावल—(मुहा०) दे०—घात।

घान, घानि—(सं०)। दे०—घानी।

घानी—(सं०)-(१) ऊख की कटी हुई टुकड़ियों का वह परिमाण, जो कोल्हू में एक बार में पेरा जा सके। (२) कोल्हू, जाँता आदि में एक बार दिया जानेवाला अन्न का परिमाण (बिहा०, भाग०)। [घान, घाटन (संस्कृ०), घाणय (प्रा०), घानी (हि०), घान् (नं०), घानी (बं०)=तेल का कोल्हू]

घाम—(सं०) (१) धूप। (२) शरीर से निकला हुआ पसीना (भाग०-२)। [धम<*घर्म]

घाव—(सं०) मनुष्य या पशु-पक्षी के शरीर में उत्पन्न व्रण अथवा शस्त्र से लगा आघात। [<*घात (संस्कृ०), घात (पा०), घाम (प्रा०), घाव (हि०), घाउ (नं०), घाउ (कुमा०), घा (असं०, बं०, ओ०), घट्, घाउ (पं०), गाउ (सि०), घा, घाव (गु०), घाव्, घाय (मरा०)]

घास—(सं०) तृण। खेत में अनाज के अलावा स्वयं उत्पन्न होनेवाले दूसरे पौधे। पर्या०—घासपात, दुमदहिर (उ०-प०), घू (बं०), तितिरा (पट०-४, मग०-५)। [घास (संस्कृ०), घास (पा०, प्रा०), घास (हि०), घाँस (पं०), खस (पैशा०), घास (काश्मी), गस (अस०), गास (प० पहा०), घास (कुमा०), घाँह (असं०), घास (बं०), घास (ओ०), घाह (पं०, सं०), गाहु (सि०), कास (गु०), कास (मरा०)]

घिउड़ा—(सं०)-(चंपा०)। दे०—घिउरा, घिकरा।

घिउरा—(सं०) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिउड़ा (चंपा०), नेनुआँ, तरोई, परोर, परोरा (सं० क०); घेरा (बर०)।

घिवहुआ—(सं०) वह आम जिसके खाने में घी के जैसा स्वाद हो (पट०-१)। पर्या०—घिआही (मग०-५), घिवहा (चंपा०)। (वि०) घी-जैसा स्वादवाली वस्तु। [घिउ+हुआ (प्र०) <*घृत]

घिआही—(सं०)-(मग०-५)। दे०—घिवहुआ।

घिआही कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका स्वाद घी-जैसा हो और जो खाने में चिकना हो (पट०-१, पट०-४, मग०-५)। [घिआ+ही (प्र०)+कदुआ]

घिवहा—(सं०)-(चंपा०)—दे०—घिवहुआ।

घिवड़ा—(सं०) दे०—घिउरा, घेवड़ा।

घिवरा—(सं०)-(१) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लंबी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिउड़ा, घिउरा, घिवड़ा (चंपा०)।

घियातरोई—(सं०) दे०—घेवड़ा।

घिरनी—(सं०) खंभे की दो कांधियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली चकरी (पट०, चंपा०, गया, द०-प० सं०, द० मुं०, पट०-४, मग०-५)। दे०—चकरी। [प्रहणी, घूर्णन, घूर्णि (?)]

घिवहा—(सं०) गुणानुसार आम का एक भेद (दर०-१)। [घिउ+हा (सम्० प्र०)<घी <घृत]

घुँघनी—(सं०)-(१) मटर की अधपकी भूनी हुई बाल (सं० क०)। दे०—होरहा। (२) चना, मटर या किसी अन्न को भिगोकर तथा तेल या घी में छानकर बनाया गया भोज्य पदार्थ। [घुँ+घनी <*घृत+कोशी <√घृ (अस्पष्टोक्ति) (?)]

घुँडी—(सं०)-(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेकी के मूसल से धान कूटा जाता है (पट०)। दे०—ओखरी। (२) मवेशियों के बाँधने की रस्सी या कड़ी। (३) ओढ़ना आदि गहनों में छोर पर बनी हुई गोल, नोकदार गाँठ। [मिला०—कण्ठिका=बोतल, घण्टिका(पुंघलम्)]

घुग्घा—(सं०) फल, अनाज आदि फलियों का गुच्छा। [गुच्छ]

घुनना—(क्रि०) किसी वस्तु में घुन लगना। पर्या०—घुनायल। (वि०) घुन लगा हुआ (शाहा०-१, भाग०-१)। पर्या०—घुनायल (चंपा०)। [घुन+ना (प्र०)<घुण<घुण]

घुनायल—(क्रि०)-(चंपा०)। दे०—घुनना।

घुमाव—(सं०)-(१) जलप्रवाह के मार्ग का मोड़ (चंपा०, उ० मु० बं०, भाग०-२)। दे०—मोहानी। (२) खेत की मेंड़ का मोड़। (३) हेंगा या हल की जोत का मोड़। (४) रास्ते आदि का मोड़। [<√घूर्ण (संस्कृ०), घुम्म (प्रा०), घुमना (हि०)]

घुमावल—(क्रि०) घूमल क्रि० का प्रे०। घुमाना, गाड़ी-हल के बैल आदि को एक तरफ घुमाना। [<घूर्ण (=घूर्णयति ?) (संस्कृ०), घुम्म (प्रा०), घुमाना (हि०), घुमउणा (पं०), घुमाइणु (सि०)]

घुरकट्टा—(सं०) अन्न की कड़ी फसल को काटनेवाला (द० भाग०)। दे०—अँगोड़ीहा। पर्या०—खुटकट्टा (पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुर+कट्टा<घुर<खुरा<खुट+कट्टा<√कृत्]

घुरघुरा—(सं०)-(१) एक कीड़ा-विशेष। (२) एक बीमारी-विशेष (कंठमाला)-(शाहा०-१, पट०-४, मग०-५, भाग०-१)। [घुर्घुर]

घुरनी—(सं०) खंभे की दो कांधियों के बीच की धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (पट०)। दे०—चकरी। [प्रहणी, घूर्णि (?)]

घुरी—(सं०) बैलों की वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेंड़ में बाँधी जाती है (पट०, गया)। पर्या०—मेंहीरी (पट०, गया, पट०-४, मग०-५), डोंड़ा (द० भाग०)। [देशी. मिला०—ग्रन्थि>घुंडी]

घुरौड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—घूर।

घुलल—(क्रि०)-(१) तरल पदार्थ में किसी दूसरी वस्तु का मिलना। (२) आम आदि फलों का पककर मुलायम होना। (वि०) मिला हुआ, घुला हुआ। [घुल+ल (प्र०)]

घुसावल—(क्रि०) घुसल क्रि० का प्रे०—घुसाना, प्रवेश कराना।

घूआ—(सं०) भुट्टे के ऊपर का केशों-जैसा गुच्छा (द०-प० शाहा०)। दे०—भुआ।

पर्या०—ओघ (भाग०-१), ओघा (चंपा०)। (वि०) वह व्यक्ति, जो दूसरे की बातें सुनकर पी जाया करता है, कुछ बोलता नहीं (पट०-४)।

घून—(सं०) अन्न और लकड़ी को खानेवाला एक कीड़ा। [घुण]

घूनल—(क्रि०) दे०—घुनना।

घूमल—(क्रि०) घूमना, चक्कर काटना, गाड़ी या हल के बैल को एक तरफ घुमाना। [<√घूर्ण (?), घुम्म (प्रा०), घूमना (हि०), घुम्नु (नें०), घुम्मे (कुमा०), घुमाइला (भाग०), घुमा (बं०), घुमाइबा (ओ०), घुम्मणा (पं०)]

घूर—(सं०)-(१) भूमि को खोदकर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकड़ी, घास, भूसा गोबर आदि को जलाकर जाड़े में ग्रामीण लोग आग तापते हैं। पर्या०—कौर, कौड़ (प०), घुरौड़ा (पट०-४)। लोको०—"घर जरत हुए, घूर बुताव"—किसी का घर जल रहा हो और वह घूर बुझाये, अर्थात् बड़ी विपत्ति के प्रति लापरवाह होकर छोटे खतरे को दूर करने के लिए तत्परता दिखलाना। (२) खाद का गड्ढा (बिहा०, भाग०)। पर्या०—खाद के गड़हा, खादर के गड़हा। (३) खाद (सं० द०-प०)। दे०—खादर। [कूट]

घूर काटल—(क्रि०) ऊख काटना (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—छोलल। [घूर+काटल (प्र०)]

घूरी—(सं०) कारखाने में गन्ने को काटकर छोटा करने का औजार (भा०-१)। पर्या०—गंडरिया (पट०-४)। [देशी]

घूस—(सं०) किसी वस्तु की प्राप्ति अथवा कार्य की सफलता के लिए संबद्ध व्यक्ति को अनुचित तौर पर दिया जानेवाला द्रव्य। [गुह्यस्थ (हि० श० सा०)]

घूसल—(क्रि०) घुसना, प्रवेश करना, किसी नुकीली चीज का अंदर जाना। [घुस+ल (प्र०), घुस, घुँसना (हि०), घुसणा (पं०), घुस्नु (नें०), घुसवुँ (गु०), घुसणे (मरा०)]

घोंघ—(सं०)-(१) जल में उपजनेवाला एक प्रकार का पौधा, जिसका उबला डंठल गरीब लोग खाते हैं। (२) गरदन। [देशी]

घेकुआर—(सं०) एक प्रसिद्ध औषधीय पौधा, घृतकुमारी। [घि+कुआर< घि+कुमार <*घृतकुमारी (संस्कृ०), घीकुमार (हि०)]

घेरना—(क्रि०) घेरना, बाड़ करना, किसी वस्तु की रक्षा के लिए चारों ओर बाड़ लगाना। [घेर+ना (ब्र०)< घेर, घेरना (हि०), घेरिबा (ओ०), घेरा (बँ०), घेर (असा०)=परिवेष्टित, घेरवा (पं०), घेरवु (सि०), घेरवुँ (गु०), घरवो (मरा०), संभ०<*घिरति —टर्नर]

घेरा—(सं०)–(१) मेवाशी या बकावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (चंपा०, मुं०)। दे०—घेराल। (२) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ। दे०—बथान। (३) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (मुं०)। दे०—घेराल। (४) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए धारा के इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ०-प०, भाग०-१)। दे०—बाँध। (५) खेत, फुलवारी या बाग के खेत को सुरक्षित रखने के लिए बाँस, बीवाल आदि से घिरा स्थान (पट०-४, मग०-५)। [घेरा (बिहा०), घेरना (हि०)<प्रह< √प्रह] (६) (बम०)। दे०—घिवरा।

घेराल—(सं०)–(१) मेवाशी या बकावन आदि के रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (प० मुं०, शा०, चंपा०)। पर्या०—घोराल (शाहा०), घेरा, ढाठ (चंपा०, मुं०), ढाठ (पु०), पखठ (द०)। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (द०-प०)। पर्या०—घेरानी (उ०-प०), बारी, बेढ़ (मुं०), घोराल (सं०-द०), घेरा (मुं०), छापा (द० मुं०), हिराँज (चंपा०, पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। [अज्ञात]

घेरानी—(सं०) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०, भाग०-१)। दे०—घेराल। [अज्ञात]

घेरावल—(क्रि०) घेरल क्रि० का प्रे०। घेराना, बाड़ लगवाना। [घेरा+आवल (ब्र०)< घेर, घेराना (हि०), घेराल (बँ०) घेराइबा (ओ०)]

घेवड़ा—(सं०) तरोई की जाति का एक फल, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—तरोई। पर्या०—घिउड़ा, घिँवड़ा घिवरा, घिवड़ा, नेनुआ, परोर, परोल (सं० द०), तरोई, घेरा (बम०)। [घि+वड़ा< घी+वड़ा< घृतपूर (संभाव्य)। घिउड़ा, घिउरा (बिहा०), घेवड़ा, घिया तोरई, कड़ी तोरई, नेनुआ (हि०), महा-कोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), हस्तिघोषा, धुँधुल, धुंधुल, धुंधुल (बँ०), घोसाले, घोसाळा (मरा०), गलका, घीसोड़ा (गु०), घराँहूई, तुरिश्री (क०), एनुगबीर, पुष्टातीरकाया (ते०), लाठ (को०), चिमार (का०)]

घैला—(सं०)–(१) वह बरतन, जिसमें अन्न के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (उ०-पू० मुं०, भाग०-१)। दे०—नाद। (२) कुएँ से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना घड़ा (पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। दे०—घड़ला। [<*घट, घटी, <*घटीश]

घैला

घोँघर—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (गया, भाग०-१)। दे०—घोँघा। [देशी—मिलाा०—घोँघ=पक्व-वर्णी अवकाश (ओ० वि० हि०), धुँधराल (हि०), < घुमटल < घूर्णन]

घोँघरा—(वि०)–(द० मुं०, भाग०-१, पट०)। दे०—घोँघर।

घोँघरी—(सं०) धान और ज्वार की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा। दे०—घँघरी। [देशी, घोंघा (हि०)]

घोँघा—(सं०)–(१) वर्षा से बचने के लिए ताड़ के पत्तों की बुनी हुई एक प्रकार की बरसाती, जो सिर से लटकती हुई होती है (गया, मग०-५) [घोँघ < घोँघा < घुमठ (?)] (२) शंख-जाति का एक छोटा जलजन्तु, जिसके बाह्यकोष से चूना बनता है (भाग०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। पर्या०—घठा, घैठा। (३) (सं०)–(पू० मुं०)। दे०—घोँघा। [घोँघ (ओ० वि० हि०)]

घौंघाड़ी, घौंघारी—(सं०) छोटी जाति का घोँघा।

घोँघी—(सं०) वर्षा से कपड़ा बचाने के लिए कंबल के ऊपर के छोर को बाँधकर बनाई गई ओढ़नी (द०-प० शाहा०, भाग०)। दे०—घोघी। [घोघी < घोंघ < घुमठन (?)]

घोँघी

घोंघवा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (शाहा०)। दे०—घोंघा। [घोंघ+वा (घुमठ)]

घोंघा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (सं० उ०, पट०, द० भाग०, भाग०-१)। पर्या०—घोँघर (पू० मुं०), घोँघवा (शाहा०), घो घर (गया), घोँगरा (पट०), घोघरा (द० मुं०, पट०-४)। (२) (सं०) दूध दुहने के लिए मिट्टी की बड़ी कठिया (शाहा०)। [घुमठ]

घोँघी—(वि०) आगे की ओर मुड़े सींगोंवाला बैल या दूसरा मवेशी (बिहा०, भाग०)। यह उत्तम बैलों का माना जाता है।—'घोंघी देखे कोहि पार, बैली खोलि देहि धार।'—भाव =घोंघी बैल को उस पार देखकर नदी के इसी पार से (अपने को) बैली खोल देनी चाहिए। [देशी, मिलाा०—घुँघट (=घूमा हुआ)]

घोँपल—(क्रि०) चुभाना, घुसेड़ना (मुं०-१, पट०-४, मग०-५, चंपा०, मुं०-२)। [<√घुभ् (संचलने), √घुप् (नती)]

घोँपा—(वि०) (१)-(पू० मुं०)। दे०—घोँघा। (२) बाजरे का कदैदार फूल (द०-प० शाहा०)। पर्या०—कावा (द० मुं०), फुलको (द० भाग०)। [घुप]

घोपकी—(सं०) बैलगाड़ी पर रखने के लिए बाँस, चटाई आदि का बना पर्दा (मुं०-१, भाग०-१)। [घोप+की < घुमठन]

घोपवा—(सं०) डाला-सहित घूरा (चंपा०-१)। [देशी]

घोपाड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा०-१)। [देशी]

घोपी—(सं०)–(१)–(चंपा०, भाग०-१, संता०) दे०—घोँघी। पर्या०—घोँघी (द०-प० शाहा०), तुकी (गया०, उ०-पू० मुं०)। [घो+ई < घोघ < घुठन] (२) ताड़ के पत्ते या कंबल आदि की बनी लंबी बरसाती या ओढ़नी (मुं०-१, भाग०-१)। [घोड़+ई]

घोड़जई—(सं०) घोड़े के खाने का एक चारा, जो जौ से मिलता-जुलता होता है (पट०-१)। पर्या०—जई। [घोड़+जई]

घोड़सीन—(सं०) वह बैल, जिसका सींग घोड़े की तरह हो (पट०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५)। [घोड़+सीन < घोड़ा+सींग]

घोड़ा—(सं०) सवारी करने का एक प्रसिद्ध चौपाया मवेशी। [घोड़ा<*घोटक (संस्कृ०), घोटक (पा०), घोड़ऊ (प्रा०), घोड़ा (हि०, मै०, पं०, बँ०, को०), घोड़ो (सि०), घोड़ो (गु०), घोड़ा (मरा०)]

घोरई—(सं०) कोठ के मुँह के नीचे और खुले रहने के लिए, आरपार बल्लियों से बँधी हुई टेढ़ी लकड़ी। पर्या०—घोरानी। [देशी]

घोरल—(क्रि०)–(१) घोलना, मिलाना। जलादि द्रव पदार्थ से किसी वस्तु को तरल करना। (२) खटिया आदि को रस्सी से बुनना। [घोर+ल (ब्र०) < घोर, <*घोल (संस्कृ०), <*घोट < √घुट् (परिवर्तने), √घु (शब्द, हैके खाने)]

घोराल—(सं०) मेवाशी या बकावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (शाहा०, संता०)। दे०—घेराल। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (सं० द०)। दे०—घेराल। (३) भूसा आदि रखने के लिए बाँस (बाँसिया) जैसा बड़ा टोकरा (द० भाग०)। [अज्ञात]

घोरानी—(सं०)। दे०—घोरई।

घौंका—(सं०) एक प्रकार का धान (पट०-१, मग०-५)। [देशी]

घौद—(सं०) (१) फलों का गुच्छा (चंपा०-१, भाग०-१, पट०-४, मग०-५, मुं०-२)। (२) वह ताड़, जिससे साल-भर ताड़ी निकले। (३) केलों का गुच्छा। [गुच्छ]

घौद

घौद—(सं०)-(१) वह ताड़ का पेड़, जिससे बरसात में ताड़ी निकलती है। [देशी, मिलाा० √घु (शब्द-चूना)] (२) फलों का गुच्छा (चंपा०-१)। (३) केले के फल का पूरा गुच्छा। [गुच्छ]

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१	१९	कँकरीली	ककरीली
१	१	२१	दे० अँकवाह (बिहा० आज०)	(बिहा०, आज०); दे०—अँकवाह
१	१-२	२	ईंकड़ी, (२) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़।	अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। पर्या०—ईंकड़ी।
१	२	२७	[अँकर+ई०<अँकरा, दे०—अँकटा]	[अँकर+ई(प्र०)<अँकरा]
२	१	१६ के बाद	..	... अंकुर (सं०)—(भाग०-१) दे०—अँकुड़ा।
२	१	२६ के बाद	..	— अंकुश (सं०) दे०—अँकुसी-२।
२	२	२७	अखिरत्] [सूखा	अखिरत्। सूखा
३	१	१८	अँगर्डंग	अँगर्डुंग
३	१	३२	अँगरवाह	अँगर्वाह
३	१	३४	अँगार	अँगर
३	२	३२	[अग्रकाड-वा, (अँगेड़ी+हा)]	[अँगेड़ी+हा<अग्रकांड+वाह]
३	२	३७	द० मु०	द० मुँ०
४	१	१८	(चंपा०—मुँ १०—१,	[चंपा०—१, मुँ०—१,
४	२	११	दे०—अँजोरिया [अँजोरिया	[अँजोरिया,
५	२	२५	रेंड़ी	रेंड़ी।
५	२	३०	अँधकी रात्रि	अँधकी=रात्रि
५	२	३१	गड़ादार	गंड़ादार।
५	२	२५	बैलो	बैलों
६	१	२९	दार दाल	दार<दाल
६	१	३९	उप	उप्
६	२	२	पट०—४)	पट०—४)।
६	२	१२	ई>	ई<
६	१	१६	खराही	पर्या०—खराही
६	२	२५	(भाग—१) दे०—गाँजा	(भाग०—१)। दे०—गाँजा।
७	१	३	करता है। (द०—पू० मै०)	करता है (द०—पू० मै०)।
७	१	२१	(अ+काल)	(अ+काल)
७	१	३९	उत्खनन उत्खनन	उत्खनन
७	२	४०	दे०—अखेना	दे०—अखैना

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	६	(आ०)	(आज०)
७	२	२	(दे० मुँ)	(दे० मुँ)
७	१	१४	(दे० माग०) दे०-फाज़िल	(दे० माग०)। दे०-फ़ाज़िल।
७	१	३५	(१)	(?)
७	१	३९	(१)	(?)
७	१	१९	खाओल	खाओँल
७	१	२०	(प०), कनियाँ	(प०), कमियाई, कमिया
७	१	२१	लगुआजन	लगुआजन (सामा०) =
१०	१	११	अगवलि	अमवलि
१०	२	२९	वार। अगोरनिहार	वार।
११	१	२	अग्रोड़	अग्रोड़
११	१	१२	अग्रोड़	अमोड़
११	२	६	बर्तन:—	बरतन
११	२	१५	(सं०)	(सं०)
११	२	२६	की	का
११	२	२६	(मुं०—१)	—(मुँ०—१)
१२	१	१६	ओड़पुष्प	ओड्पुष्प
१२	१	२८	अड	अद
१२	१	२५	(अद्धाई) अद्धं+द्वि	अद्द ई (=अद्धं+द्वि)
१३	२	६	अध	[अध
१३	२	१०	अध	[अध
१४	२	१४	(चरवाहा)	(चर+वाहा)
१५	२	२९	क्षुड़हा	क्षुडहा<
१६	१	२७	अब्बी [अ+वई	अब्बी। [अ+वई<
१६	१	२८	बीज,	बीज<
१६	२	९	[अवचाव]	[अवचान
१७	१	१२	(वं)	(वें)
१७	२	अड़तीसवीं पंक्ति उनचालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी।		
१९	१	३५	ऊर उथटा	ऊपर उठा
१९	२	१४	[अ+गला]	[अ+लगा]
२०	२	१४	दानवाली	दानेवाली
२२	२	१२	अँदाज	अँदाज
२२	२	१५	वृच	वृद

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	२	२५	[मिश्रा०	; मिला०
२३	१	३६	(बि०,	(बिह०,
२३	२	२८	गंकिासी	गँकासी
२३	२	३६	अर्धद्वि	अर्धद्वि
२४	२	१	(सं०)	(सं०)
२५	१	२८	लोको	लोको०
२६	१	२२	है : (पर० १)	है (पट०—१)।
२६	१	३४	इकाट	[इकाट
२६	१	३५	(मो० मि० ज़ि०)।	(मो० मि० ज़ि०)]
२६	१	३६	सरकंडा]	सरकंडा
२६	२	१७	(अ०) [	(अ०)]
२७	१	७	(म०)	(मा०),
२७	१	२७	(प्रा०)	(पा०)
२७	२	५	(प्रा०)	(पा०)
२८	१	१२	निला०	मिला०
२८	१	१३	√कम	√कम्
३०	१	११	] उच	[उच
३०	२	१२	मवैन	वेगन
३३	१	२	(सं०)	(सं०)
३३	२	२०	का—	का
३४	१	१४	हुआ (सं०);	हुआ। (सं०)
३४	१	३१	जानेवाली की	जानेवाली
३४	१	३२	धारावाहिक	की धारावाहिक
३५	१	१२	(?)],	(?)]
३५	२	१	मि०	मिला०
३७	१	१५	(कैतारी	केतारी
४२	२	२१	(शा०-१)	(शाहा०-१)
४२	२	२४	आँकड़।	आँकड़
४३	१	९	(शा०, शाहा०)	(शा०, शाहा०),
४३	२	१७	( ) सरकंडा,	(३) सरकंडा
४३	२	२३	पुंना	पुंना
४४	२	३८	कैता	[कैता
४४	२	३९	(संस्कृ०)।	(संस्कृ०)]

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५	२	१२	तम्बाक	तम्बाकू
४५	२	१८	पट०—१—४	पट०—१, पट०—४,
४७	१	२८	गहुरी	गहुरा
४७	२	७	पर्या	पर्या०
४९	१	२४	करना)	करना
४९	१	२५	हुआ	हुआ)
४९	१	३०	संम०	सं०म०
५२	२	९	✓कृती कृती	√कृती
५३	१	१	कदवा	[कदवा
५३	२	८	संम०	सम०
५४	२	छठी पंक्ति के बाद जोड़िए		कनखजूरा (सं०) दे०—कनगोजर।
५४	२	२२	के	का
५४	२	३३	कनगोहा (चंपा०)	कनवाहा (चंपा)।
५५	१	१०	उ० बि०)	(उ० बि०)
५५	१	१५	दे—	दे०
५७	शीर्ष टिप्पणी—कपास—कबुलियत			कपास फूटना—कबुलियत
५७	२	२८	(गं उ०)	(गं० उ०)।
५८	१	६	काली)। [	काली)—
५८	१	२५	कारटेवुनो	कार्टेवुनो
५८	२	३	ममरिशाला	कर्मारशाला
५८	२	१२	कमरिक	कर्मारिक
५८	२	३१	शार०,	शा०,
५८	२	३३	(प्रा०) गढ़ा (हि)	(प्रा०), गढ़ा (हि०)
५८	२	४०	माथी	माठी
५९	१	८	कर्मन्	<कर्मन्
५९	१	१३	कांविवा	कांविल।
५९	१	१८	अनवाक	अनवक
६०	२	२०	(निहा०)	(बिहा०)
६०	२	२५	काला	काला।
६१	२	१५	(भिओना संम०	भिगाना सं०म०
६१	२	४०	(१)—(सं०)	(सं०)—(१)
६२	१	४०	किनारा]	किनारा
६२	२	१४-१५	थ्राज०) [कराह+ई] (२) दे०-कराह (कल्पा०	स्राज०)। (२) दे०—कराह। [कराह+ई (कल्पा०

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१	२०	बिहा०,	बिहा०,
६४	१	३०	(स०)	(सं०)
६५	१	२०	(संकृ०)	(संस्कृ०)
६६	२	१४	रात।	रातल
६६	२	१६	टा	कंटा
६६	२	२५	सी	रस्सी
६६	२	३२	लि०)	(लि०)
६७	१	२१	पच	पाच
६७	२	१४	(स०)	(सं०)
६८	१	३	अश	अंश
६८	१	५	अत	अंत
६८	१	१३	हाँचने	हाँकने
६८	१	२२	जिरा	जिस
६८	१	३४	कदो	कादो
६८	२	१८	ताल	ताल
६९	१	६	प'बाह्	पकबाह्
६९	१	२७	(शाहा०)	(शाहा०)
६९	१	३०	पन	पान
७२	२	९	कुँआ	कुँआँ
७६	१	३१	(पं)	(पं०),
७७	१	२९	का	को
७७	२	३६	पं० खुद, (पं० कं०)	खुद (पं०, स०),
८०	२	९	√कविक,* √कविका	<कविक, *<कविका
८०	२	२४	कवाला	केवाला
८१	१	९	का	की
८१	१	१२	क+सौर	के+सौर
८२	१	८	(बं)	(बँ),
८२	२	१	काहरी	कोहरी
८३	२	१६	(बिहा०)	(बिहा०),
८४	१	३३	(स०)	(सं०)
८६	१	४	(सं०)	(सं०)
८६	२	३	(स०)	(सं)
८७	१	५	(मुँ०)	(मुँ०—१)।

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१	८	व्यक्तिमत	व्यक्तिगत
८८	१	१५	(मुं०—१,	(मुँ०—१,
८९	१	२८	कौर आयल	कौरा आयल
९२	२	२६	मेर्दि०	मेदि०
९३	२	२३	खपा	खता
९३	२	२४	खाद्	खाद
९४	१	३३	प्रा०),	पा०),
९५	२	२१	काड़	काड़्
९६	२	३२	बाँस	बाँस
९७	१	१९	देशन	दैशन
९७	१	२०	तम्बाकू	तम्बाकू]
९७	२	३०	का बन	का
१००	शीर्ष टिप्पणी—खाँड़ी			खाँड़ी
१०१	१	२०	(प्रा०)	(पा०)
१०१	२	१५	विहा०	विहा०
१०२	२	१८	जमीन। चमड़ा∠	जमीन।
१०२	२	१९	क्ष फलत>	∠क्षफलक
१०३	शीर्ष टिप्पणी—खिनकी खिलअत			खाहिन-खिलअत
१०३	"	२१	<खीर√	∠खीर
१०३	२	६	धक	एक
१०३	२	१९	कटल<	कटल
१०४	१	३४	खोल	[खोल
१०६	१	२५	झाट	झाटे
१०७	१	१९	ढीका]	ढोका
१०७	२	२५	मिट्टी	मिट्ठी
१०७	२	१६	,नः	पुनः
१०७	२	१९	(अकुर)	(अंकुर)
१०८	१	१८	खेलना	खेलवा
१०९	२	२१	(वं०)	(बँ०)
१११	१	२५	१)	(१)
१११	१	२८	(मुं०-१)	(मुँ०—१)।
११२	१	६	मछली।	मछली]
११२	२	७	लने	लेने

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	२	२८	त्रि०	क्रि०
११२	२	२९	करखाना	करखाना।
११३	१	१७	गँड़ा	गँड़ा
११३	१	२०	गँड़ादार	गँड़ादार
११४	१	४	काब ना	का बना
११४	१	२३	(शाहा०—१)	(शाहा०)।
११५	१	२१	डिब्बी,	डिब्बी।
११५	२	११	बीचो	बीचो
११६	१	२	(मो० वि० डि०)	(मो० पि० डि०)]
११७	१	११	[(१)	(१)
११७	२	२	गोशा	पर्या०—गोशा
११७	२	४	पर्या०—गद्दी	गद्दी
११७	२	३५	गु०)	गु०)]
११८	१	६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	१	३६	(मुहा०)	(मुहा०) =
११८	२	८	पच मिला०	मिला०—
११८	२	१०	या	।
११८	२	१६	चंपा०। देव	(चंपा०)। दे०
११८	२	२०	लद	दल
११९	१	२४	बीचों-बीच	बीचो-बीच
११९	१	१०	घास-फूस। गरदेल,	घास। गरदेल
११९	१	१२	गरदेल	गर निकालना।
१२०	१	६	पू मैं०)	पू० मैं०),
१२०	१	२१	(देशी)	(देशी)
१२०	१	२९	बीचोबीच	बीचो-बीच
१२०	१	२८	गर	[गर
१२०	१	३१	(गर	[गर
१२०	१	३२	(आज०)	(आज०)]
१२०	२	२१	(नेपा०)	(नेपा०)]
१२०	२	२७	√गल +	√गल।
१२०	२	२८	पिच् गालयति	गालयति
१२०	२	२८	गाले	गालेई,
१२१	१	२१	जमींदारो	जमींदारी

पृष्ठ	कॉलम	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२२	२	१८	(इँ०),	(बँ०),
१२४	१	२	(सांख्य)	(संस्कृ०)
१२६	२	२५	(२)—(बि०)	(२)—दे०—गुमस (बि०)
१२६	२	२५	हुई (गुमस)	हुई।
१२८	१	१५	√ईर	√ईर्
१२८	१	३६	√ईर	√ईर्
१२८	२	४	लगी हुई हुई	लगी हुई
१२८	२	१७	चूर्ण	चूर्ण]
१३१	२	११	(पं०)	(प०)
१३१	२	३५	√घ]	√घ
१३३	१	२५	गोग	गोट
१३३	१	३१	(सि०)	(सि०। =
१३३	१	३२	(गु०)	(गु०) =
१३३	१	३३	(मरा०)	(मरा०)=
१३३	२	१९	गोटी	गोटो
१३३	२	३१	(१)	(?)
१३४	२	३३	असे	जैसे
१३५	२	१	(चंपा० (१)।	(चंपा०—१)। [
१३५	२	१४	(हिं०, प०),	(हिं०, पं०),
१३७	१	१५	फेवाल +	फेवाल <
१३८	२	४	फेंकना	फेंकण
१३९	१	३१	लोल =	—लोल =
१३९	२	१६	गौरिया	गौरिया
१४०	१	२६	घुटना	घटना
१४०	२	१५	लडो	घडो
१४२	१	२४	का,	पा,
१४२	२	२४	किव	पिव
१४२	२	२४	<की	<पी
१४४	१	२	<कि	<पि
१४४	१	३	कीकुमार	पीकुमार
१४४	१	९	घरणो	घेरवं
१४४	१	९	किरति	पिरती
१४४	१	२७	पखड	परखड
१४४	१	३८	(बँ०)	(बँ०),

कृषि-कोश

सम्पादक

डॉ० विश्वनाथप्रसाद

अनुसन्धान-सहायक

श्री श्रुतिदेव शास्त्री : श्री राधावल्लभ शर्मा



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४